CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नी-शरणं गच्छामि

रोशनलाल सुरीरवाला

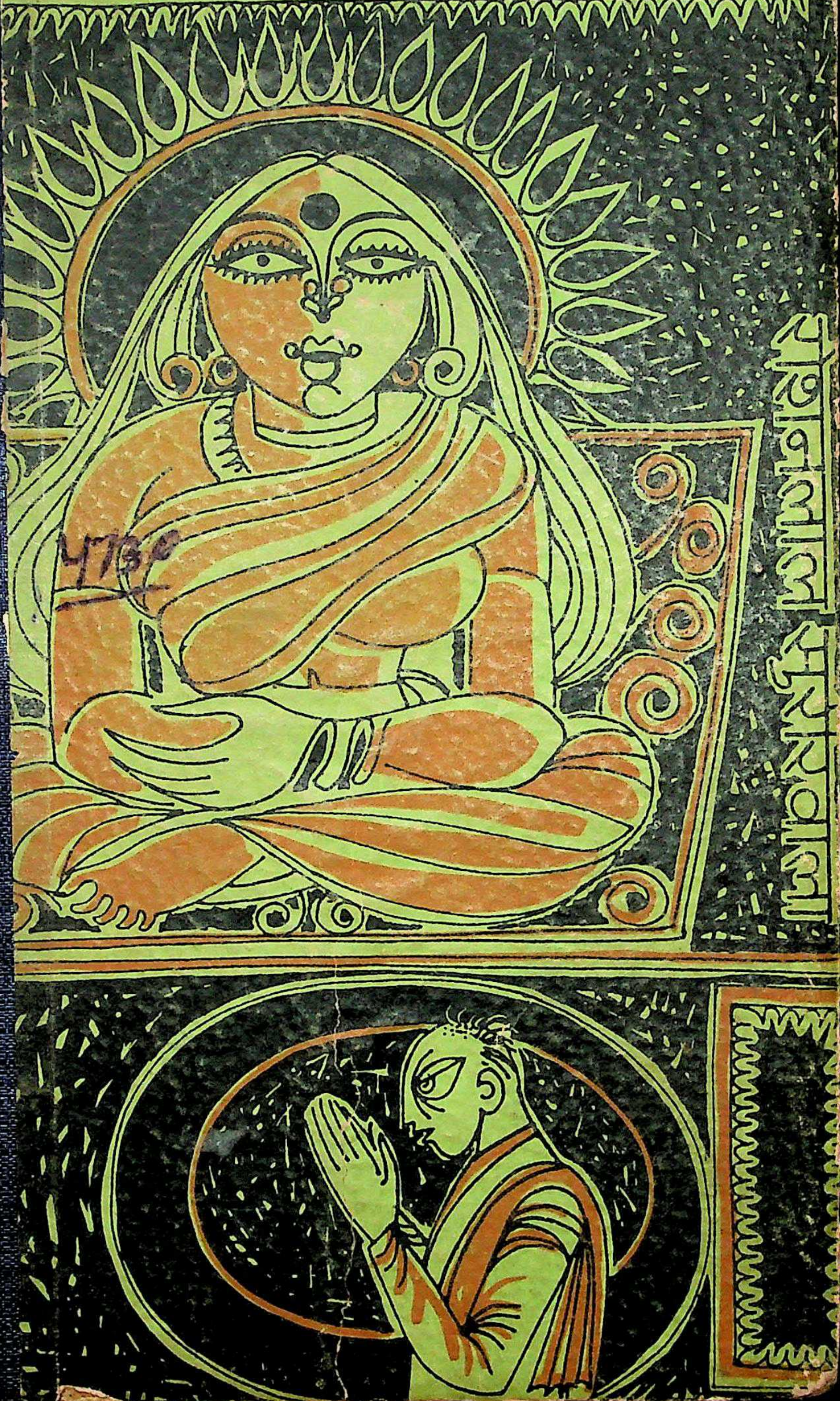

4730

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नीशरणं गच्छामि

रोशनलाल सुरीरवाला

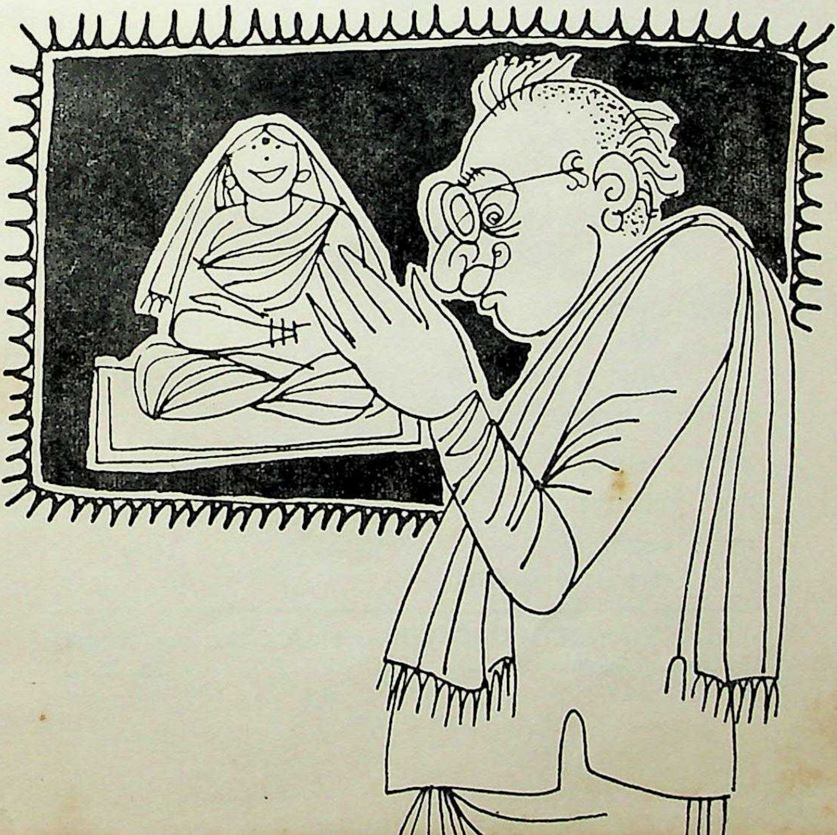

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

4730

State Museum Library Lucknow
4730

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन
२०५, चावड़ी बाजार
दिल्ली-११०००६

सर्वाधिकार : सुरक्षित

संस्करण : १९७६

मूल्य : पच्चीस रुपये

मुद्रक : रूपक प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

PATNI SHARANAM GACHCHHAMI : A Collection of Satires
by Roshanlal Sureerwala Rs. 25.00

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मित्रवर शैलेन्द्र भूषण

को

सप्रेम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रम

१. डॉ० एम० ए०, पी-एच० डी०	९
२. शराब, हमारा राष्ट्रीय पेय	१८
३. दाद का आनन्द	२३
४. बरसात में	२८
५. पत्नी शरणं गच्छामि	३२
६. ममी ! जरा सँभालना, मेरी जाँ, अपनी निगाहें	३८
७. हम भी जुआ खेले	४५
८. जब लोग आपको टालते हैं	५०
९. दो प्रयोग	५५
१०. छात्र, अध्यापक, सरकार : तब और अब	५९
११. हम भी लखपति हैं	६४
१२. वक्त देखो, बात देखो	६९
१३. सम्पादक की मुसीबत	७७
१४. आँखें आयीं	८३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुक्रम

१.	डॉ० एम० ए०, पी-एच० डी०	६
२.	शराब, हमारा राष्ट्रीय पेय	१८
३.	दाद का आनन्द	२३
४.	बरसात में	२८
५.	पत्नी शरणं गच्छामि	३२
६.	ममी ! जरा सँभालना, मेरी जाँ, अपनी निगाहें	३८
७.	हम भी जुआ खेले	४५
८.	जब लोग आपको टालते हैं	५०
९.	दो प्रयोग	५५
१०.	छात्र, अध्यापक, सरकार : तब और अब	५९
११.	हम भी लखपति हैं	६४
१२.	वक्त देखो, बात देखो	६९
१३.	सम्पादक की मुसीबत	७७
१४.	आँखें आयीं	८३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१५. वह दिन आने वाला है, जब···	९३
१६. लाखों के बोल सहे इस शक्ल के लिए···	९९
१७. धर्मराज के दरबार में जानवर	१०३
१८. बच्चों की शह और मात	१०८
१९. बेशरमी : जीवन का एक अनिवार्य तत्त्व	११४
२०. ये दाँतों के डॉक्टर	११८
२१. थर्ड क्लास कम्पार्टमेंट	१२२
२२. परिवार-नियोजन-सप्ताह : एक उद्घाटन-गोष्ठी	१२८
२३. हिन्दी साहित्य : सामान्य ज्ञान परीक्षा, १९६२	१३४
२४. शादी के बाद : एक पहलू	१४३
२५. चिलम्भरा प्रज्ञा : अभीष्ट-प्राप्ति का अमोघ साधन	१४७
२६. देवताओं को पत्र	१५६
२७. पर उपदेश कुशल	१६१
२८. दिन एक : उद्घाटन भाषण दो	१६५
२९. कहते हैं जिन्हें शिक्षित वर !	१७०
३०. विद्वान्सः मूर्खाः भवन्ति	१७६
३१. (एक) भारतीय मन्त्री का भौगोलिक वर्णन	१८३
३२. टेलीफोन की मुसीबत	१८९
३३. बसूली किताबों की	१९६
३४. यह मुँह आप ही का है	२०४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डॉ० एम० ए०, पी-एच० डी०

एक सज्जन से किसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसरों का परिचय कराया गया। जब प्रत्येक प्रोफेसर के नाम से पहले, सत्यानाश से पूर्व टी० बी० या मुकदमे की भाँति, डॉक्टर शब्द जोड़ा गया तो आगन्तुक महोदय बिगड़ खड़े हुए, "इन यमदूत के रिश्तेदारों से मुझे क्या मतलब ? मैं विश्वविद्यालय देखने आया हूँ, कोई अस्पताल नहीं।"

प्रयोजन इतना कि पी-एच० डी० बीसवीं सदी का एक भयंकर रोग है, जो व्यक्ति को अध्यापक होते ही धर दबाता है। जब ये रोगी विद्यालयों की सीमाएँ छोड़ते हैं तो सिनेमा, सभा, गोष्ठी और सफर—सभी स्थानों पर किसी-न-किसी वेश को धारण किये, दृष्टि-पथ में फुली की भाँति अनुभव होते हैं। तीसरे दर्जे के डिब्बे की बात है। कुछ ग्रामीण किसी राजनीतिक विषय पर अपने ढंग से तर्क कर रहे थे कि एक अन्य साहब ने, चन्द्रमा में ल्यूनिक की तरह, अपनी टाँग अड़ा दी। स्वभावत: ग्रामीणों को यह स्वादिष्ट न लगा। एक ने पूछा, "कौन हैं, जी, आप ?"

"मैं हिन्दी का डॉक्टर हूँ।" उन साहब ने रौब से कहा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

१५.	वह दिन आने वाला है, जब···	९३
१६.	लाखों के बोल सहे इस शक्ल के लिए···	९९
१७.	धर्मराज के दरबार में जानवर	१०३
१८.	बच्चों की शह और मात	१०८
१९.	बेशरमी : जीवन का एक अनिवार्य तत्त्व	११४
२०.	ये दाँतों के डॉक्टर	११८
२१.	थर्ड क्लास कम्पार्टमेंट	१२२
२२.	परिवार-नियोजन-सप्ताह : एक उद्घाटन-गोष्ठी	१२८
२३.	हिन्दी साहित्य : सामान्य ज्ञान परीक्षा, १९६२	१३४
२४.	शादी के बाद : एक पहलू	१४३
२५.	चिलम्भरा प्रज्ञा : अभीष्ट-प्राप्ति का अमोघ साधन	१४७
२६.	देवताओं को पत्र	१५६
२७.	पर उपदेश कुशल	१६१
२८.	दिन एक : उद्घाटन भाषण दो	१६५
२९.	कहते हैं जिन्हें शिक्षित वर !	१७०
३०.	विद्वान्सः मूर्खाः भवन्ति	१७६
३१.	(एक) भारतीय मन्त्री का भौगोलिक वर्णन	१८३
३२.	टेलीफोन की मुसीबत	१८९
३३.	बसूली किताबों की	१९६
३४.	यह मुँह आप ही का है	२०४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डॉ० एम० ए०, पी-एच० डी०

एक सज्जन से किसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसरों का परिचय कराया गया। जब प्रत्येक प्रोफेसर के नाम से पहले, सत्यानाश से पूर्व टी० बी० या मुकदमे की भाँति, डॉक्टर शब्द जोड़ा गया तो आगन्तुक महोदय बिगड़ खड़े हुए, "इन यमदूत के रिश्तेदारों से मुझे क्या मतलब ? मैं विश्वविद्यालय देखने आया हूँ, कोई अस्पताल नहीं।"

प्रयोजन इतना कि पी-एच० डी० बीसवीं सदी का एक भयंकर रोग है, जो व्यक्ति को अध्यापक होते ही धर दबाता है। जब ये रोगी विद्यालयों की सीमाएँ छोड़ते हैं तो सिनेमा, सभा, गोष्ठी और सफर—सभी स्थानों पर किसी-न-किसी वेश को धारण किये, दृष्टि-पथ में फुली की भाँति अनुभव होते हैं। तीसरे दर्जे के डिब्बे की बात है। कुछ ग्रामीण किसी राजनीतिक विषय पर अपने ढंग से तर्क कर रहे थे कि एक अन्य साहब ने, चन्द्रमा में ल्यूनिक की तरह, अपनी टाँग अड़ा दी। स्वभावतः ग्रामीणों को यह स्वादिष्ट न लगा। एक ने पूछा, "कौन हैं, जी, आप ?"

"मैं हिन्दी का डॉक्टर हूँ।" उन साहब ने रौब से कहा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नी शरणम् गच्छामि

"डॉक्टर है तो देख नब्ज !" और उस ग्रामीण ने बालों से भरी रीछ-सी मोटी बाँह उन साहब के कमल-नयनों के सामने कर दी; जैसे किसी सुन्दरी के मृणालकरों की ओर अंगूर के स्थान पर पका काशीफल बढ़ा दिया गया हो।

"लेकिन मैं तो हिन्दी का डॉक्टर हूँ।"

"हिन्दी का हो या बूंदी का। डॉक्टर है तो नब्ज देखना आता ही होगा।"

"ये आजकल के थर्मामीटरी डॉक्टर नब्ज देखना क्या जानें, हटा ले बाँह।" और दूसरे ग्रामीण ने बाँह हटा दी। उन साहब ने शान्ति से भरी एक साँस ली।

वास्तव में उन डॉक्टर महोदय के माध्यम से उस ग्रामीण ने इन पी-एच० डी० धारियों को एक अच्छा पाठ पढ़ाया था। मान लीजिये, आपने चार-पाँच साल तक दर्जनों पुस्तकों की नकल कर 'तुलसी-दर्शन' पर थीसिस लिखी तो क्या यह आवश्यक है कि भाषा-विज्ञान भी आपकी उँगली पर नाचे या बिहारी-पद्माकर की रसीली नायिकाएँ आपके बुढ़ऊ इशारों को समझ लें ? किसी एक विषय का डॉक्टर किसी अन्य विषय के क्षेत्र में अनुचित आतंक क्यों जमाता है ? अरे भाई, तुम अपनी औलाद के बाप हो, किसी और से बेटा कहोगे तो लिहाज-शिष्टाचार की बात दूसरी है, वरना एक झापड़ में आपकी गर्दन को चर्खी-सा घुमा देगा।

आजकल की थीसिसों में नवीनता, परिश्रम और मौलिकता के दर्शन लेटेस्ट फैशन के ब्लाउजों में बाँहों के समान दुर्लभ हैं। जिस प्रकार चलचित्रों में ऊँट पै टाँग (ऊँटपटांग) कथानकों की भरमार होती है उसी प्रकार थीसिसों में, दो साहित्यों की तुलना, भाषा-विज्ञान, लोक-साहित्य और पाठानुसंधान को छोड़ अजीबोगरीब घिसे-पिटे विषय पाये जाते हैं। आधुनिकाओं के प्रदर्शित उरोज-ऊर्ध्व-भागों की भाँति ये थीसिसें खोखली दिखाई देती हैं। उघड़े पेट के समान भद्दी और सरकारी नीतियों के समान समझ में न आनेवाली इन थीसिसों की प्रशंसा के पुल (बिना आधार) उनके 'भाई-बन्द' ही बाँधते हैं। शोध-युग के बरसाती मौसम में मच्छरों के समान बढ़नेवाले ये पी-एच० डी०, मौलिक साहित्य की मच्छरदानी तानने पर भी अन्दर प्रवेश कर जाते हैं और सच्चे साहित्यकारों के कानों पर निरन्तर भनभनाते रहते हैं।

हाँ, द्वार पर जूते उतारकर मंदिर में पूजा करनेवाले भक्त के विभाजित मन के समान एक लाभ निश्चित है कि नौकरी अवश्य मिल जायेगी। भारत में अनुभव का प्रश्न नहीं उठता। पचीस वर्ष का पी-एच० डी० पचास वर्ष के अनुभवी से चयन में बाजी मार ले जाएगा। चाहे वह नौजवान पढ़ा खाक न सके और छात्रों की रेड़ ही मार दे। जैसे एक नौजवान ने छन्दशास्त्र पर थीसिस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिखी थी। उसका शुगल यह कि कक्षा में छात्रों से कविता लिखवायें और ह्रस्व-दीर्घ मात्राएँ तथा वर्ण समझाकर छन्दों का नामकरण कराये। कोर्स पूरा होगा या नहीं, उसकी बला से !

एक दूसरे हैं। उन्होंने गाँवों में बोले जानेवाले शब्दों पर अनुसंधान किया है। उनको पढ़ाना तो है आधुनिक कविता, किन्तु गाँव के छात्रों को, उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों का मूल स्रोत बताकर बाजीगर की भाँति चमत्कृत करते रहते हैं।

आप मानें या न मानें, हमारा तो एक-सौ-एक पैसे (सवा सोलह आने) विश्वास है कि इन पी-एच० डी० के ग्रन्थों से ज्ञान-वृद्धि एक इंच भी नहीं हो रही। यह पी-एच० डी० करना तीन-चार साल की क्लर्की तथा अक्ल के साथ नकल करना है। प्रायः एम० ए० में लिखी थीसिस को ही, गुब्बारे से पैराशूट बनाकर पी-एच० डी० ले ली जाती है। एक कॉलेज में 'प्रवक्ताओं की आवश्यकता' के उत्तर में आवेदन-पत्र आये। उनमें से एक प्रार्थी ने स्पष्ट लिखा था, "मैंने जान-बूझकर पी-एच० डी० नहीं की। क्योंकि पी-एच० डी०-प्राप्ति कुशल व्यवहार और 'कुछ' रुपया व्यय करने की कला मात्र है, जिसके द्वारा कहीं भी और कभी भी रिक्शा की सवारी की तरह डॉक्टरेट को हासिल किया जा सकता है।"

धनी परिवारों में फैशनपरस्ती और नाजुकमिजाजी के समान इस कथन में तथ्य जान पड़ता है, जिसकी पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से होगी—

क महोदय ने एक विषय पर शोध-प्रबन्ध लिखा और आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० छीन ली। उसी शोध-प्रबन्ध पर नागपुर यूनिवर्सिटी से डी० लिट्० माँग ली। आप ही बताइये इन्हें डी० लिट्० के लिए कौन-सा हल चलाना पड़ा, जिससे उनकी विद्वत्ता बढ़ गई।

ख महोदय ने जर्मनी या पेरिस जाकर सूरदास पर डॉक्टरेट ली। यों समझिये जैसे कीमती सूट पहनकर गड़ेलियाँ बेचने वाले को रस-सिद्धान्त का प्रामाणिक लेखक मान लिया गया हो।

ग महाशय ने गीति-काव्य पर एक शोध-प्रबन्ध लिखा, उसमें संगीत पर भी एक वृहद अध्याय था। निरीक्षकों ने जब वायवा में उनसे एक राग के विषय में पूछा तो लेखक प्रश्नक की आँखों के क्षेत्रफल को अपनी फटी आँखों की जरीफ से नापने लगा। वास्तव में वह अध्याय लिखवाया ही किसी और से गया था। स्वयं लेखक के लिए नैनीताल, हड़ताल और त्रिताल में अथवा राग माहेश्वरी और बागेश्वरी में दो सिक्कों के समान कोई अन्तर न था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नी शरणम् गच्छामि

घ महाशय ऐसे लिक्खाड़ हैं कि स्वयं तो डॉक्टर हुए ही, अपने दो भाइयों को भी स्वयं थीसिस लिखकर डॉक्टर का चोला धारण करा दिया।

ङ महोदय को अपने एक मित्र के पास एक प्राचीन कवि का कविता-संकलन प्राप्त हो गया। बस उन्होंने उस संकलन का सम्पादन किया तथा थोड़ी टिप्पणी और किंवदंतियों के साथ परिचय दिया। लीजिये, पी-एच० डी० का नुस्खा तैयार हो गया।

च महाशय ने किसी भूमि-खण्ड के लोक-गीत एकत्र किये और उनके अर्थ-प्रसंगों से पृष्ठ पर पृष्ठ रंग दिये। डॉक्टरेट का इन्जेक्शन तैयार हो गया।

छ साहब को पाण्डुलिपि पर तो पी-एच० डी० मिली और तनिक सँवार-कर छापा गया तो डी० लिट्० टपक पड़ी।

ज महाशय ने और भी शॉर्टकट निकाला। जीवित साहित्यकार के पास पहुँचे और चरण-वन्दना की। फिर 'छपे' से, 'बिना छपे' से एवं 'हृदय-छिपे' से थीसिस पूरी कर ली। साहित्यकार भी आत्म-प्रशंसा में सिकुड़कर सोंठ से अदरक हो गये।

इसी प्रकार के अन्य उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा कि डॉक्टरेट पाना प्रसिद्धि-प्राप्ति एवं नौकरी हस्तगत करने की आधुनिक कला मात्र है। एक प्रख्यात शिक्षा-संस्था है, जिसके एक विभाग के अध्यापकगण दबात फोड़ते और कलम तोड़ते थक गये किन्तु हकीमी पसीने की एक बूँद न झलकी; किन्तु तभी उनका अध्यक्ष ऐसा जादूगर आया कि तीन-चार वर्षों में ही सभी अध्यापकों के डॉक्टरेट की दुम निकल आयी। यह अध्यापकों की योग्यता थी या नये अध्यक्ष के बच्चे खिलाने और पालक-नींबू लाने का पारिश्रमिक, कौन जाने !

जिस प्रकार भारतीय कुल-ललनाएँ शादी के बाद अपने शरीर-सौन्दर्य का ध्यान नहीं रखतीं उसी प्रकार अध्यापक पी-एच० डी० पाने के बाद प्रायः सुन्दर पुस्तकें लिखना छोड़ देता है और बच्चों की तरह ही 'एक अध्ययन-सीरीज', 'साहित्यरत्न-गाइड' या 'जयशंकर प्रसाद प्रश्नोत्तरों में' जैसी पुस्तक-पंक्ति जनने लगता है। बहुत अधिक श्रम करेगा तो नवोदित आलोचकों की पुस्तकों पर अपना नाम 'ऊपर' डलवा लेगा या कई लेखकों की रचनाओं का संकलन कर अपनी 'कृतियों' की संख्या बढ़ा लेगा।

एक किस्म और भी है डॉक्टरेट की। कुछ लोगों के हाथ कटी पतंग की तरह डॉक्टरेट आ लगती है। शायद भयभीत होकर ही इसका नाम 'ऑनरेरी डॉक्टरेट' रखा गया है। अजब हैं देनेवाले और गजब के हैं लेनेवाले। डॉक्टरेट न हुई नुक्कड़ वाले दाऊजी के मंदिर की पंजीरी हो गई जिसे कोई भी गली-गीर हाथ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

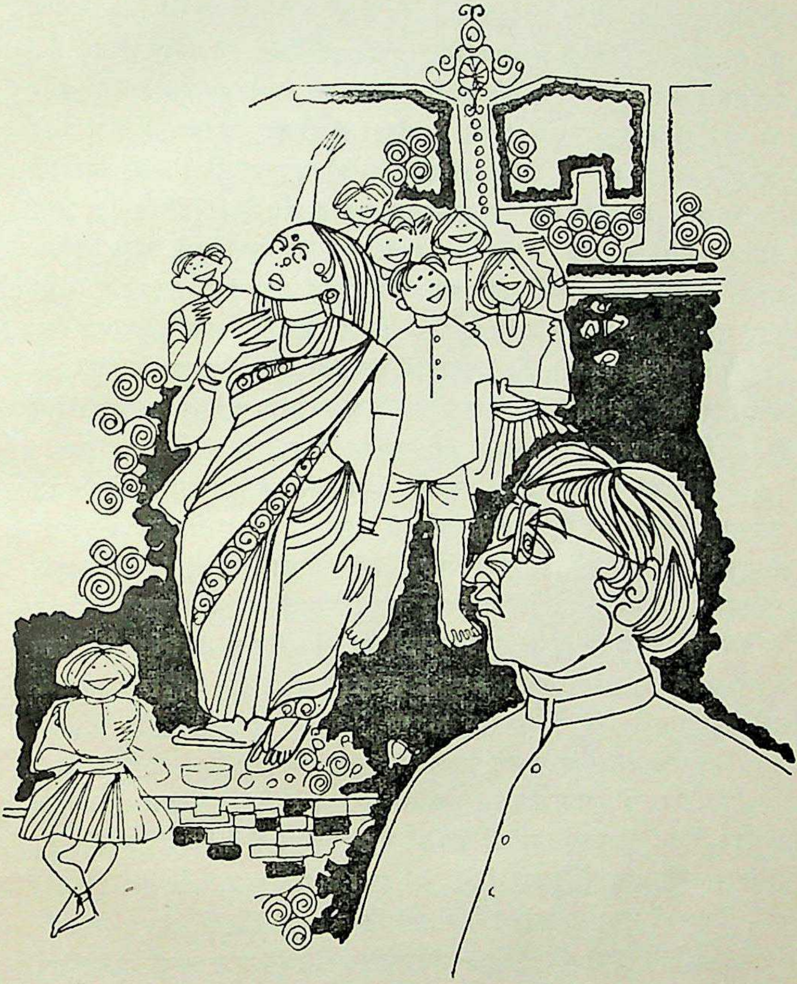

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पसार लेकर चलता बनता है।

असल में शादी से पूर्व जैसे कन्या-दर्शन, गोद-पूरण एवं सगाई-समर्पण होता है वैसे ही थीसिस लिखने से पूर्व कम-से-कम दो सुन्दर पुस्तकें लिखना अनिवार्य हो जाना चाहिए, किन्तु इस मशीन के युग में मन-मस्तिष्क की सुनता कौन है ? जो भी हो, अन्य विषयों में भी थीसिस लिखने का कोई अच्छा रिकार्ड नहीं है। अर्थशास्त्र के एक डॉक्टर हैं जो अपनी थीसिस को कानी पत्नी के समान किसी को भी नहीं दिखाते। एक अंग्रेजी के डॉक्टर हैं जो दो वर्ष तक तो कीट्स पर टटोला-टटोली करते रहे, किन्तु डॉक्टरेट मिली बायरन पर। पता लगा कि तीसरी साल किसी 'चेयरमैन' ने अपना पका-पकाया मैटर दयापूर्वक उन्हें दे दिया था। एक विश्वविद्यालय के दीक्षांत-समारोह पर जब उपाधियाँ बाँटी जा रही थीं तो पी-एच० डी०-मंगतों की संख्या देख हिन्दी के एक डॉक्टर बोले, "अमां यार, हम तो यही समझते थे कि हिन्दी में ही पी-एच० डी० लुटती है मगर अन्य विषयों में तो यह बरसती है।" दावत में वनस्पति की तरह यह तो मानना ही पड़ेगा कि अन्य विषयों के मुकाबले हिन्दी के शोध-प्रबन्ध अधिक प्रकाशित होते हैं। इसलिए हिन्दी का पोल-खाता अधिक पकड़ में आता है।

आइये, इन पी-एच० डी० करानेवालों पर भी एक निगाह डालते चलें। जब एक प्रौढ़ प्रोफेसर ने एक कुमारीजी से पूछा, "आपने तो बटन दबाते ही पी-एच० डी० कर ली" तो उस स्पष्टभाषिणी ने उत्तर दिया, "भाई साहब, संक्षिप्त में सब समझिये। मेरे गाइड प्रसिद्ध विद्वान हैं, वृद्ध हैं। बुढ़ापे में भी वे रीतिकालीन काव्य में गहरी डुबकी लगाते हैं। मैं सुन्दर हूं, आकर्षक हूं, स्वस्थ तरुणी हूं। मैं स्वाभाविक रूप से मधुरिम मुसकराई तो उन्होंने आधुनिक काव्य में पड़ी मेरी नाव के लिए भी पतवार उठा ली।"

प्रौढ़ भाई आंख-मुंह फाड़ते रह गये।

एक परिश्रमी युवक ने जब थीसिस पूरी कर ली, गाइड ने आदेशनुमा निवेदन किया, "तुम्हारी इस थीसिस को मैं अपनी लड़की के लिए लिये लेता हूं। विश्वास रखो, तुम्हारी दूसरी थीसिस पर तुम्हें डॉक्टरेट अवश्य दिलवा दूंगा।"

विवश हो युवक ने निवेदन शिरोधार्य किया।

त महोदय का तो बँधा रेट है—प्रति थीसिस तीन हज़ार से लेकर पांच हज़ार रुपये तक। वे भी क्या करें ? स्वयं उनकी थीसिस रुपये देकर पास हुई थी।

एक अधबनी कोठी पर दो मित्रों को देखा जो ईंटों से भरे गधों की ओर अस्वाभाविक रूप से इशारा कर रहे थे। हमने पूछा, "क्या माजरा है ?"

करम ठोंकते एक ने कहा, "यह कोठी मेरे गाइड की बन रही है। कुछ कमरे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रह गये हैं, ईंटें मेरे भट्टे से आ रही हैं।"

दूसरे ने भी सिर पीटा, "मैं भी इन्हीं के अण्डर में डॉक्टरेट कर रहा हूँ। अभी तो मजदूरों आदि की देखभाल करनी पड़ रही है।"

"फिर ?"

"फिर क्या, लगता है कि इस कोठी की बिजली-फिटिंग मेरे चचिया ससुर के सामान से होगी।"

हमें हँसी आ गई, "चलो, सामान गधों पर लादकर तो नहीं लाना पड़ेगा। हाँ, इन शोधों से निश्चय ही ज्ञान की श्रीवृद्धि कर रहे हो। स्पष्ट है कि इस कोठी और तुम्हारी डॉक्टरेट का भाग्य साथ-साथ जुड़ा हुआ है। ईश्वर तुम्हें सफल बनाये।"

थ महाशय हैं। कल तक नवीं कक्षा को पढ़ाते थे पर आज की नवधा भक्ति (खुशामद) से विश्वविद्यालय पहुँच गये हैं और डॉक्टर हो गये हैं। कहीं पर भाषण देंगे तो दिये हुए समय में नब्बे प्रतिशत खाँसना, मठारना और जल पीना होगा और दस प्रतिशत सम्बोधन सहित किश्तों में बोलना। आपने एक प्रवक्ता को शिष्य बनाया। शिष्य जब भी कुछ लिखकर लाता, आप फर्माते, "अति विस्तृत है।" एक सप्ताह बाद शिष्य फिर आता तो आप कहते, "अति संक्षिप्त है।"

एक दिन हमारे ही सामने जब 'अति संक्षिप्त है' कहा तो आज्ञाकारी शिष्य किंचित् संकोच के साथ बोला, "किन्तु यह तो वही है जिसे आपने पिछली बार अति विस्तृत कहा था, मैं एक शब्द भी कम नहीं कर सका हूं।"

द भी नये गाइड बने हैं। वे अपने शिष्यों को यूनिवर्सिटी बुलाते हैं और कक्षाओं में छात्रों के सामने उन्हें 'मॉडल' की भाँति पेश करते हैं। फिर उन शिष्यों से कहते हैं, "घर पर आइये, आराम से गाइड कर सकूँगा।"

नौ मील दूर से आये शिष्य बैरंग वापस हो जाते हैं।

ध साहब से भी हम परिचित हैं। उनके पास जब पी-एच० डी० प्रार्थी आता है, वे उसे कोई विषय देते हैं कि उस पर कुछ लिखकर लाये ताकि प्रार्थी की योग्यता का अनुमान लगाया जा सके। बेचारा प्रार्थी कठिन परिश्रम से लिख-कर लाता है। निबन्ध को पास रख 'ध' जी कहते हैं, "ठीक है, आप विषय-चयन के लिए घर आइए" या घर हुए तो "विद्यालय आइए" और फिर सद्यःस्नाता की केश-बूंदों के समान 'समय न होने' के साफ़ बहाने टपकने लगेंगे।

असल में गाइड और परीक्षक में भिन्नता नहीं है। शोध-प्रबन्धों की परीक्षा करने वाले गुरु-घंटालों की बात जाने दीजिये, वे तो परस्पर लगे-बँधे होते ही हैं,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम तो एक छोटे और नये परीक्षक की बात कहते हैं। शोध-प्रबन्ध को पास कर हमसे कहा, "लगता है कि इस थीसिस-लेखक ने एम० ए० भी खुद पास नहीं की।"

"फिर तुमने थीसिस क्यों पास कर दी ?" हमने जिज्ञासा प्रकट की।

"यार, तुम समझते क्यों नहीं ?" उसने निराशा के भाव में उत्तर दिया, "मेरे अकेले से क्या होता है ? दो और जो नामी-गिरामी विद्वान् हैं, उनका क्या होगा ? उनके सामने मेरे रिमार्क की क्या कीमत ? अगर मैं एक भी थीसिस फेल कर दूं तो आगे मुझे थीसिस का परीक्षक ही नियुक्त नहीं किया जायेगा। पैसे भी हाथ से जायेंगे और दिग्गजों का बुरा भी बनूंगा।"

"तो क्या कोई थीसिस फेल नहीं होती है ?"

"क्यों नहीं, जिसको ये मठाधीश चाहें। फिर थीसिस के अच्छी-बुरी होने का प्रश्न नहीं उठता।"

इसीलिए हम कहते हैं कि यदि आप इधर-उधर देखें तो आपको ऐसे अनेक पी-एच० डी० (किसी भी विषय में) मिलेंगे जो अपने 'टॉपिक' पर आपसे कभी बात नहीं करेंगे। ऐसे लोग न अपनी थीसिस लिखने की चर्चा करेंगे, न कभी अध्यापन से अवकाश लेंगे और न पुस्तकालय से कोई पुस्तक। तीन साल के बाद सप्ताह-भर की छुट्टी लेंगे और जब लौटेंगे तो आपको आश्चर्य होगा कि उनके वक्ष पर डॉक्टरेट का उपाधि-पत्र, ड्राइंगरूम में उधार सामान-सा शोभा पा रहा है।

एक परीक्षक ने इण्टरव्यू में थीसिस-लेखक से शिकायत की, "आपने तो मेरी पुस्तक से ही पर्याप्त सामग्री ज्यों-की-त्यों ले ली है।"

"सच कह रहे हैं आप।" लेखक ने बिना झिझक कहा, "आपने भूमिका नहीं पढ़ी। मैंने आरम्भ में ही जीवन-भर न भूलने वाला आपका आभार प्रकट किया है।"

बहुत दिन हो गये। हमने एक शोध-प्रबन्ध की पांडुलिपि पढ़ी तो हमारे मुख से निकला, "डॉक्टरेट नहीं मिलेगी, एकदम रद्दी है।"

"मेरे और आपके विचार समान हैं।" उत्साह से लेखक बोले, "किंतु मैं इसे अंग्रेजी में सबमिट करूँगा, क्या समझे ?"

और हम समझ-बूझकर भी अवाक् विद्युत-स्तम्भ-से खड़े थे।

एक नया प्रयोग और होने लगा है। रेडियो पर परिसम्वाद में एक ही विषय पर कई वक्ता भाग लेते हैं, किसी उपन्यास को भी कई लेखक हिस्से बाँटकर लिख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डालते हैं, इसी प्रकार गणित में पी-एच० डी०-पथ के एक कुशल पथिक ने शोध-प्रबन्ध के विभिन्न अध्याय विभिन्न गणितज्ञ-मित्रों से लिखवा डाले। अब रह गया गणित का इतिहास। इसके लिए वे एक साहित्यकार के पास पहुंचे। साहित्यिक उछलकर चौंके जैसे अंगारे पर पैर पड़ गया हो, "मेरा गणित से क्या सम्बन्ध ? धोबी का हिसाब भी श्रीमतीजी लगाती हैं।"

"जानता हूँ। यह पुस्तक लो, गणित का पूरा इतिहास दिया हुआ है। बस, तीस-पैंतीस पृष्ठों में संक्षिप्त कर दो।" शोध-प्रबन्धक मुसकराये।

और वह साहित्यकार भी अवाक् विद्युत-स्तम्भ-सा खड़ा रह गया। एक वेश्या-सन्तान और उस शोध-प्रबन्ध में क्या अन्तर रहा, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था।

छपते-छपते—एक नया तथ्य प्रकाश में आया है। अब पी-एच० डी० उपाधि-धारियों की संख्या इतनी अधिक हो गई है कि कोई भी नौकरी पाने में भयंकर प्रतियोगिता खड़ी हो जाती है। एक सरकस वाले ने अपनी आवश्यकता 'सरकस में काम करने के लिए २००-१५-४५० के ग्रेड में एक एम० ए० पास आदमी की जरूरत है' विज्ञापित की तो सात पी-एच० डियों ने भी प्रार्थना-पत्र भेजे। निदान रीछ की खाल ओढ़कर नाचने के लिए एक पी-एच० डी० को रख लिया गया।

एक बार जब यह पी-एच० डी० रीछ, सिंह के पिंजड़े के सामने नृत्य कर रहा था तब गलती से सिंह के पिंजड़े का द्वार खुल गया। सिंह बाहर निकल आगे बढ़ा। रीछ की घिग्घी बँध गई और बेहोश होने को हुआ, तभी सिंह ने उसके कान में धीमे-से कहा, "घबराओ मत, मैं भी एक पी-एच० डी० हूँ।"

आगरा के एक सुप्रसिद्ध लेखक के कथनानुसार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शराब, हमारा राष्ट्रीय पेय

चारों ओर भीड़ और बिजली की रंग-बिरंगी जगमगाहट थी। सड़क पर जो फटेहाल खड़े थे उनके हाथों में ताड़ी के कुल्हड़ थे, जो साबुत कपड़े वाले व्यक्ति चबूतरे पर चढ़ आये थे उनके हाथों में देशी ठर्रे की बोतलें थीं और जो शरीफ आदमी दूधिया खद्दर या लेटेस्ट टेरिलीन की ड्रेस धारण किये थे, सामने नई कुर्सियों पर विराजमान थे, उनके सम्मुख चिकनी मेजों पर फर्स्ट क्लास शैम्पेन शोभायमान थी। मंच पर नेताजी खड़े थे, गले में नोटों की माला थी और जेबों में एक अदद प्रति जेब की दर से बोतल ठुँसी थी। नेताजी के पीछे उनका प्राइवेट सेक्रेटरी खड़ा था, उसके हाथ में भी शराब की बोतल थमी थी। सहसा युवा ठेकेदार ने नेताजी के हाथ में शराब की नई बोतल दी। नेताजी ने कर-कमलों से उस बोतल की कार्क तोड़ी, और हर्ष-ध्वनि के बीच उसे मुखारविन्द में डाला। तभी चारों ओर ताड़ी, ठर्रे और शराब में चुस्कियाँ लगना आरम्भ हो गया।

नेताजी ने उद्घाटन भाषण शुरू किया, "भाइयो, मोर हमारा राष्ट्रीय पंछी है और शराब हमारा राष्ट्रीय पेय। नारी की लज्जा की भाँति नशा हमारा प्राचीन एवं परम्परागत आभूषण है। वैदिक युग से ही सोमरस और भाँग की अजस्रधारा प्रवाहमान रही है। इस युग में आकर शराब ने सोमरस या भाँग का अधिकांश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गौरवपूर्ण स्थान ले लिया है। शराब विदेशी है, हम जानते हैं। मगर विदेशी कोट-पैंट हमारी राष्ट्रीय ड्रेस है, विदेशी भाषा अंग्रेज़ी हमारी राष्ट्रभाषाओं से भी बढ़कर है, विदेशी खेल क्रिकेट हमारा राष्ट्रीय खेल है, इसी प्रकार शराब हमारा राष्ट्रीय पेय है। यदि ऐसा न होता तो किसी भी विदेशी मेहमान, मंत्री, प्रधान-मंत्री या प्रेसिडेंट आदि के सामने शराब न परसी जाती। हो न हो, शराब से भारतीय सभ्यता और संस्कृति की सुनहरी किरणें अवश्य फूटती हैं।''

तालियाँ बजती हैं।

''जब मैं घर से चला तो घरवालों ने कहा कि शराब की दूकान का उद्‌घाटन ठीक नहीं है। अगर ठीक न होता तो यहाँ अनेक विख्यात नेता और सरकारी अफसर उपस्थित न होते। यहाँ जिलाधीश भी हैं और कमिश्नर भी तशरीफ रखते हैं। इस बारे में पहली बात तो यह है कि हमें गाँधीजी के सिद्धान्तों के अनुसार किसी भी चीज़ से घृणा नहीं करनी चाहिए। हाँ, उसकी बुराइयों को अवश्य दूर करना चाहिए। आखिर हमारा नारा है कि मच्छर रहेंगे, मलेरिया नहीं।''

तालियाँ बजती हैं।

''अत: यह अनुसंधान का विषय है और इस ओर मैं शराब के यशस्वी निर्माताओं का ध्यान आकर्षित करता हूँ। दूसरी बात यह है कि जब सभी वस्तुओं, बाँध, स्टील प्लांट, हास्पिटल, विद्यालय आदि का उद्‌घाटन मंत्री लोग कर देते हैं तो फिर हमारे लिए क्या शेष रह जाता है? मैं पूछता हूँ कि क्या मन्त्रियों द्वारा उद्‌घाटन से बाँध में दरार पड़ने से रुक जाती है, प्लांट में प्रोडक्शन बढ़ जाता है, हास्पिटल से दवाइयाँ चोरी नहीं जातीं या गरीब मरीज बिना इलाज नहीं मरते अथवा शिक्षा का स्तर ऊँचा हो जाता है? फिर क्यों सरकारी मंत्रियों के आने-जाने और प्रबन्धादि में लाखों रुपये बर्बाद किये जाते हैं? असल में मूल उद्देश्य उद्‌घाटन द्वारा आत्म-विज्ञापन करना है। उद्‌घाटन करने की वस्तु चाहे कोई डाकखाना हो, शराब की दूकान हो, हज्जाम का सैलून हो, धोबी की लाउण्ड्री हो, सहकारी शौचालय हो या जूतों का कारखाना हो, सबका महत्त्व समान है। आखिर ये सब जनता की वस्तुएँ हैं, उद्‌घाटन की रस्म के साथ जनता को ही समर्पित की जाती हैं। अतएव मेरी राय में यह उद्‌घाटन एक सौ एक पैसे समीचीन है। हम ठाली बैठों का, चाहे मंत्रीपद पर हों या किसी योजना के अन्तर्गत संगठन के लिए पद से हटाये गये हों, कर्तव्य है कि श्मशान के उद्‌घाटन के लिए भी तैयार रहें क्योंकि जनता के साथ हम लोगों को भी लाभ मिलता ही है, क्योंकि आत्मा-परमात्मा की भाँति हम भी आखिर जनता से अलग नहीं रह सकते।''

तालियाँ बजती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नी शरणम् गच्छामि

"जो शराब की बुराई करते हैं, मेरा ख़याल है, उन्होंने पी ही नहीं। जो एक बार इसका रस चख लेता है वह फिर बिना पिये रह ही नहीं सकता। 'शराब-बन्दी-सप्ताह' में कोई न भी पिये और भाँग-चरस में भले ही दिन खराब करे मगर आठवें दिन वह झक मारकर पियेगा। महात्मा सूरदास पहले ही कह गए हैं—

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पै आवै ॥

जरा सोचिए तो अगर उर्दू शायरों ने कभी शराब में डुबोकर कलम न चलाई होती तो आज की कविता में यह चसक कहाँ से आती ? किसी ने क्या खूब कहा है—

शेख जी ! डूब के रह जायगी पैमाने में,
तोबा को साथ न ले जाइए मयखाने में।

बच्चनजी की मधुशाला को छोड़कर हमारे हिन्दी कवियों से पीना नहीं आता। कमबख्त पीते भी हैं और रस-हीन कविता भी करते हैं।

शराब पीने से दो राष्ट्रीय एवं आध्यात्मिक लाभ हैं। पहला यह कि शराब पीकर हम में दम नहीं रह जाता, हम मक्खी भी नहीं मार सकते अत: हम घोर अहिंसावादी एवं शान्ति-प्रतिपादक बनते हैं। चीन को देख लीजिए, उसने अपना अफीम का राष्ट्रीय नशा छोड़ दिया है तो कैसा हिंसावादी एवं विश्वशान्ति को खतरा बन गया है। दूसरा लाभ यह है कि हमारा शरीर और मस्तिष्क दिन-ब-दिन कमज़ोर होता जाता है जिसके फलस्वरूप हमारी आत्मा को तगड़ी होने का मौका मिलता है और हम अपने को परमात्मा के अधिक निकट अनुभव करते हैं।"

तालियाँ बजती हैं।

"इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत लाभ भी हैं। देखिए, भाँग पीने से ही कितना लाभ हो सकता है, इसका एक ही उदाहरण दूँगा। हमारे पूज्य भोलाशंकर त्रिकाल-विख्यात भंगड़ी हैं, नशे में कुछ नहीं कर पाते तो फेमिली के साथ अपने ससुर हिमराज की प्रसिद्ध कोठी कैलाश में पड़े रहते हैं। संतानें भी स्वाभाविक स्वरूप की नहीं हुईं मगर उन्होंने कोई चिन्ता नहीं की। इसी प्रकार हम भी सरकार के दामाद हैं। समिति, उपसमिति, जाँच-समिति नामक अनेक सरकारी बेटियाँ हमारी सेवा में हैं। हमारी सलाह या रिपोर्ट हमारी सन्तानें हैं जिनका धड़ कुछ है तो सिर कुछ या धड़ एक है तो मुख छः। एक ख्रुश्चेव साहब हैं। जब वे यहाँ आए तो शराब पीने से ही इनकार कर दिया और बीस बुराइयाँ ऊपर से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर दीं। ख्रुश्चेवजी को याद रखना चाहिए कि हम किसी के दबैल नहीं हैं, हमारी अपनी भी कुछ इच्छाएँ हैं, सिद्धान्त हैं, नियम हैं, इनसे हमें दुनिया की कोई ताकत नहीं हटा सकती। इन्हीं के देश रूस ने हमारे राजदूत से अंग्रेज़ी में परिचय-पत्र लेने से इनकार कर दिया था और तब विवश होकर हमें परिचय-पत्र हिन्दी में पेश करने पड़े थे। मगर यह रूस नहीं, आधुनिक आर्यों की जन्मभूमि इंडिया है, यहाँ अंग्रेज़ी ही चलेगी। खैर, उन्हें शराब न पीने और बुराई करने का नतीजा मिल गया।

"शराब पीने का एक जबर्दस्त आर्थिक कारण है। इससे भारी सरकारी आमदनी होती है और उस आमदनी से जनता के हित के अनेक कार्य संपादित होते हैं। दारू-बन्दी प्रचार के लिए ही लाखों रुपया चाहिए और तेल तिल में से ही निकलता है। इसलिए मैं तो कहूँगा कि संसार में अर्थ-तंत्र के अतिरिक्त कोई और तंत्र नहीं है, अतः सरकार वेश्यालय भी खोले और उनके ठेके भी इसी प्रकार दे। यदि आवश्यकता समझे तो राष्ट्रीयकरण कर ले। अगर कुछों को फ्री पास भी दिये जाएँ तो भी उन वेश्यालयों से भयंकर आमदनी होगी।"

तालियाँ बजती हैं।

"मेरी राय में हम दूध और घी की तो नहीं मगर शराब की नदियाँ अवश्य बहा सकते हैं। हमें अपने मित्र-देशों से चार-पाँच शराब की नदियाँ बहाने के टैण्डर माँगने चाहिए। मेरा विश्वास है कि मित्र-देश दौड़े आयेंगे। फिर उन नदियों से नहरें निकाली जानी चाहिए और नहरों से नालियाँ ताकि हमारे ग्रामीण भाई भी पूरा-पूरा लाभ उठा सकें।"

तालियाँ बजती हैं।

"अन्त में इस दूकान और उत्साही युवक ठेकेदार से मुझे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। चाहे पहले उधार पिलानी पड़े और बाद में कुर्की से दाम वसूल करने पड़ें, मगर यह दूकान शराब का प्रचार-प्रसार अवश्य करेगी क्योंकि घनी आबादी के बीच यह स्थान बहुत उपयुक्त है। एक ओर मंदिरों को रास्ता जाता है तो दूसरी ओर स्कूल-कॉलेजों की ओर; सामने बैंक है और पीछे अस्पताल। मैं संचालकों को परामर्श दूँगा कि इस दूकान को एकदम आधुनिक बनाया जाए। इस दूकान में आभिजात्य एवं अफसर वर्ग की महिलाओं के लिए अलग स्थान हो। प्रतिष्ठित साहित्यकारों, कलाकारों, राजनीतिज्ञों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं एवं धर्मधुरीणों के लिए, जिन्हें शराब न पीने के उपदेश देने पड़ते हैं, एक प्राइवेट कक्ष हो, जहाँ वे सानन्द शराब पी सकें और प्रमाणित न किये जा सकें। मुझे विश्वास है कि इस दूकान पर शुद्ध खद्दर और शुद्ध शहद की भाँति शुद्ध शराब मिला करेगी।

4730

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"मैं एक बार फिर से इस दूकान के प्रति शुभ कामना-प्रकट करता हूँ और आशीर्वाद देता हूँ। मैं वचन देता हूँ कि आवश्यकता पड़ने पर सेवा करने को मैं आधी रात तत्पर रहूँगा। मैं सच कह रहा हूँ कि इस उद्घाटन से मुझे तनिक भी शर्म नहीं आ रही क्योंकि या तो शर्म आज के ज़माने में आती नहीं और यदि आती भी है तो तुरन्त चली जाती है। असल में आज चारों ओर भयंकर भ्रष्टाचार, सिद्धान्तहीनता एवं पापाचार देखकर मैं हृदय से अनुभव कर रहा हूँ कि इस शराब की दूकान के उद्घाटन द्वारा मैं कोई सत्कर्म कर रहा हूँ और अपने जन्म को थोड़ा सफल सिद्ध कर रहा हूँ।

"अन्त में लोगों की शराब के प्रति लगन देखकर मैं दावे से कह सकता हूँ कि वह दिन दूर नहीं है जब मंत्रियों, अफसरों, नेताओं एवं प्रतिष्ठित नागरिक-नागरिकाओं से प्रेरणा पाकर पचास करोड़ मुँह शराब पीने लगेंगे और तब हमें इतनी आमदनी होगी कि बिना किसी देश से कर्ज लिये हम अपनी सभी योजनाएँ पूरी कर सकेंगे। जयहिन्द।"

एकाध ताली बजती है।

बड़ी मुश्किल से नेताजी भाषण खींच पाये। उन्हें नशा होने लगा था। धीमे-धीमे सभी बेहोश होने लगे। सड़क पर ताड़ी वाले परस्पर गालियाँ बक रहे थे। जब थोड़ी देर बाद उद्घाटनकर्त्ता सहित सभी मुफ्ती जैंटिलमैन पूरे बेहोश हो गये तो ठेकेदार ने नौकरों को हुक्म दिया, "साले झेल नहीं पाये और पीते रहे। सबकी जेबें टटोल लो। जिन्हें जानते हो, रिक्शावाले से पता कहकर रिक्शा पर बैठा दो; जिनके ड्राइवर होश में हों उन्हें कार में लाद दो; बाकी को चबूतरे या फुटपाथ पर पटककर दूकान बन्द कर दो। हाँ, नेताजी को सावधानी से घर के दरवाज़े तक खुद पहुँचा दो। नोटों की माला इधर लाओ, असली है।"

शराब के नशे में नेताजी घर की सीढ़ियों पर पैर रखते ही लड़खड़ाये और दरवाज़े से लगी नाली में गिर पड़े। उन्होंने शुरू किया, "हम उस देश के वासी हैं जिस देश में गंगा···बहती है।" तभी कहीं से एक कुत्ते महाशय भी तशरीफ लाये। उन्होंने एक बार नेताजी को सूँघा और एक चरण उठाया। नेताजी ने मुँह खोल दिया और दो क्षण बाद घूँट गले में उतारते हुए किसी प्रकार इतना कहा, "बस ठेकेदार, आज इतनी ही।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दाद का आनन्द

शकुन्तला और दुष्यंत का पुनर्मिलन हो चुका था, किंतु लंगोटिया यार माढव्य उनसे मिलने कई दिन तक नहीं गया था। हारकर स्वयं दुष्यंत उसे तलाश करने निकल पड़े। संध्या का समय था। प्रमोद-उद्यान में बरगद की मूल का सहारा लिये माढव्य दोनों हाथों से दाद खुजाने में लगा था। उसके मुखारविंद से सी-सी का ध्वनि-पराग झर रहा था और हिमकण-सी बूंदें टपक रही थीं।

कई बार पुकारने पर भी जब माढव्य ने पलकों के परदे नहीं उठाए तो दुष्यंत ने दोनों भुजाएँ पकड़कर माढव्य को चकरघिन्नी खिलाकर एक ओर फेंक दिया। माढव्य ने दीदे खोल, रूमाल से मुख साफ़ कर कहा, "सब किरकिरा कर दिया, शाप देने को मन कर रहा है, कैसा आनन्द आ रहा था।"

"आनन्द आ रहा था या दाद खुजाने में लगे थे ?"

"विश्वास रखो, मित्र ! मैं दाद नहीं खुजा रहा था बल्कि बखखर की सरिता में तैर रहा था; जलेबियों और इमरतियों के भँवर पड़ रहे थे; मोदकों और गुलाबजामुनों के बुलबुले फूट रहे थे; गुझियों की मछलियाँ झिलमिला रही थीं; यद्यपि कलाकन्द का किनारा दूर था किंतु मैं रबड़ी की प्रगाढ़-पंक में सना हुआ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था; बर्फी और बालूशाही के टुकड़े न जाने कहाँ से बह-बहकर आ रहे थे; मलाई के फेनों को बिखेरता मैं हलुआसोहन की सीढ़ियों पर चढ़ने ही वाला था कि तुमने झकझोरकर यह अप्रिय पाप कमा डाला।"

"प्रायश्चित्तस्वरूप मैं तुम्हारा सपना साकार कर दूँगा।" राजा दुष्यंत ने क्षमा-सी माँगी।

"तुम क्या खाकर सपना साकार करोगे, राजन्! दाद खुजाने का तो वह आनन्द है कि लोग पास आयी अपनी मृत्यु तक को भूल जाते हैं।"

"वह कैसे?"

"महाभारत की प्रसिद्ध घटना है कि जब महारथी कर्ण दोनों हाथों से अपने रथ का पहिया धरती से निकालने में लगा था तब अर्जुन ने तीक्ष्ण बाणों से उसे बींध डाला।"

"हाँ, घटना तो यही है।"

"वास्तव में बात यह थी कि कर्ण को परशुराम का शाप लगा था कि युद्ध-काल में उसे दाद की खुजली उभर आयेगी। वही हुआ भी। अर्जुन से अन्तिम मोर्चा लेने को कर्ण ने जैसे ही धोती की फेंट कसी कि खुजली उठ खड़ी हुई। तब कर्ण धनुषबाण त्याग आनन्द में ऐसा डूबा कि धनञ्जय के पैने नाराच भी उसमें चेतना लाने में असमर्थ रहे और इस प्रकार दाद-खुजली ने महाभारत की हार-जीत का निर्णय कर डाला।"

"क्यों बेपर की उड़ाते हो?"

"यह बेपर की है? सत्य तो यह भी है कि जब दुर्वासा ने भाभी शकुन्तला को शाप दिया था उस समय वह तुम्हारे ध्यान में नहीं थी।"

"तो फिर किसके ध्यान में थी?"

"किसी के भी नहीं।" विदूषक ने उत्तर दिया, "जिस प्रकार मैं आनन्दविभोर था और तुम्हारी बीसियों आवाज़ों को पी गया, उसी प्रकार भीगी लटा को बाँधने के कारण भाभी शकुन्तला की कमर में भी दाद हो गये थे। वह उन्हीं को खुजाने में लगी थी। उस समय दुर्वासा तो क्या, साक्षात् ब्रह्म भी मोक्ष प्रदान करने को आवाज़ लगाता तो भी भाभी शकुन्तला उसी प्रकार कान न देती जिस प्रकार आज का विधायक चुनाव के बाद पाँच वर्ष के लिए बहरा हो जाता है।"

"सफ़ेद झूठ है।"

"क्या कहा? चलो, अभी भाभी शकुन्तला से पुछवाता हूं।"

सचमुच दाद-आनन्द के सामने शेष सारे आनन्द कर-बद्ध हो पंक्ति में खड़े

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

रहते हैं। रात के सन्नाटे में जब किसी सौभाग्यशाली का हाथ दाद-स्थल पर जा पड़ता है तो निमिष मात्र में वह इन्द्र के अखाड़े में जा पहुँचता है जहाँ उर्वशी और रंभा का नृत्य अपनी सम्पूर्ण कलाओं को बिखेरता होता है। दादाधिकारी के मुख से आनन्द-ध्वनि निकलने लगती है और वह यही कामना करता है कि सारी दुनिया इसी प्रकार हमेशा को सोती रह जाए और वह अनन्तकाल तक दाद खुजाने का ग्रानन्द लूटता रहे।

दाद खुजाना एक कला है। कुछ तो अंगुलि-फल (नाखून) को सीधे इस तरह चलाते हैं जैसे महावट के बाद खेत में हल चलाया जाता है। यह गँवारू तरीका है। सर्वप्रथम दाद-क्षेत्र के नाजुक किनारों को स्वच्छ और कोमल उंगलियों के नरम पोटुओं से सहलाना चाहिए, फिर धीरे-धीरे केन्द्र की ओर अग्रसर होना चाहिए। ज्यों-ज्यों केन्द्र की ओर बढ़े त्यों-त्यों पोटुओं का स्थान नाखूनों को मिलते जाना चाहिए। इस कला से शिवजी पूर्ण परिचित जान पड़ते हैं। किनारों को सहलाते-सहलाते लास्य करते हैं और जब नाखूनों का संयोग केन्द्र से हो जाता है तो ताण्डव-नृत्य की उत्पत्ति होती है।

दाद का आनन्द सारी कलाओं से अधिक ग्रानन्द देता है, अतः दाद-कला ग्रन्य कलाओं से श्रेष्ठ है। भवन-निर्माणकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला एवं काव्यकला सभी में उपकरणों की ग्रावश्यकता पड़ती है किन्तु दाद खुजाने में किसी की भी नहीं। यदि कोई उपकरण (वस्त्र) होता भी है तो उसे हटा देना पड़ता है। दूसरे, ग्रन्य कलाएँ जब तक साध्य ग्रर्थात् पूर्ण नहीं हो जातीं तब तक आनन्द-जननी नहीं हो पातीं (संगीत भी आरम्भ से आनन्द प्रदान नहीं करता। कोई खास लय पूर्ण हो जाती है तो उसी को दुहराया जाता है। कविता तो भाव पूर्ण करने वाली पंक्ति तक पढ़ी ही जाती है)। पूर्ण भवन, सम्पूर्ण मूर्ति, समूचा चित्र और समाप्त हुई कविता ही पूर्णानन्द दे पाती है किन्तु दाद-ग्रानन्द में यह विलम्बाडम्बर नहीं है। दाद का उंगली के अग्रभाग से स्पर्शमात्र हुआ नहीं कि ग्रानन्द की अजस्र धारा सहस्त्र प्रवाहों में फूट निकलती है। तीसरे, अन्य कलाओं का आनन्द-लाभ करने के लिए ज्ञान की ग्रपेक्षा रहती है, किन्तु दाद का आनन्द विद्वान और मूर्ख को एक पटरे पर बैठाल समाजवादी समाज का अद्भुत उदाहरण पेश करता है।

दाद का आनन्द देश, काल और भाषा से परे है। उम्र, रंग, जाति, कर्म का कोई बंधन नहीं। साहित्य-कला को पछाड़ने की तो एक पौराणिक घटना भी है। एक बार ब्रह्माजी कमल में सिकुड़े पड़े दाद खुजाने के आनन्द में निमग्न थे कि सरस्वती आयी ग्रौर ब्रह्मा के कान पर टिटिग्राने लगी, "एक नई रचना सुनो ग्रौर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साहित्यानन्द उठाओ।"

ब्रह्माजी जाग तो पड़े किन्तु सरस्वती को शाप दिया, "दाद-आनन्द में साहित्यानन्द ने विघ्न डाला है, मैं शाप देता हूँ कि जब-जब साहित्यकारों के दाद होंगे उनकी रचनाएँ अधूरी रह जाया करेंगी।"

सरस्वती फूट-फूटकर रोने लगी किन्तु ब्रह्मा ने शाप तो वापस नहीं लिया मगर आश्वासन दिया कि उन अधूरी रचनाओं को अन्य लेखक पूरा कर दिया करेंगे किन्तु उनमें पहले जैसा रस नहीं रहेगा।

कहना न होगा कि 'कादम्बरी' से लेकर 'इरावती' तक यह परम्परा बराबर चली आ रही है।

निःसंदेह दाद का आनन्द ब्रह्मानंद से बढ़कर नहीं तो घटकर भी नहीं है। दादानन्द को ब्रह्मानन्द-सहोदर कहकर ही किंचित् न्याय किया जा सकता है। अहा, उस क्षण की कल्पना कीजिए जब उंगली का अग्रभाग दाद के किनारे से स्पर्श करने ही वाला है। उस क्षण पारस पत्थर भी आये तब भी आपका हाथ नहीं उठेगा, विश्वसुन्दरी आपको समर्पण करने आये तो भी आपकी पलकें नहीं हिलेंगी, कोई भी प्रसंग आपके ध्यान को उस दाद-आनन्द के कल्पना-पथ से नहीं डिगा सकता।

दाद-आनन्द को उठानेवाले बनिये को फड़ पर देखते ही बनता है। कुर्सी पर बैठे प्रोफेसर की तो बात ही क्या। जिरह करता वकील जब सी-सी करता है तो उसका मुवक्किल घबरा जाता है और जज सिर खुजाने लगता है। डॉक्टर को जब खुजली आती है तो इन्जेक्शन हाथ से छूट जाता है और जब ड्राइवर का हाथ चलता है तो नास्तिक सवारियाँ भी रामनाम जपने लगती हैं। जब सैनिक इस आनन्द को उठाता है तो दुश्मन को बिना प्रयास विजय प्राप्त होती है।

आप चाहें या न चाहें, यह आनन्द आपको कब और किस समय आकर्षित करे, इसका कोई ठिकाना नहीं है। एक साहब इण्टरव्यू की कुर्सी पर बैठ नहीं पाए थे कि खुजलीदेवी उठ खड़ी हुई। रोकने की लाख कोशिश की किन्तु हाथ पैंट की जेब में होकर जाँघ पर पहुँच ही गया। क्षण भर में हाथ तीव्रता दिखाने लगा और न चाहने पर भी प्रार्थी के मुख से सी-सी का हलका स्वर निकलने लगा। इण्टरव्यूकर्त्ता भी आश्चर्य में थे। प्रश्न हुआ, "क्या नाम है आपका ?"

प्रार्थी ने हाथ का एक लम्बा रगड़ा मारा और उत्तर दिया, "जी, घनश्याम-दास।"

"पिता का नाम ?"

"जी, रामदास।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"निवास-स्थान कहाँ है ?"

"जी, अलीगढ़ की बगल में इगलास।"

इण्टरव्यूकर्त्ताओं को इस समय तक प्रार्थी की हरकतों से क्रोध आ चुका था। इस अशिष्टता के लिए थोड़ी-सी शर्म आये इसलिए गरजकर प्रश्न किया, "आपकी क्या शिक्षा है ?"

किन्तु इन बातों का घनश्यामदास को होश कहाँ था ? उसने जाँघ पर हाथ का एक जोरदार घिस्सा मारा, कुर्सी पर से आगे सरककर अधलेटा-सा हो गया, आँखें वन्द-सी हुईं और उसके दाँत भींचते मुख से सरस शब्द धीमे से वाहर आये, "हाय-हाय ! एम० ए० पास !"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बरसात में

श्रीमतीजी के साथ छत पर श्रृंगार रस की उपासना कर रहे थे। बात क्रोध और उत्साह के चौराहों को पार कर रति-भावोद्यान तक आ पहुँची थी कि मेघ घिर आये। स्वाभाविक उद्दीपन से उद्दीप्त होकर श्रीमतीजी अनुकूल आश्रय-सी जान पड़ीं। हम कुछ कहें कि श्रीमतीजी चहकीं, "यह बरसात भी क्या मुसीबत है ? बिना खबर दिये जैसे हरिद्वार से सासजी आ टपकती हैं वैसे ही यह मिटी आसमान से उतर पड़ती है ।"

"भाई, बता तो चुके हैं।" हमने शीघ्रता में कहा, "सागर नाम का बहुत बड़ा पानी का सेठ है। उसके बादल नाम के बहुत से बदमाश बेटे हैं। जब दोपहरी में सागर की आँख लगती है तब ये बादल बहुत-सा पानी अंटी में दबाये उड़ जाते हैं और भले घरों की बहू-बेटियों को छेड़ते-भागते हैं। पर जब पहाड़ जैसे कठोर अभिभावकों का झापड़ पड़ता है तो इन बादलों की धोती खुल जाती है और पानी धरती पर बिखर जाता है।"

"पढ़ी-लिखी नहीं हूँ इसलिए बनाते हो।"

"भाई, माफ करना।" हमने सुन्दर श्रीमतीजी को बीच में ही रोका, "असल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में जब भगवान नहाते हैं तो मेह बरसता है। आकाश में तारे हैं न, वे ईश्वरीय टब के छेद हैं। उन्हीं में होकर...।" हमने बात पूरी भी न की थी कि श्रीमतीजी मधुरिम मुसकराने लगीं। वे समझ गईं कि हम उन्हें पुनः बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। हमने बरसात के कारण को दफ्तर के काम की तरह गोली मारी और शृंगार-रस की आराधना में पुनः लगे। श्रीमतीजी हमारे बहुत करीब आ गईं। हमने अपनी चोंच आगे बढ़ाई ही थी कि आकाश फट पड़ा और बादल टूट पड़े।

फिर कहाँ रस की बातें ? श्रीमतीजी दरी-दुपट्टे उठाने भागीं और हमें खाटें उठाने का आदेश मिला। मन ही मन भगवान को गालियाँ चढ़ाने के अलावा कोई चारा न था।

भगवान जब देने पर आता है तो छप्पर क्या आकाश फाड़कर देता है। कहाँ तो इतनी गर्मी कि बड़ों की तबीयत बच्चों के साथ नंगा होकर घूमने की करे और कहाँ ऐसी बरसात कि घर से निकलना ही दूभर। बड़ी बहू भी ऐसे ही मेह को जेठ समझकर अन्दर जा दुबकती है।

उस रात को जो मेह पड़ना शुरू हुआ तो बेशरम मेहमान की भाँति तीन दिन लग गये। केवल बरसात में ही टपकनेवाला हमारा मकान ऐसा कि आकाश का छोटा भाई ! नतीजा यह कि कुछ घंटों में ही भीग-भीगकर बच्चे कमरों, रसोई और बैठक में कागज की नाव तैराने की तैयारी करने लगे।

सोने का नम्बर आया तो जैसे-तैसे माँ को अपनी नंसार भेजा (आठ-दस घर आगे इसी मुहल्ले में है), श्रीमतीजी को मय बाल-बच्चों के अपनी ससुराल भेजा (चार-पाँच घर आगे इसी मुहल्ले में है) और स्वयं अकेले अपने मायके में डटे रहे। लेकिन सोना किस कमबख्त का काम है, स्टूल पर एक कोने में काठ के उल्लू-से खड़े रहे।

रात के एक बजे के लगभग ऐसा लगा कि छत गिर पड़ी। आँख मूँदकर अन्तिम बार दशहरी आमों से मन को हटाकर राम का नाम लेना आरम्भ किया। बीमा की रकम रह-रहकर ध्यान में आ रही थी कि श्रीमतीजी उसे कितनी बार गिनेंगी और कहाँ रखेंगी। रोज़ लच्छेदार रबड़ी मँगाकर, बच्चों को खेलने के बहाने बाहर भेजकर, अकेली उड़ाया करेंगी। हाय, इतनी कम उमर में मौज करने को इतनी बड़ी रकम ! तभी बड़े जोर की आवाज़ हुई और रोना-चीखना शुरू हो गया। समझ गये कि पड़ोसी के मकान का हार्टफेल हो गया। पानी बरस रहा था, बिजली चली गई थी, किसी तरह लोग दबे हुए बच्चों को निकाल रहे थे। हम भी किसी के हाथ से लालटेन लेकर मलबे पर झुके और मन में सोच रहे थे कि कायदे से अब हमारे ही मकान का नम्बर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नी शरणं गच्छामि

तीन दिन के बाद भूख से तड़पते हमने किसी तरह सुबह को पहचान लिया। आँगन का एकमात्र चूल्हा गायब हो चुका था, उसे ढकने वाली परात समाधि-रूप में अवश्य मौजूद थी। रसोईघर का चूल्हा बरसाती पानी में एकरस हो चुका था। माताजी और श्रीमतीजी आकर स्टोव पर टूट पड़ीं। नई दियासलाई की साठ सींकों में से एक ही जल पायी जैसे सत्ताधारी मंत्रियों में से कोई एक भला निकल आये और अपने कर्तव्य को निभा सके। धूप निकली तो बड़ी खुशी से श्रीमतीजी ने झुमके बेचकर छतों पर बत्तीस गधे मिट्टी डलवा दी।

हमारी समझ से तो अपना मकान कभी न हो। पता नहीं कब भूचाल में समा जाए, बरसात में गिर पड़े या बाढ़ में पत्ते-सा बह जाए। किरायेदार तो झींकते हुए किसी प्रकार बक्स और बच्चों को सँभालते घर से बाहर निकल पड़ते हैं मगर मकान-मालिक सिर पकड़कर बैठ जाता है।

जरा घूमने चल दिये। मोहनगेट पहुँचे। हलवाई की दूकान पर इमरतियों का भाव पूछ ही रहे थे कि सामने की हवेली का अट्टा देखते-देखते अररधम हो गया। सेठ घासीराम के साथ परिवार के अन्य सदस्य भी हवेली की निचली मंजिलों से निकल पड़े। सेठ घासीराम अपनी नंगी तोंद पर हाथ फेरते, रोने-चिल्लाने लगे, "मेरा बच्चा मर गया, मेरे बच्चे को बचाओ!"

"रोते हो कि जाकर मलबे को हटाते हो।" हमने सेठ घासीराम की तोंद से उनका हाथ हटाते हुए कहा और उन्हें लेकर तिमंजिले पर आ चढ़े।

मलबा हटाया जाने लगा। सेठ घासीराम आर्त्तस्वर में अनवरत पुकार रहे थे किन्तु बेटा पातीराम का कहीं पता न था। सहसा सेठ घासीराम ने एक सोट सरकाई कि नीचे से एक धीमी-सी आवाज़ आयी, "सामान धीरे और सावधानी से हटाओ, मुझे चोट कहीं भी नहीं आयी है।"

पातीराम की आवाज़ सुनकर सेठ घासीराम को क्रोध आ गया और उन्होंने सोट वहीं छोड़ दी, "धत्तेरे की, तो वैसे ही मेरा दम निकाल दिया।"

हँसते हुए हम नीचे उतर आये। अगले चौराहे पर और ही दृश्य था। वकील तिलकचन्द की कोठी के सामने बैकुण्ठ-मेल (वह मोटर जो लाश को गंगाजी पहुँचाती है) खड़ा था। भारी भीड़ जमा थी। तिलकचन्द के पिताजी काफी दिनों से बीमार चले आ रहे थे। हम तिलकचन्द के पास पहुँचे। वे किसी पर तबे-से गरम हो रहे थे। हमने इमरती का दोना पीठ पीछे किया और बिना अवसर खोये कह दिया, 'आपके पिताजी किस समय चल दिये? कल तक तो स्वस्थ-से थे। बड़े भले आदमी थे, भारी एडवोकेट होते हुए भी कभी हल्का-सा झूठ नहीं बोला। दुःख है कि…"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बरसात में

"पिताजी मरे होंगे आपके! अपनी ही गाये जा रहे हैं आप।" वकील तिलकचन्द ने हम पर आग बरसाई और बैकुण्ठ-मेल-ड्राइवर के एक चाँटा रसीद कर दिया, "साले से रातभर से चीख रहा हूँ कि गाड़ी को हटा यहाँ से।"

ड्राइवर भी बिगड़ खड़ा हुआ। हम समझ गये कि बरसात में बैकुण्ठ-मेल का इंजिन खराब हो गया था, संयोग था कि वकील साहब की कोठी के ऐन सामने।

जब कभी भयंकर बरसात होती है तो सिनेमा बन्द हो जाते हैं। दूकानों के सामने आये ग्राहक सौदा थामते-थामते रपट पड़ते हैं और तब कोई दिलजला आवाज़ कस ही देता है, "भई, ऐसा भी क्या लपककर चवन्नी उठाना, हम क्या देख थोड़े ही देर रहे थे।" कॉलेज टापू होकर रह जाते हैं और मैदान में टँगे घंटे को बजाने वाला वीर पैदा नहीं होता। साइकिलें तैरने लग जाती हैं। पानी में डूबी ऊँची जगह पर एक पहिया चढ़ा नहीं कि इक्के की सवारी पानी में सैन मारती नज़र आती है। राह में रुकी टैरिलीन या नाइलॉन की साड़ी पहननेवाली देवियों की हालत देखते ही बनती है। कंचुकी और पेटीकोट के अलावा कुछ नज़र ही नहीं आता है और जिस समय सड़कों पर कारें चलती हैं तो दोनों ओर चलनेवालों को बड़े लोगों की गन्दी मनोवृत्ति का परिचय देती चलती हैं। चप्पल पहनने वाले का कोई भी कपड़ा पीठ पर छींट का रूप रख लेता है। असल में बरसात वहीं तक ठीक है कि जहाँ तक ठीक है। यह क्या कि जगत-भर का व्यापार ही बन्द! आफिस जाना भी मुश्किल! हमारे पास तो दो ही जोड़े कपड़े हैं, कैसे गुजर हो भला?

कभी-कभी तो यहाँ तक सुनाई पड़ता है कि घरों में नालियों को जब बच्चे बन्द कर देते हैं तो पानी आँगन को पार कर छतों पर होकर बहने लगता है। गप्प-सी लगती है किन्तु जब ज़रा-सी मूसलाधार बरसात में बड़े-बड़े सरकारी बाँध बह जाते हैं तो सभी कुछ सम्भव जान पड़ता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नी शरणं गच्छामि

जब पुरुष और नारी का निर्माण पूर्ण हो गया और वे धरा-धाम की ओर मुड़े तो पुरुष ने एकाएक पूछा, "मैं सुखी कैसे रहूँगा, देव !"

"विवाह मत करना, वत्स !" ब्रह्मा ने उत्तर दिया।

"और मैं सुखी कैसे रह सकूँगी, देव ?" नारी-कंठ से स्वर फूटा।

"तुम विवाह अवश्य कर लेना।" ब्रह्मा ने शान्त भाव से कहा।

दोनों चल दिये। सहसा ब्रह्मा के उत्तरों का विरोधाभास नारी की समझ में आया और उसने इसी उद्देश्य से ब्रह्मा की ओर पलटकर देखा। ब्रह्मा उसके भाव को ताड़ गये, उन्होंने नारी की ओर आँख का इशारा कर मौन भाषा में समझाया, "पुरुष सब कुछ जानते हुए भी तुमसे विवाह करने की मूर्खता करेगा।"

नारी आश्वस्त हुई और मुसकराती चल दी, चाल में इठलापन उभर आया।

आज आत्महत्या के निराश पथिक पुरुष ही अधिक मिलेंगे। सच तो यह है कि जब भेड़िये की मौत आती है तो वह गाँव की ओर भागता है और जब किसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नी शरणं गच्छामि

पुरुष के सुखों और मौज-तफरी की मौत आती है तो वह शादी की ओर दौड़ता है। बात नमकीन मिठाई की तरह अटपटी लगेगी किन्तु कम्युनिस्टों के विदेशी दिमागों की तरह एकदम सही है। एक कहावत भी तो है कि जब कारे मूड़ की आवेगी तो छटी का दूध याद आ जायेगा। सो यह कहावत कोई नेता-नीति की भाँति अवसर देखकर नहीं निकली है बल्कि हज़ारों वर्ष के अनुभव का मुरब्बा है।

जब कोई कु-मारा दूल्हा बना घोड़े पर तनकर बैठता है तो अपने को राजकुमार से कम नहीं समझता। ससुराल में तो अपने आपको इन्द्र के अखाड़े की परियों के बीच ही पाता है किन्तु जब चौपाया होकर घर लौटता है और साल-छः महीने बीत जाते हैं तो उसका नशा उतरता है, ज़िंदगी चित हो जाती है और मौज उड़ाने की कल्पना धूल में लोट मारती नज़र आती है। सारा दिन क्रीम, लिपस्टिक और शम्पू के भाव जानने में गुजरता है तथा सुबह की चाय-पानी की चिन्ता में रात बीत जाती है। जब वह यह देखता है कि उसके आधे दर्जन पैंटों की कीमत श्रीमतीजी की साड़ी के छोर को छू भी नहीं पाती तो वह केवल आगामी जन्म की कल्पना से ही सुखी होता है। अगर बिना नागा औलाद पैदा होती गई (किसी-किसी का यह खानदानी नियम होता है कि चाहे कैलेंडर न बदले मगर उनके यहाँ प्रति वर्ष एक अदद सन्तान अवश्य उपजेगी) तो रही-सही ज़िंदगी के दिन भी शीघ्र पूरे होते नज़र आते हैं और यदि औलाद के ढेर में लड़कियाँ भी हुईं तो दहेज का प्रश्नवाचक चिह्न सामने आ जाता है और तब तबीयत आत्महत्या में ही निस्तार पाने की सोचती है। शादी आरम्भ से ही किस प्रकार शेष दुनिया से पत्ता कटवा देती है इसका एक उदाहरण सुनिये—

किसी छात्र ने दौड़कर अपने गुरुजी को सूचना दी, "मेरा विवाह-सम्बन्ध तय हो गया है, गुरुदेव !"

"बेटा, पढ़ाई से गये तुम !"

गुरुजी का कथन सच निकला। अब उस छात्र की किताबों के पृष्ठों में, सिनेमा-स्क्रीन पर नायिका की तरह अपनी मंगेतर का ही मुख-कमल दिखाई देता और उसकी आँखें आँखें न रहकर भ्रमरों की एक अदद जोड़ी का रूप ले लेतीं।

एक दिन छात्र ने गुरुजी को पुनः सूचना दी, "मेरा विवाह हो गया है, गुरुदेव !"

"बेटा, गये अपने माँ-बाप से।"

गुरुजी का कथन इस बार भी सच निकला। छात्र अपनी इष्ट देवी की भाँति श्रीमतीजी की सेवा में ही समय गुजारने लगा। माँ-बाप की आवश्यकताओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए उसके पास अवकाश ही न था। प्रति पल पत्नी-पुराण-पारायण ही उसका जीवन-लक्ष्य हो गया।

नियमानुसार गुरुजी के पास छात्र फिर पहुँचा, "पुत्र हुआ है, गुरुदेव !"

"बेटा, अपने आप से भी गये तुम।"

गुरुदेव का कहना झूठ कैसे निकलता ! अब छात्र के दिमाग में नन्हे शिशु की आवश्यकताएँ ही छायी रहतीं। वह सोचता कि टैरिलीन की छोटी-सी बुश्शर्ट ले आऊँ या अपने आप चलनेवाली मोटर ! अरारोट के बिस्कुट लाने ही हैं, छोटा-सा टोप भी जरूरी है।

बात वही जो हमने पहले कही कि जब किसी पुरुष के सुखों और मौज-तफरी की मौत आती है तो वह शादी की ओर दौड़ता है।

एक ज्योतिषी ने किसी युवक से कहा, "तुम्हारे जीवन में मुसीबतें बढ़ने वाली हैं, दिन का चैन और रात की नींद उड़ जायेगी। फिर कुछ दिनों बाद ये कठिनाइयाँ नहीं रहेंगी।"

"अच्छा, कैसे ?"

"क्योंकि फिर तुम इन कठिनाइयों के अभ्यस्त हो जाओगे।" ज्योतिषी ने विश्वासपूर्वक कहा। कहना न होगा कि युवक का विवाह होनेवाला था।

वास्तव में पत्नी तो जनक-कुटीर से विदा होते समय ही रोती है किन्तु जीवन भर तो वर महोदय ही सावन-भादों का भ्रम उत्पन्न करते हैं। कभी-कभी तो शादी से पूर्व ही मिट्टी खराब हो जाती है। एक बाँके नौजवान की उमर अट्ठाईस की खिड़की को पार कर उन्तीस के आँगन में झाँकने लगी तो उसे शादी की सनक सवार हुई। किसी भलेमानस ने सुझाया कि अमुक गाँव में एक लड़की है, वह उस लड़की के परिवारवालों से मिले, ईश्वर ने चाहा तो काम फतह होगा। चुनाँचे वह बाँका चल पड़ा। राह में दोपहरी हो गई तो एक पेड़ की छाँव में कुएँ की जगत पर सो गया। सोते ही आफत के मारे को स्वप्न दिखाई दिया कि उसकी शादी हो गई है और वह अपनी नई नवेली वधू के साथ शानदार पलंग पर लेटा है। सहसा उसकी पत्नी ने शरमाते-मिठियाते निवेदन किया, "जरा परे हटो न, हमें गर्मी लगती है।"

वह बाँका जवान पलंग पर सरका तो कुएँ में गिर पड़ा। इन्सान का वह समझदार बेटा किसी तरह उल्टे पाँव अपने गाँव लौटा। शादी से पहले यह हाल तो शादी के बाद क्या होगा ?

इसमें सन्देह नहीं कि शादी के बाद मर्द को मुसीबतों की संग्रहणी शुरू हो जाती है और अनेक अनजाने तूफानी रोगों का सामना करना पड़ता है। कोढ़ में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खाज यह कि विवाह का दफ्तर या कारखाने से कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ा जाता बल्कि विवाह को बाहरी दुर्घटना माना जाता है। परिणामस्वरूप मर्द-बच्चे का, कमर के साथ, मन भी टूट जाता है। किन्तु हमने इसका एक राम-बाण नुस्खा निकाला है। वह यह कि एक सौ एक पैसे पत्नी के गुलाम हो जाइये। यह गुलाम होनेवाले पर निर्भर है कि वह पेटीकोट का नारा बनता है या जुल्फों की क्लिप। बहरहाल उसे यदि आपदाओं (आटे-दाल के भाव) से छुटकारा पाना है तो पत्नी का गुलाम बनना प्रथम और अन्तिम अचूक है (इस उपाय को प्रयोग करने से पूर्व यह आवश्यक है कि आप बीमा न करायें और बड़ी रकम का तो कभी नहीं। वरना पचास की उमर पार हुई नहीं कि श्रीमतीजी रकम का नाम लेकर होंठों पर जीभ फिराने लगती हैं। बीमार पड़ गये तो बड़े सलीके से पूछेंगी कि बीमे के रुपये कैसे निकाले जाते हैं। इलाज क्या होगा और किस कोटि का होगा, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं। सूचना—श्रीमतीजी का परिचित डॉक्टर कभी नहीं आने देना चाहिए।)।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि पत्नी के गुलाम बनने में सारी कमाई श्रीमती-जी के हाथों में, प्रधानमंत्री को देश की बागडोर के समान, सौंप देनी पड़ेगी। अब हमसे इसकी लाभ-सम्बन्धी संक्षिप्त व्याख्या सुनिये—

• पहली मुसीबत श्रीमतीजी द्वारा फैशन में अपव्यय की आती है। जब सारा रुपया श्रीमतीजी के पास होगा तो जेवरों के समान उससे भी मोह पैदा होगा। उधार भी हुआ तो उन्हीं से तकादा होगा। अतएव रजाई से बाहर पैर कभी नहीं निकाले जायेंगे। महीने में चार की जगह एक बार सिनेमा देखा जायेगा, पिकनिक गायब हो जायेंगी, साड़ी का स्तर छत्तीस से बीस रुपये पर उतर आयेगा, पौंड का स्थान अफगान क्रीम लेगी और सारा बजाजा देख लेने पर केवल एक ब्लाउज का पीस खरीदा जायेगा।

• शादी के बाद साले-सालियों का घर पर एक खास अधिकार हो जाता है। वे अपने जीजा और जीजी की वस्तुओं को लावारसी ढंग से प्रयोग करते और तोड़ते-फोड़ते हैं। (हमने स्वयं देखा है कि विदा के समय दहेज के जिस छोटे-छोटे सामान को साले-सालियाँ कई-कई बार गिनकर रखती हैं उसी सामान को शादी के बाद क्रमशः वापस ले आती हैं।) जीजी इससे प्रसन्न होती हैं और जीजाजी कुढ़ते हैं। किन्तु जब बजट का सारा भार श्रीमतीजी को झोंकना होगा तो अपने भाई-बहनों के प्यार की इस किस्म को कभी बर्दाश्त नहीं कर पायेंगी। इसी प्रकार श्रीमतीजी के अन्य सम्बन्धियों के बारे में समझना चाहिए।

• पड़ोस और सखियों पर रौब गालिब करने के लिए कीमती (अधिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किराये का) मकान और आधुनिकतम ढंग से ड्राइंगरूम को सजाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, साधारण और साफ तरीके से काम चलेगा। श्रीमती को विवश होकर 'सादा जीवन उच्च विचार' का समर्थक होना पड़ेगा, ठीक उस कायर की तरह जो अहिंसा का अनुमोदक होता है।

● अ—श्रीमतीजी यात्राएँ कम करेंगी यहाँ तक कि अपने मायके भी कम ही जाना पसन्द करेंगी। अतिरिक्त लाभ यह होगा कि पति को विरहानल में नहीं झुलसना होगा।

ब—स्वयं पति को भी अधिक यात्राओं के कष्टों से छुटकारा मिलेगा, परिणामस्वरूप जीवन अधिक सुरक्षित रह सकेगा।

● परिवार-नियोजन में श्रीमतीजी शर्म को ताक पर रखकर पति का समर्थन ही नहीं करेंगी अपितु पूर्ण सहयोग कर घर के साथ राष्ट्र का भी भला करेंगी।

● कोई भी अतिथि अधिक दिनों तक नहीं ठहरेगा। रीति-रिवाजों में व्यर्थ की दिखावट नहीं होगी।

● क्योंकि श्रीमतीजी सन्तान के समान अपने इकलौते पति की भी अभिभाविका होंगी अतएव पति के लिए प्रत्येक आवश्यक वस्तु की उन्हें चिन्ता होगी। जाड़े-गर्मी के सुन्दर कपड़ों के अतिरिक्त घड़ी, साइकिल आदि (जो उनके मायके से नहीं मिलीं) वस्तुओं को पति के लिए एकत्र करना उनके कर्तव्य और प्रसन्नता का एक कारण होगा। (पतिदेव को श्रीमतीजी की इस चिन्ता की चर्चा उनकी उपस्थिति में सार्वजनिक स्थानों पर करते रहना चाहिए।)

उत्तरदायित्व में सभी की कमर झुकती है और हिये की खुल जाती हैं। संक्षिप्त में श्रीमतीजी का भी यही हाल होगा। वह स्वयं रूखा-सूखा खाकर गीले में सोयेंगी किन्तु पतिदेव को हर आराम देंगी। सच तो यह है कि श्रीमतीजी को उल्लू बनाने का इससे बढ़िया और मातवर दूसरा तरीका नहीं है। शर्त यही है कि आप 'त्राहिमाम-त्राहिमाम' करते हुए 'पत्नी शरणं गच्छामि' का अनुपम उदाहरण सामने रखें और अपने व्यक्तित्व को श्रीमतीजी पर शत-प्रतिशत निछावर कर दें। तब गृहस्थी की गाड़ी आराम से (बिना झगड़े के, क्योंकि जब आपका अस्तित्व ही नहीं तो झगड़ा किससे ?) चलेगी, आपकी चिन्ताएँ दूर होंगी (फलतः चिता और भी दूर रहेगी) और आपके स्थान पर आपकी श्रीमतीजी आत्महत्या को सोचेंगी (यदि संभव हो तो दण्डवत होने से पूर्व श्रीमतीजी का बीमा करा देना चाहिए)।

अस्तु, जिस प्रकार कभी दीक्षित भिक्षु-भिक्षुणियाँ 'धम्मं शरणं गच्छामि',

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'बुद्धं शरणं गच्छामि' पुकारते थे, उसी प्रकार आजकल के आर्थिक संकट से ग्रस्त, गृहस्थी की भँवर में फँसे, सींकिया नौजवान पतियों का निष्ठापूर्वक नारा 'पत्नी शरणं गच्छामि' होना चाहिए।

एक बात और याद आयी। पत्नी के गुलाम बनने में जोंक के खानदानी दोस्तों से भी मुक्ति मिलेगी। एक आदर्श पत्नी-दास के घर की घटना सुनिये। एक जोंकी मित्र उनके घर पधारे और पुनः-पुनः कथन करने लगे कि आज तुम्हारे गृह भोजन कर तुम्हें कृतार्थ करेंगे। पतिदेव अन्दर गये तो श्रीमतीजी की कड़कती आवाज़ आयी, "मेरी तबीयत ठीक नहीं है, मैं भोजन नहीं बना सकती।"

"कोई बात नहीं, आटा ले आओ। हम स्वयं रोटियाँ बना लेंगे।" मित्र महोदय ने प्रस्ताव रखा।

"चौका अपवित्र होगा।" श्रीमतीजी ने पुनः एक झोंक दी।

"हम ब्राह्मण-कुमार हैं, फिर भी हम ईंटों का चूल्हा बाहर ही बना लेंगे।" मित्र महोदय ने नया झोंक दिया।

विवश हो श्रीमतीजी को आटा देना ही पड़ा। किन्तु तोलकर तीन छटाँक ही दिया। मित्र भी एक ही घाघ थे, आटे में पानी अधिक मिला दिया और चौंकते-से बोले, "यार, पानी अधिक मिल गया, थोड़ा-सा आटा और ले आओ।"

किन्तु आदर्श पत्नी-दास भी श्रीमतीजी की सम्पर्क-कृपा से पर्याप्त 'चतुर' हो चुके थे। अतएव मित्र से सहानुभूति के स्वर में बोले, "यार, रोटियों को मारो गोली, आटा पतला हो गया है तो नमकीन लपसी बना लो, थोड़ी मैं भी खा लूंगा और तुम्हारी भाभी भी पसन्द करेंगी।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ममी ! जरा सँभालना, मेरी जाँ, अपनी निगाहें

सामने से कॉलेज की एक लड़की आती दिखाई दी तो एक किशोर ने दूसरे की ओर आँख मारी और सीटी बजाकर तान ली—

"ऐसी जुल्मी बनाई तैंने नारि कि
मारा गया
हाय रे मारा गया
ब्रह्मचारी ई……ई"

असल में सिनेमा ने आधुनिक समाज को भयंकर रूप से प्रभावित किया है। सिनेमा ऐसा मनोरंजक साधन नहीं है जो केवल देखते समय ही प्रभावित करे वरन् दैनिक जीवन में भी गहरा असर डालता है । युवक और युवतियाँ फैशन और बोलचाल में इस सीमा तक नकल करती हैं कि बेशरमी और अर्द्धनग्नता से आगे बढ़कर प्रैक्टीकल प्रेम करने की ओर कदम उठ जाता है। फिर जो परिणाम होता है उससे समाज के कर्णधार घबराते हैं।

सबसे अधिक प्रभाव छात्रों पर पड़ता है। वे क्लास-रूम की बजाय सिनेमा-हॉल में बैठना पसन्द करते हैं। हीरो की ड्रेस की तलाश में बाज़ार छान मारते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। प्रेम-दृश्यों के रिहर्सल में करने में भी देर नहीं लगती। हाँ, कभी-कभी हीरोइन पहचानने में इन सड़क-छाप सींकिया मजनुओं से भूल हो जाती है। एक बार अपनी राह तेज चलती मजदूरिन को छात्र हीरो ने सलाह दी—

"धीरे रे चलो मेरी बाँकी हिरनियाँ,
कमर न लचके हाय सजनियाँ,
धीरे रे चलो···"

मगर मजदूरिन ने अपना तेज चलना ज़ारी रखा। छात्र हीरो ने तब विवश हो, बिना किसी पूर्व सूचना के सीधा प्रश्न कर दिया—

"मेरे मन की जमुना
और तेरे मन की गंगा का
बोल राधा बोल संगम होगा कि नहीं ?"

सन्देह नहीं कि मजदूरिन का यौवन-कुसुम पूर्ण प्रस्फुटन की ओर था। सुगढ़ देह, उन्नत उरोज और भोरकालीन शबनम से भीगी गुलाब की मिट्टी की गंध, उसके चन्द्रमुखी सौन्दर्य को कई गुना बढ़ा रहे थे। सम्भवतः सड़क वीरान होती तो मजदूरिन तरह दे जाती और कुछ न कहती मगर हीरो के दुबारा और नई तान लेने पर चलते राही हँस दिये तो उस मजदूरिन ने अपनी सखियों को ठहरने को कह, उस कद्दू की औलाद के सामने अपनी गोरी और कोमल बाँह आगे कर सुदृढ़ स्वर में चुनौती दी, "अपनी माँ का दूध पिया हो और असल से पैदा हो तो मेरी बाँह मोड़ दे !"

चलते राही ठहर गये। बाँके हीरो की हालत देखने लायक थी। उसकी आंखें नीची हो गईं तो मजदूरिन ने कहा, "कमर में हाथ मार दूँ तो ककड़ी-सी छः टुकड़े हो जायेगी। शहर की राधा को सुनाइयो जे गाना, गाँव की राधा काऊ दिन हड्डियों की कुटी बनाय देगी।"

नई पीढ़ी पर सिनेमा के गीतों का बहुत बुरा असर पड़ा है। हालत यहाँ तक बिगड़ी है कि कीर्तन भी सिनेमा की नई-नई तर्ज के भजनों द्वारा ही हो सकता है अन्यथा कीर्तन जमेगा ही नहीं और युवकों की जो मण्डली ऐसे भजन तैयार रखती है, वह बड़े-बड़े घर बड़ी खुशामद से जाती है, जैसे कि भगवान भी बिना नई फ़िल्मों का जायका लिये प्रसन्न नहीं हो सकते।

कमाल तो यह है कि सेंसर क्या करता है जो अश्लील दृश्य और गीत पास हो जाते हैं। देखिये, एक फिल्म का नाम है 'जिस देश में गंगा बहती है'। उसके कुछ संवादों पर गौर कीजिये। रातका समय है, भोला-भाला हीरो राजू, हीरोइन कम्मो को खाट पर बिठाकर, किसी एक वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करने को कह,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थोड़ी देर बाद प्रश्न करता है, "वह वस्तु कैसी है ?"

कम्मो—क्या ?

राजू—मेरा मतलब है वह पानी की जाति की है या खुश्की ?

कम्मो—खुश्की ।

राजू—कैसी है—मोटी या पतली ?

कम्मो—(आंखें बन्द किये हुए मुसकराकर) न मोटी, न पतली ।

राजू—लम्बी या चौड़ी ?

कम्मो—न लम्बी, न चौड़ी ।

राजू—किसकी बनी है, मिट्टी की ?

कम्मो—मिट्टी की तो नहीं है मगर मिट्टी से आयी है और मिट्टी में दब जायेगी ।

राजू—समझ गया । अब यह बताइये नर है या मादा ?

कम्मो—अ…

राजू—मेरा मतलब है मरद जात या औरत जात ?

कम्मो—तुम क्या हो ?

राजू—अभी तक तो मरद जात हूं, आगे शिवजी जाने ।

ठीक उसी समय हॉल में आवाज़ें आती हैं—

"हाय-हाय मार डाला !"

"अबे, साफ-साफ कह न !"

"साला अब भी न समझा ।"

"ओह ! डैडी, हाउ ऐल्डर ब्रदर लाइक्ड दी डायलाग्स आफ दिस पिक्चर ! वैरी बैड इनडीड !"

आगे चलकर यही राजू कम्मो से कहता है, "मेरे मन में एक बात आयी है कम्मोजी, शिवजी अगर चाहेंगे तो मेरा एक लल्ला होगा । मैं उसका नाम रखूंगा श्री गंगाप्रसाद । आप उसकी माँ बनोगी ?"

कम्मो लजाती है तो राजू फिर कहता है, "चिन्ता में मत पड़िये कम्मो जी, शिवजी अगर चाहेंगे तो एक क्या अपने यहाँ लल्लाओं की लाइन लग जायेगी ।"

यह दशा तो उस चित्र की है जिसका नाम है 'जिस देश में गंगा बहती है' । उन चित्रों का क्या हाल होगा जिनके नाम हैं 'आओ प्यार करें', 'दिल ही तो है', 'तुम-सा नहीं देखा', 'फिर वही दिल लाया हूँ', 'लव इन शिमला' या 'मुहब्बत इसको कहते हैं' आदि । यह ध्यान रखना है कि फिल्में क्योंकि दो-ढाई घंटों की होती हैं और इसी अवधि में सभी कुछ दिखाना पड़ता है, अतः शकल कैसी भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो, समयाभाव में हीरो-हीरोइन के बीच 'लव एट फर्स्ट साइट' ही हुआ करता है।

कमाल तो यह भी है कि कभी-कभी माँ-बाप ही इस अश्लील गाने की प्रवृत्ति को जाने-अनजाने बढ़ावा देते हैं। हमारे ही सामने की बात है, एक मेहमान के सामने एक अप-टू-डेट देवीजी ने अपने बच्चे की बड़ी तारीफ की और कहा, "बेबी, जरा वह सुनाना कल वाला गाना, एक्शन के साथ।"

और अब आज्ञाकारी बेबी ने कोहनी और कमर में झटका मार-मारकर गाना आरम्भ किया—

"ममी ! जरा सँभालना, मेरी जाँ, अपनी निगाहें,
कि तेरा-मेरा नया-नया प्यार हुआ है, कि तेरा-मेरा..."

मेहमान है कि प्रशंसा के पुल बाँध रहा है और ममी हैं कि फूली नहीं समा रहीं।

मजा तो यह है कि हर सड़क, गली, मोड़, बाज़ार या एकान्त दूकान पर रेडियो लगे हुए हैं जो फुल स्पीड पर चल रहे हैं। आप कहीं भी जाइये, एक विचित्र वातावरण दिखाई देगा। देखिये, उधर से आवाज़ आ रही है—

"कितनी जवाँ है ज़िन्दगी,
कितनी जवाँ बहार
ऐसे में कोई आये कहीं से,
कर ले हमसे प्यार !"

शाबाश लड़की, तुझे न घर की चिंता, न अपनी पढ़ाई की। तू जवान है तो चारों ओर बहार दिखाई दे रही है। मगर ऐसा भी क्या वेश्यापन कि कोई भी आये और कहीं से भी आये, तुझे बस प्यार से मतलब है। शाबाश री, इतनी छूट भला कौन देगा ?

उस गली से कोई कह रहा है—

"मेरी जाँ न सता तू
मेरी जाँ न जला तू
करना क्या कुछ बता दे, दिल पे नहीं है काबू !"

शाबाश बरखुरदार ! ऐसा करो कि इस कमबख्त दिल पर मिट्टी का तेल छिड़ककर दियासलाई दिखा दो। फिर तुम्हें तुम्हारी जाँ इस बुरी तरह से न सता सकेगी और न जला ही सकेगी।

मगर गाने वाला पूरा बेशरम है। उसने पुनः अपना दावा पेश किया—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नी शरणं गच्छामि

"तुमने पुकारा और हम चले आये
दिल हथेली पै ले आये रे ..."

क्यों नहीं, अलादीन के चिराग रगड़ने पर जिन्न क्या इस तरह बटन दबाते ही प्रकट हुआ होगा ? आपने तो पंक्चुएलिटी का रिकार्ड स्थापित कर दिया और क्या खूब कि दिल हथेली पर है ! आज तक हमने सिर हथेली पर देखा था, तुमने तो परम्परा को भी तोड़ डाला मेरे प्रयोगवादी मजनूं !

देखो उधर नदी के किनारे पर कोई किसी को छेड़ रहा है—

"न झटको जुल्फ से पानी ये मोती फूट जायेंगे,
तुम्हारा कुछ न बिगड़ेगा मगर दिल टूट जायेंगे।"

क्यों नहीं बेटा, यहाँ नदी किनारे क्या कमाई कर रहे हो ? कितने दिल टूट जायेंगे ? क्या कोआपरेटिव सोसाइटी बना रखी है ? और फिर उसका न बिगड़ेगा तो किसका बिगड़ेगा ? ये मोती क्या तुम्हारे बाप के बहीखाते से निकले हैं ?

उस बैठक की ओर देखिये। सारा घर सो रहा है और बेचारा छात्र नीली रोशनी में कोर्स की किताब खोले किस परेशानी में है, आओ सुनें—

"मेहरबाँ लिखूँ, हसीना लिखूँ, या दिलरुबा लिखूँ
हैरान हूँ कि तुमको इस खत में क्या लिखूँ ?"

भई, वाकई हैरानी का मामला है। हमारी राय में इम्तहान नज़दीक है इसलिए सोच-विचार में वक्त क्यों खराब करते हो। हमारी मानो तो अल्लाह का नाम लेकर 'अम्मीजान' लिख दो। परेशानी तो खत्म होगी ही, साथ में हम यह भी यकीन दिलाते हैं कि न इम्तहान में आपको नकल करने की जरूरत पड़ेगी और न इम्तहान के बाद सिफारिश की। पढ़ने में मन लगेगा और क्लीअर पास हो जाओगे।

आप टहलने निकले तो फुटपाथ पर सोये मजदूर ने अचानक मैली और फटी रजाई फेंकी और अंगड़ाई के साथ आँखों की कीचड़ साफ करते हुए किसी को स्मरण-पत्र भेजा—

"जो वादा किया वह निभाना पड़ेगा
रोके जमाना चाहे,
रोके खुदाई, तुमको आना पड़ेगा।"

क्यों नहीं खचेरमलजी, जरूर! मगर भैया तुम बीड़ी में दम लगाकर, लोटा सँभाल खेतों की ओर पैर तो बढ़ाओ, खुदा कसम, ज़माने को गोली मारो, खुदा में भी क्या ताकत कि उसे रोक ले और वायदे के मुताबिक वह न आये !

उफ, जरा उस नुक्कड़ के मकान से आ रही करुण आवाज़ को सुनो—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ममी ! ज़रा सँभालना, मेरी जाँ, अपनी निगाहें

"मैं क्या करूँ राम, मुझे बुड्ढा मिल गया।"

हम इस अभागी युवती की ओर गौर करें कि सामने से एक परेशान आवाज़ और आयी—

"अल्लाह बचाये नौजवानों से"

भाई, हमारा तो दिमाग खराब हो गया, इस औरत नाम की चीज़ का समझना बड़ा मुश्किल है। देखो न, एक नारी-कण्ठ और सुनाई दिया—

"तेरी महफिल में किस्मत आजमाकर हम भी देखेंगे
घड़ी भर को तेरे नज़दीक आकर हम भी देखेंगे
तेरे कदमों पे सर अपना झुकाकर हम भी देखेंगे।"

हमारा कहना मानो बिटियारानी, किसी भी महफिल में शरीफ घर की लड़की यूँ ही नहीं चली जाती। किसी के पास घड़ी भर को जाने की क्या जरूरत है, इसके नतीजे कभी-कभी बड़े खराब निकलते हैं और जान पर ही बन आती है। खुदा ने चाहा तो पढ़ाई पूरी करने के बाद तुम्हारे वालिद तुम्हारी शादी कर देंगे और तुम किसी के कदमों पर क्यों सिर रखोगी, किसी के दिल में राज करना। जाओ बेटी, पढ़ो और घर के काम देखो। किस्मत आज़माने की बिलकुल जरूरत नहीं है।

मगर यह दूसरी आवाज़ हमारे काबू से बाहर है। देखो, कितनी साफ़ और जोशीली है—

"जब प्यार किया तो डरना क्या
प्यार किया कोई चोरी नहीं की
छुप-छुप आहें भरना क्या ?"

आप बड़े घर की रईसज़ादी हैं, इसलिए हमें कुछ नहीं कहना। भला डरने की इसमें क्या बात है, आपका ऐलान बिलकुल सही है, प्यार करना कानून की किसी भी रू में चोरी नहीं है इसलिए आ छिप-छिपकर आहें क्यों भरें, बड़े-बड़े चौराहों पर सिर फोड़कर और माइक पर धाड़ मारकर रोइये। देखिये, आपसे कोई कुछ कह रहा है—

'ऐ दिलरूबा, जाने वफा, तेरे सिवा,
कौन है मेरा"

ऐ रईसज़ादी, हमें तो लगता है कि इस सईसज़ादे के सभी घर वाले किसी भूकम्प में मर गए हैं और अब आपके सिवा इसका दुनिया में कोई नहीं रह गया है। सम्हालिये, और अगर आपके पास काफी पैसा होगा तो सारी समस्याएँ पूरी कर देगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खैर, इन बातों को छोड़िये, देखिये वह जा रहा है एक हाथ में सिगरेट, शॉर्ट नोट्स और बगल में अभिनेत्री का कैलेण्डर दबाये भारत का उठता तरुण, देश का भावी कर्णधार, भ्रष्टाचार का दुश्मन, वैदिक संस्कृति का गायक, स्वतन्त्रता का प्रहरी और नित नये ज्ञान-विज्ञान का पथिक ! जरा सुनें कि वह क्या संदेशा ला रहा है—

"मैं हूँ अल्लादीन, मैं हूँ अल्लादीन
दिल है सादा, तबीयत है रंगीन
ज़िदगी है हसीनों पै मरना
इश्क़ में जो भी हो कर गुजरना
अपने उस्ताद फरमा गए हैं
खाना-पीना और बस प्यार करना
काम सीखे हैं हमने यही तीन"

लीजिये, उसने तो अपने साथ उस्तादों को भी लपेटा। अब तो आपको विश्वास हो गया होगा कि हिन्दुस्तान का बेड़ा पार होने ही वाला है। जोर लगाकर बोलो तो—जयहिन्द !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम भी जुआ खेले

दीपावली जहां स्वच्छता तथा सांस्कृतिक एवं गौरवमय ऐतिहासिक स्मरण के गुण अपने साथ लाती है वहाँ जुआ खेलने का महादुर्गुण भी । लगता है कि विशुद्ध घी की ताजी जलेबियों के थाल में एक ओर आदमी की बीट लगी हुई है या वर महोदय स्वस्थ, गौरवर्ण, सुशील, शिक्षित और धनार्जन करने वाले होने पर भी काने हैं। इस जुए से दीपावली के दिनों में किसी-किसी का धन-जेवर ऐसा सपाट हो जाता है जैसे भूदान में मिली बंजर ज़मीन।

अस्तु, दीपावली आ रही थी और जुए का नशा उसी प्रकार चढ़ रहा था जिस प्रकार बारात जाने से पूर्व दूल्हे को सुहाग-रात का। अधिकतर लोगों की भाँति हम भी कम ही जानते हैं कि दीपावली का वास्तविक महत्व क्या है और उसे क्यों मनाया जाता है। केवल इतना याद रहता है कि इन दिनों धर्म-कार्य की तरह डटकर जुआ खेला जाता है और घर-घर में जुआ खेलनार्थ पैसा बाँटने में बुजुर्ग लोगों को अपने कर्तव्य-पालन का दुर्लभ सुख उपलब्ध होता है।

जब श्रीमतीजी श्री (लक्ष्मी) की आरती उतार रही थीं तो हम श्रीमतीजी की आरती उतारने लगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नी शरणं गच्छामि

"यह क्या करते हो, जी ?"

"तुम आधुनिक लक्ष्मी हो। उल्लू की सवारी न कर बसों, ट्रामों, जनसेवकों और हमारे सिर पर सवार रहती हो अतएव आधुनिक नीरांजन-प्रसाधन टेबुल-लैम्प से आपकी पूजा कर रहा हूँ।"

"हटिये भी, आप तो मजाक करते हैं।"

"लेकिन मेरी मॉडर्न लक्ष्मी, वरदान-स्वरूप दस रुपये तो दो।"

श्रीमतीजी के तेवर बदल गये। फसल से फैले होंठ अनाज-क्षेत्र से सिकुड़ गये। रुपयों का बनावटी अकाल पड़ गया। सहसा याद आया कि मुन्ने को बहलाने के लिए दस का नोट दिया था। उसकी जेब से नोट निकाला और हम पड़ोस में जुआ खेलने चल दिए।

तीन फड़ जम रहे थे। लक्ष्मी को अपनी ओर खींचने के नाम पर एकाग्रचित्त से द्यूताराधन हो रहा था, जैसे प्राचीन काल में ऋषि-वृन्द वेद-चर्चा में तल्लीन हों या आज के छात्र परीक्षा से पूर्व नकल करने के कागज़ तैयार करने में डूबे हों। 'कोई हटे तो हम जमें' जब यह विचार एक साहब के सामने रखा तो उसने उत्तर दिया, "भाई, दीवार पर छिपकली की तरह लोग जुए से चिपटे हुए हैं, तीन दिन हो गये। खाना बाज़ार से आ जाता है। विवश होकर ही शौचादि को उठना पड़ता है।"

"क्या इनके घर नहीं हैं ? बाल-बच्चे सभी मर गये ? खाना देने वाला भी नहीं बचा ?" हमने आश्चर्य प्रकट किया।

"जुआ ऐसा ही शौक है। यह खाना-पीना, घर, स्त्री, बच्चे—सभी को छुड़ा देता है।"

"मगर इतने समय तक हम कैसे डटे रह सकते हैं ! कौन जीत रहा है ?"

"कोई भी नहीं। कुछ नाल में चला जाता है, कुछ बाजार में। बैठे-बैठे जो गिरवी का काम कर रहे हैं, बाकी उन लोगों को।"

"गिरवी का काम ?"

"हाँ-हाँ, गिरवी का। रामधुन बहू की हँसुलिया हार चुका है और दिलावर आठ तोले का हार। अंगूठियाँ तो कितनी ही बिक गयीं। दो-दो सौ की घड़ी पचास-पचास में लुट गयी।"

इसी समय एक व्यक्ति पल्ला झाड़कर उठा और हम कोर्स में रद्दी किताब की भाँति धँस गये। उस फड़ में फ्लैश हो रही थी। काफी देर तक तो वोट ही डालते रहे। ब्लाइण्ड भी करते तो दूसरे हाथ मार जाते। एक बार दो इक्के आए तो कलर से कट गये, कलर भी आया तो सीढ़ी से पिट गया। एक बार सीढ़ी भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नसीब हुई तो दूसरे पर कमबख्त ट्रेल जा फँसी और हम खुला भी न सके। दस बराबर हो गए और हम अप्रैल में टैम्परेरी टीचर की भाँति खेल से अलग कर दिये गये।

हम मन-ही-मन हिसाब लगाने लगे कि दस रुपये में क्या-क्या कर सकते थे। हमारे लिए नई चप्पलें आ सकती थीं और कुछ नहीं तो चाय-टोस्ट के साथ श्रीमती जी को आदर्श भारतीय नारी का एक चित्र ही दिखा देते तो कम से कम दो दिन ना करने पर भी कोमल-कोमल कर-कमलों से खुरदरे खुर ही दब जाते, मगर अब क्या हो सकता था जब जुआरी चुग गये नोट।

सहसा गड़बड़ी मची। जाँच करने पर जैसे सरकारी आँकड़े गायब हो जाते हैं, वैसे ही पुलिस के आने पर जिस खिलाड़ी के जहाँ सींग समाये, वहीं छिप गया। जिनको एक दिन की दाढ़ी से बू आती थी वे चौथाई दर्जन तो पाखाने में जा छिपे, कुछ इधर-उधर के मकानों की छतों पर कूद गये, जो महिलाओं से परिचित थे उन अर्जुनों ने हाथ-पैर जोड़ वृहन्नला-वेश धारण कर लिया। बेचारे ताश, प्रतिष्ठित व्यक्तियों से उत्पन्न वेश्या-पुत्रों-से अनाथ पड़े थे और उनकी दर्द-भरी कहानी इधर-उधर पड़े नोट और जूते पेशेवर समाज-सुधारकों के समान सुन रहे थे। हमने एक दस का नोट उठा लिया और खुर-कवच (जूते) धारण कर भागने के उपक्रम में थे कि अचानक सिपाहियों ने मुझ 'नई चिड़िया' को धर दबाया।

"भई, कसम ले लो, हम तो खेलना ही नहीं जानते।" हमने सफाई दी, "अगर भागना ही होता तो हम भी लँगड़े नहीं हैं।"

"तो फिर क्या कर रहे थे यहाँ ?" एक ने रौब डाला।

"इन कमबख्तों को शास्त्रों से उदाहरण दे-देकर जुआ न खेलने के लिए समझा रहा था।"

भाग्य से एक सिपाही जानकार निकल आया जिसे कभी हमने सिनेमा में चाय पिला दी थी। उसने हमें धक्का देकर बाहर कर दिया। हम गरीबी से सम्मान की तरह दुम दबाकर भाग निकले।

घर आकर दम लिया तो श्रीमतीजी ने दरयाफ्त किया, "क्या हुआ, हाँफ क्यों रहे हो ? क्या पतंग लूटने भागे थे ?"

"तुम्हें तो हर वक्त मजाक ही सूझता है। यह वक्त और पतंग ? सब पकड़े गये।"

"कहाँ, कब, कौन, कैसे पकड़े गए ?"

"पहले पानी तो पिलाओ कि प्रश्नों की झाड़ू उठा ली। जुआ में पकड़े गए, पड़ोसी के घर।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"तुम क्या कर रहे थे वहाँ ?"

"झक मार रहा था। पानी पिलाओ पहले। पसीने के रास्ते काफी पानी निकल गया है।" हमने श्रीमतीजी को रोका और दरवाजे पर जर्मनी ताला लगा दिया (अलीगढ़ के तालों पर विश्वास नहीं रहा क्योंकि ताले टूटने और चोरियाँ होने के साथ ही ताले बेचने वालों को भी मालदार होते देखा गया है)।

"अरे, तभी कुछ आदमी हमारी छत पर कूदे थे। पर जैसे ही अगली छत पर कूदे, 'चोर-चोर' की आवाज़ लगी और वे पकड़े गए। मरम्मत भी कर डाली गई। ननुआ में तो उसकी बहादुर घरवाली ने ही दो बाँस जमा दिये।"

तीन गिलास पानी चढ़ाने के बाद हम हनुमान चालीसा जपते रहे। फिर स्वयं को समूचा साबुत पा, कपड़े बदल 'कौन-कौन पकड़े गए' यह देखने चले।

"कहाँ चले, क्या खेलने ? आओ, हमारे साथ खेलो।"

सिनेमा के पर्दे पर जैसे रेगिस्तान में भटके नायक को सहसा सरोवर में नहाती नायिका और लोक-नृत्य करतीं वन्य कुमारियाँ मिल जाती हैं वैसे ही श्रीमतीजी का जुआ खेलने का ज्ञान देख हमें आनन्द-मिश्रित आश्चर्य हुआ। हम बोले, "क्या खेलोगी ?"

"बंक-बंक।" शरमाते-शरमाते श्रीमतीजी ने कहा।

अब मजा यह कि हमारे दाव का पत्ता हमेशा हल्का निकले। यहाँ तक कि उनकी तिक्की निकली तो हमारी दुक्की। एक बार श्रीमतीजी की दुक्की निकली तो हम मारे खुशी के चीख पड़े। दाव पर हमारे दो रुपये लगे थे। किन्तु हाय री तकदीर ! हमारी गड्डी का पत्ता भी दुक्की निकली। तब श्रीमतीजी हमारी ओर ताककर हँसीं जैसे हमें बच्चा ही समझती हों। खेद यह रहा कि श्रीमतीजी की गाँठ से हम एक पैसा भी न निकलवा सके, हमारा पत्ता रखने का तो नम्बर ही नहीं आया। हम पाँच रुपये हार चुके थे। झुंझलाकर हमने कहा कि हम तो माँग-पत्ता खेलेंगे। श्रीमतीजी का भाग्य चक्र-विधि ब्याज की तरह तेजी पर था। हमने जो भी पत्ता माँगा 'नॉन टीचिंग-स्टाफ' के नसीब-सा पिटा। तीन रुपये और निकल गए। खिसियाकर हम उठे तो श्रीमतीजी ने दामन थाम लिया, "ये दस रुपये कहाँ से लाए ?"

"कहीं से भी लाए, तुमने आठ तो बहलाकर छीन ही लिये।"

"कहीं मुन्ने की जेब के तो नहीं हैं, एक दस का नोट नहीं मिल रहा। अगर कहीं जुआ खेलने गए तो मुझसे बुरा कोई न होगा। इन दो रुपयों का एक-एक पैसे का हिसाब ले लूंगी।"

"हम तो जरूर खेलने जायेंगे। राजा युधिष्ठिर तो अपनी पत्नी द्रोपदी तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को हार गए थे, तुम हमसे दो रुपल्ली का हिसाब लोगी ?"

"तो तुम भी क्यों पीछे रहो, हार जाओ न मुझे भी जुए में !"

"लेकिन इन ग्राधे दर्जन बच्चों का क्या होगा ? पाँच पति होते हुए भी द्रोपदी के उस वक्त तक कोई बच्चा न था वरना बड़ा झगड़ा पड़ता ।"

श्रीमतीजी को हँसी आ गई। हमने फिर ऐतिहासिक ज्ञान बघारा, "हमारे पूर्वज कोई मूर्ख थोड़े ही थे। वे हमेशा जुग्रा खेलते थे। पतिव्रता दमयन्ती ने भी अपने पति राजा नल को जुग्रा खेलने से नहीं रोका था।"

"इस दृष्टि से तुम्हारे पूर्वज अवश्य मूर्ख थे ग्रौर दमयन्ती तथा द्रोपदी भी इस दृष्टि से असफल पत्नी रहीं जो अपने पतियों को जुआ खेलने से न रोक सकीं। परिणाम जो हुग्रा वह भी तुम्हें मालूम है।"

ग्रब हमें क्रोध आये बिना नहीं रहा। हम भारतीय ग्रपने पूर्वजों को किसी भी दृष्टिकोण से मूर्ख नहीं कह सकते, अतएव गरजकर बोले, 'हमारे पूर्वज थे तो क्या तुम्हारे पूर्वज नहीं थे ?"

"कभी नहीं। अगर तुम्हारे पूर्वज ही मेरे पूर्वज होते तो हम-तुम भाई-बहन न होते ?"

श्रीमतीजी के इस मज़ाक को हम सहन नहीं कर सके और उनके एक ढाई किलो का झापड़ रसीद कर दिया। क्षण-भर में धरती हिलने लगी और आकाश घूमने लगा। आँख खुली तो देखा श्रीमतीजी हमारे ऊपर झुकी हुई अपना कपोल सहला रही हैं, "सुबह-सुबह इतनी ज़ोर का चाँटा ! अच्छा त्योहार बीतेगा आज !"

हम झेंप में कुछ कहना चाहते थे कि श्रीमतीजी बोलीं, "शम्भू के घर रात जुआ पकड़ा गया। कई आदमी गिरफ्तार हो गए, बड़ी बेइज्जती हुई।"

हमने अपनी अण्टी संभाली, "हमारा दस का नोट ?"

"यह लो, मुझे दे तो दिया था। जल्दी से शौचादि से निवृत्त हो जाग्रो, बाज़ार से सामान लाना है, काफी दिन चढ़ आया है।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जब लोग आपको टालते हैं

जब भी और जिधर भी आप निगाह डालेंगे तो देखेंगे कि कोई-न-कोई किसी न किसी को टाल रहा है। क्लर्क चपरासी को टाल रहा है तो हैडक्लर्क क्लर्क को; प्रिंसिपल हैडक्लर्क को टाल रहा है तो मैनेजर प्रिंसिपल को; अध्यापक छात्र को टाल रहा है तो छात्र अभिभावक को; कर्जदार साहूकार को टाल रहा है तो साहूकार इन्कमटैक्स अधिकारी को और सरकार जनता को टाल रही है। पति पत्नी को टाल रहा है और पत्नी सास-ससुर को टाल रही है। प्रकाशक लेखक को टाल रहा है तो लेखक मकान-मालिक को टाल रहा है। भगवान किसी को संतान के लिए टाल रहा है तो किसी को मात्र लड़कियाँ देकर लड़के के लिए टाल रहा है। नास्तिक भगवान के अस्तित्व को भी टाल देता है। टालने पर ही राजनीति और सामाजिक व्यवहार-कुशलता निर्भर करती है। आशय यह कि पेट को छोड़-कर प्रत्येक वस्तु को टाला जा सकता है। यहाँ तक कि कभी-कभी विज्ञान मौत को भी टालू-मिक्श्चर पिला देता है। 'काल करे सो आज कर' का अर्थ ही यह है कि जिसे कल टालना चाहो उसे आज ही टालो।

किन्तु हमारा प्रयोजन इन 'टालनों' से नहीं है। हमारा तो इतना ही तात्पर्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि ऐसे कितने ही क्षण आते हैं जब आपको यह समझते देर नहीं लगती कि जिससे आप मिलने आये हैं वह निकट का होते हुए भी आपको टालने की कोशिश कर रहा है। आप ऐसी दशा में उसे अव्यावहारिक, असभ्य, अरसिक आदि की उपाधि दे बैठते हैं। सच बात तो यह है कि ऐसे काण्डों का अधिकतर उत्तरदायित्व आपके ही कन्धों पर होता है। आपके पास तो समय है लेकिन क्या आपने यह भी सोचा है कि जिसे आप लूटे हुए माँझे की तरह उलझाए बैठे हैं, उसके पास भी फालतू समय है या नहीं ? दो-एक उदाहरणों से बात समझ में आ जायेगी।

एक मिस्टर 'क' हैं। पहली बार मिस्टर 'ख' से मिले। खूब बातें कीं, आवभगत हुई। मिस्टर 'क' रोज़ ही मिस्टर 'ख' के घर जाने लगे; क्योंकि वहां पंखा है, रेडियो है, आरामकुर्सी है। मिस्टर 'क' सारंग पलटते और रेडियो खोलकर आरामकुर्सी पर पड़े रहते। अब मिस्टर 'ख' हैं कि अजीब चक्कर में गिरफ्त हैं। नित्य ही डार्लिंग जान खाती हैं, "यह क्या मुसीबत मोल ले ली, रेडियो जैसे इन्हीं को खरीदा गया है। हम कुछ भी नहीं सुन पाते, सखियाँ आती हैं और लौट जाती हैं, ज़िन्दगी डल हो गयी है।" मिस्टर 'ख' ने अवहेलना आरम्भ की। पंखा भीतर रख दिया और बिजली फ्यूज़ कर दी। मिस्टर 'क' ताड़ गये। मित्रता की गवाही देकर चीख उठे, "पहले दिन तो मेहमानवाजी की दुम बन गये थे और अब हमारी यह अवहेलना ?"

मिस्टर 'ख' चुप तो रहते मगर सुनकर चुप कैसे रहते, उबल ही तो पड़े, "जनाब रोज़ निकलने के कारण ही तो कोई सूरज की ओर आँख नहीं उठाता जो इतना महत्त्वपूर्ण है कि न निकले तो पृथ्वी का दिवाला निकल जाए। फिर आप किस खेत के बैंगन हैं ?"

मिस्टर 'क' बड़बड़ाते चले गये। तुरन्त श्रीमती 'ख' ने मुसकराकर पंखा बाहर निकाला और बिजली वाले को बुलवाया।

एक मिस्टर 'ग' हैं। मिस्टर 'घ' के घर जब भी जाते हैं, मिस्टर 'घ' कुछ खाने को कहते हैं। उत्तर में मिस्टर 'ग' अपनी मुख-गुहा का अधिकतम व्यास फैला देते हैं। अब मिस्टर 'ग' उसी समय पहुँचते जब कि मिस्टर 'घ' के घर भोजन का समय होता। एक बार ठीक समय पर ही पहुँचे परन्तु दरवाज़े पर ताला पड़ा था। माजरे पर गौर ही कर रहे थे कि अन्दर से मिस्टर 'घ' की भद्दी आवाज़ सुनाई दी, "कमबख्त अब नहीं आ पायेगा। क्या बहतरीन तरकीब निकाली है मैंने ! साले ने अपनी बहन का ही घर समझ लिया था।"

बड़े आदमी सदैव व्यस्त रहा करते है (किस काम में यह स्पष्ट नहीं होता है किन्तु दावत, अभिनन्दन, उद्घाटन आदि में शामिल होने के लिए समय की कभी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कमी नहीं पड़ती) अतः मिलने वाले को समय दिया करते हैं। छोटा आदमी किसी के यहाँ जायेगा तो निवेदन करने के बाद तुरन्त लौट आयेगा। बड़े आदमी छोटे आदमी के यहाँ केवल वोट माँगने का अवसर प्रदान करने ही जाया करते हैं। इसलिए गप्प लड़ाने की फालतूबाजी प्रायः बराबर वालों में ही हुआ करती है। यदि आप भी उन महानुभावों में से हैं जिन्हें बात करने का नासूर है तो जिसके पास भी जाएँ, कई बातों का ध्यान रखें—

(१) यदि मेजबान के यहाँ नये व्यक्ति नजर आएँ तो तुरन्त बहाना बनाकर, चाहे वे रोकें ही, लौट आइये। अपरिचय की रतौंध में यह भी सम्भव है कि आप किसी के गाँव के नाई को चाचाजी कह 'चरण छू नमस्ते' कर लें या किसी के साले को भाई साहब कहते भी देर न लगाएँ।

(२) किसी के दफ्तर जाने का समय हो तो हरगिज न जाइये। न चाहने पर भी आपको टालना ही पड़ेगा। किसी के दफ्तर में जाकर भी जम न जाइये।

(३) कोई खाने को कहे तो निश्चित रूप से मत खाइये। कम से कम पहली बार मत खाइये और हमेशा मत खाते रहिये।

(४) किसी के घर आपस में कहा-सुनी या झगड़ा हो रहा हो तो बिना इन्क्वायरी किए उलटे पाँव लौट आइये। ऐसे समय में मान-हानि की बड़ी सम्भावना रहती है। एक पंडितजी अपने खानदानी जिजमान श्रीमान् रामस्वरूप के घर पहुँचे तो वहाँ विचित्र गोरखधंधा चल रहा था। वर्तन बिखरे हुए थे, टूटी अजवाइनों वाली खाटें आँगन में उल्टी लेटी थीं, कपड़े धराशायी थे और बक्स मुँह बाये निःसहाय पड़े थे। रामस्वरूप क्रोध के साक्षात् अवतार दिखाई दे रहे थे। सहसा आगन्तुक पंडित गंगाप्रसादजी ने ज्ञान बघारा, "अरे रामस्वरूप, तुम इतने क्रोधी ! पत्नी जो जीवन-संगिनी, जीवन-सहचरी, किंबहुना अर्द्धांगिनी है, उसे क्रोध का लक्ष्य बना रहे हो। अरे, तुम तो साक्षात् राम के स्वरूप हो, शील के अवतार। अरे, रामस्वरूप होकर देवी पर हाथ उठाते हो, रामस्वरूप !"

कोई और समय होता तो पंडित गंगाप्रसादजी को सादर बिठाया जाता, सत्यनारायण की कथा का मुहूर्त पूछा जाता या किसी बच्चे की जन्म-कुण्डली (जिसे कई बार देखा जा चुका है) सामने रख दी जाती किन्तु इस समय रामस्वरूप पंडितजी पर बरस पड़ा, "रामस्वरूप के भैया निकलो यहाँ से ! राम ने सीता को घर से नहीं निकाला था क्या ? सीता क्या राम की पत्नी न थी ? निकलो यहाँ से, रामस्वरूप का बच्चा !"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(५) कोई सो रहा हो तो उसके सिरहाने बैठकर या कोई कहीं जा रहा हो तो उसके साथ चलकर उसका मन खराब न करो। कोई कुछ सामान लेकर आ रहा या जा रहा है (सवारी पर या पैदल) तो रास्ते में उससे बात मत कीजिए। यदि आपको पता है कि 'नमस्ते' से ही गाड़ी में ब्रेक लग जायेंगे तो 'नमस्ते' को भी गोली मारिये। सच मानिये वह बुरा न मानेगा। प्रायः लोग इसलिए भी आपसे कतराकर निकल सकते हैं।

एक महाशय एक हाथ में दही, दूसरे में पेड़ा लिये आ रहे थे। किसी प्रिय-दर्शना ने उन्हें कमल-करों को एक कर नमस्ते की। उन महाशय ने भी जो मुसकरा-कर हाथ जोड़ने चाहे तो दही-पेड़ा ज़मीन पर। कहते हैं कि खाने वाले का नाम तो दाने-दाने पर लिखा है, फिर यह तो दही-पेड़ा था। लुटे-से महाशय कूकर महोदय के भाग्य पर ईर्ष्या अनुभव करने लगे। प्रियदर्शना आगे निकल चुकी थी श्रौर उसकी चाल में और भी मदिरता आ गई थी।

नमस्ते को इतना महत्त्व न दो कि कोई आपसे काफी दूर एक्सप्रेस गति से जा रहा है, आपने आवाज़ दी, वह रुका और आपके पास आने की प्रतीक्षा की। आप पास आये और नमस्ते कर आगे बढ़ गये। वह बेचारा जवाब न देकर आप-को देखता ही रह गया।

(६) जब कोई लेखक कुछ लिख रहा हो तो उसके पास कभी मत बैठिये। एक महोदय एक लेखक के घर पहुँचे। लेखक अपने कार्य में निमग्न था। आगंतुक बैठे ही थे कि लेखक चीख उठा, "उठो, दरवाज़ा खुला है, निकल जाओ। क्या अपने बाप का घर समझ रखा है कि जब चाहा तब आ धमके।"

गर्म तबे पर बूंद की तरह जल-भुनकर आगन्तुक उठ दिए। अगले दिन टहलते समय भारी शिकायत की तो लेखक ने सफाई दी, "मुझे आपके आने और जाने का कोई भान नहीं। मैं भला आपसे ऐसी गुस्ताखी कर सकता हूँ? मेरे नाटक का कोई पात्र अपने सम्वाद बोल रहा होगा।"

सारांश यह कि आप देख लीजिए कि जिससे आप उलझे हैं उसका समय तो नष्ट नहीं कर रहे। यह जानना मुश्किल भी नहीं है। कम जाइये और काम से ही जाइये। उचित समझें तो पहले से समय ले लीजिए। काम होते ही वापस आइये, यह नहीं कि वहाँ आकर्षक पत्रिकाएँ पड़ी हैं तो उन्हीं में उलझ गए। या वे तो लगातार जम्हाइयां ले रहे हैं श्रौर आप कह रहे हैं, "अब कहाँ जाऊँ, नकद एक घंटा आपके यहाँ काटना पड़ेगा, जरा चाय के लिए एक बार और कष्ट दूंगा बस।"

ध्यान रखिये, आप जैसे लोगों के लिए ही, जो टाले से नहीं टलते, 'बेवक्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की शहनाई', 'दाल-भात में मूसलचन्द' और 'तू कौन मैं खामखाँ' का प्रयोग होता है।

और हाँ, यह तो आप जानते ही हैं कि यदि आप समदर्शी हैं तो सुबह-सुबह किसी को भी दर्शन देने का कष्ट न करें। वरना भारतीय मूर्खता ठहरी, लोग आपको टालेंगे ही और इकतीस दिसम्बर की रात को आपकी पत्नी ही आपसे कहेगी, "कल पहली जनवरी है, पूरे साल का सवाल है, कृपया पहले मुझे शीशा देख लेने देना।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो प्रयोग

उस दिन हम एक पौराणिक चलचित्र में जा फँसे। उस चित्र में जो भी स्त्री अपने पति से बात करती थी तो सर्वप्रथम 'नाथ', 'हृदयेश्वर', 'आर्यपुत्र' आदि संस्कृत-प्रणय-सम्बोधनों से पुकारती थी। इन सम्बोधनों को सुनकर हमें अपनी श्रीमतीजी का पहला पत्र याद आया जो उन्होंने अपने मायके से लिखा था। यद्यपि इमामदस्ते में कुटकर पत्र के अक्षरों का कायाकल्प हो चुका था किन्तु हमने उन्हें अपने अनुभवजन्य ज्ञान-संदर्भ के प्रकाश में पहचान लिया।

'मरे पुराननाथ' उन्होंने आरम्भ किया था। 'मेरे प्राणनाथ' की एक हाथ में हुलिया बिगाड़ दी थी। हमने आगे पढ़ा, 'बड़ी वेकली रहती है जी। मरी सरदी भी भौत पड़न लगी है जी। सीने में दरद रहन लगा जी। तुमसे बिछड़के ऐसा लगता है जी कि कोई गऊ अपने हाल के बछड़े से बिछड़ जाय जी…'

राम का नाम लेकर हमने पत्र वहीं बन्द कर दिया।

चित्र में पुन: मन लगाया। इसमें सन्देह नहीं कि इन सम्बोधनों में अंगूर की तरह रस भरा था। बड़ा खेद हुआ कि श्रीमतीजी को साथ क्यों नहीं लाये। तनिक देख-सुन लेतीं तो हम भी रस को कुछ निचोड़ने की कोशिश करते।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नी शरणं गच्छामि

एक कारुणिक दृश्य देखकर हमारी आँखों को पसीना आ गया तो पड़ोसी दर्शक ने अपना कर्तव्य निबाहा, 'क्यों रो रहे हो ?'

'पत्नी की याद आ गई।' सहसा हमारे मुख से निकल गया।

'कब मरी थी ?' उसने सहानुभूति से पूछा।

'पत्नी मरे तेरी, तेरे बाप की !' हम जो क्रोधित हुए तो वह क्षमा माँगने लगा। हमारा भी खजाना खाली नहीं हो रहा था अतः क्षमादान कर दी।

कुछ देर बाद फिर एक दर्द भरा दृश्य सामने आ गया और हमने देखा कि इस बार वह पड़ोसी रो रहा है। हमसे रहा नहीं गया और बिना एक क्षण खोये उसकी ओर झुके, "रोने से अब क्या लाभ है भाई, टिकट के पैसे तो वापस हो नहीं सकते।"

घर आकर हमने श्रीमतीजी को हुक्म लगाया कि हमको भी उन्हीं संस्कृत-सम्बोधनों से पुकारा जाए।

'मगर हमको तो ऐसे शब्द आते ही नहीं, जी।' उन्होंने कठिनाई सामने रख दी।

हमने तुरन्त कोश और संस्कृत-नाटकों की शरण ली, कुछ अपने मस्तिष्क को कुरेदा और श्रीमतीजी के सामने पन्द्रह -बीस शब्दों की एक शुद्ध सूची रख दी। तीन बार अपने सामने ही सभी शब्दों के उच्चारण का अभ्यास कराया और सख्त ताकीद कर दी कि कल तारे छिपते ही हमसे कुछ भी कहने से पहले इस सूची में से किसी एक शब्द का कहना अनिवार्य है।

कल आ गया और तारे छिप गए। श्रीमतीजी हमें उठाने आयीं मगर हम क्यों बोलने लगे। श्रीमतीजी हमें बार-बार गीले आटे की तरह इधर से उधर गूंथने लगीं। हमें पड़े-पड़े क्रोध आ रहा था कि सूची के शब्दों का प्रयोग क्यों नहीं करतीं। हारकर उनके मुख-कमल से निकला, 'प्राणेश्वर, जरा उठो और मुन्ना की टट्टी धुलवा दो !'

जो मजा 'प्राणेश्वर' सुनकर आया था वह शेष वाक्य को सुनकर किरकिरा हो गया। वचनबद्ध होने के नाते हमने भी कहा,' प्रिये, चलो, अभी धुलवाता हूं।'

पानी डालकर जैसे ही हम डटे कि श्रीमतीजी ने पुनः पुकारा, ' हे आर्यपुत्र, टट्टी अभी और लगी रह गई है, थोड़ा पानी और लाओ।'

'मेरे हृदय-सरोवर की हंसिनी !' हमने निर्जीव स्वर में उत्तर दिया, 'लाता हूं पानी, अभी दरी तो भी धुलवानी है।'

यह प्रयोग बड़ा निकम्मा रहा। भोजन के समय की बानगी लीजिये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'कहो मेरे मन-मंदिर के देवता, दाल में नमक कैसा है ?'

'कम है, प्राणेश्वरी, थोड़ा और डाल दो ।'

'देव, मिर्चें तो ठीक हैं ?'

लगा कि हम कोई जिन्न हैं। पर हमारी दी हुई शब्दावली में यह शब्द भी था अतः विवश हो पानी का घूंट पीकर बोले, 'ठीक है, प्राणाधिके !'

शाम को फटा हुआ मैला थैला थमाते समय श्रीमतीजी बोलीं, 'जीवननाथ, पन्द्रह पैसे की हरी मिर्चें, दस पैसे का पोदीना, एक नींबू, ढाई सौ ग्राम टिण्डे, पाँच सौ ग्राम आलू और सस्ती हों तो पाँच सौ ग्राम भिण्डी भी लेते आना।'

हमें क्रोध तो किलोभर आया किन्तु चुप कर गये।

सोते समय श्रीमतीजी चहकीं, 'मेरे सर्वस्व ! दूध तो पी लो !'

हम गुस्से में चीख उठे, 'मेरी जीवन-नौका का कण्डम पतवार ! मुझे दूध नहीं चाहिए, बच्चों को पिला दो, कल से यह प्रयोग बन्द !' और हम करवट बदल, चादर तान, सांस खींच सुबह तक के लिए मर गये।

अब, एक दिन हम आधुनिक सामाजिक चित्र में जा अटके, जिसमें प्रत्येक स्त्री-पात्र अपने प्रेमी या पति का आधा नाम बड़े प्यार से लेती है और अपनी फरमाइश सामने रख देती है। हमें यह प्रयोग प्रसन्द आया और घर आकर श्रीमती जी को आदेश दिया, ''कल से तुम जो भी कुछ हमसे कहो, पहले हमारा आधा नाम पुकारो। यह करछुली-चीमटा बजाना और 'मुन्ना के बापू' बन्द। जैसे हम दरवाज़े पर हैं और आप आंगन में झाड़ू लगा रही हैं तो झाड़ू फेंक खट से आओ, झट से सीने से लगो और फट से शरमाकर हमारा नाम लो, फिर कमीज के बटनों को घुमाते हुए किन्तु टूटने से बचाते हुए, मुसकराकर कहो, 'हमें एक साड़ी ला दो न बाजार से'—समझीं।''

श्रीमतीजी हमारी ओर आंखों के दीवले चौड़े कर रह गईं। मगर हम भी पंच-वर्षीय-योजना अधिकारियों की तरह अपने प्रयोग पर दृढ़ थे। किन्तु नये प्रयोग में श्रीमती जी ने पहले-सा साथ नहीं दिया। वे हमारा आधा नाम पुकारने को तैयार नहीं हुईं। हम भी बच्चे की तरह रूठ गये। भोजन के समय श्रीमतीजी ने बहुत जोर दिया, कसमें खिलाईं, निहोरे किये, किन्तु हठी बैल-से हम न माने। नतीजा यह कि न हमने भोजन किया और न श्रीमतीजी ने कौर तोड़ा।

जिस समय श्रीमती जी बर्तनों को मांजने के लिए हाथों में उठाये चलीं तो हमने रसोईघर में ही जा घेरा, 'तुम आधा नाम लेती क्यों नहीं हमारा ? सभी तो प्यार से अपने पति को पुकारती हैं—राजेश, उमेश, अरविन्द आदि। तुम भी लो न !'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीमतीजी खड़ी थीं। उनके दोनों हाथों में परात (बर्तनों से भरी) थमी थी। हम उन्हें कमर पर से दोनों हाथों से घेरे थे। उन्होंने कहा, 'जब हम आपका आधा नाम लेने को होते हैं, तो ऐसा लगता है कि…'

'कैसा लगता है ?' हम बड़े खुश हुए।

'ऐसा लगता है…'

'कैसा लगता है ?' हमें रोमांच हो आया।

'ऐसा लगता है…'

'कैसा लगता है, कहो न जल्दी से !' हम श्रीमतीजी के और निकट आ गये।

'जैसे कोई मां अपने छोटे बेटे को पुकारती है।' श्रीमतीजी के मुख से निकला और हमने उन्हें दीवार से दे मारा। बर्तन चारों ओर हमारे अरमानों की तरह बिखर गये। हम भी सिर पकड़कर एक कोने में धर रहे।

यह प्रयोग भी बन्द रहा और हमारे घर अब भी करछुली बजती है, चीमटा खटकता है और हम वही 'मुन्ना के बापू' कहलाते।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छात्र, अध्यापक, सरकार : तब और अब

तब और अब का भेद जरा देर से समझ में आता है, जैसे प्लेटफार्म पर खड़ी दो गाड़ियों में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता किन्तु तनिक बैठ जाइये, जब एक गाड़ी कलकत्ता पहुंचाएगी और दूसरी अहमदाबाद तो अन्तर स्पष्ट हो जायेगा। इस अन्तर को ड्राइवर समझता है और समझते हैं यात्री लोग, प्लेटफार्म का टिकट लेकर तटस्थ भाव से तफरी करने वाले नहीं समझ पाते। इसी प्रकार तब और अब के भेद के बारे में जानना चाहिए। बहुत-सी बातें पृष्ठभूमि से समझ में आ जाती हैं, अतः हम दोनों शब्दों को 'ला' की पृष्ठभूमि देते हैं। परिणामस्वरूप नये शब्द 'तबला' और 'अबला' बने। अब तो साधारण पाठक को भी भेद स्पष्ट हो गया होगा।

तब जो चीज़ें थीं, अब नहीं रहीं। बहुत दूर क्यों जाएँ? किसी आदमी को एम० पी० या एम० एल० ए० होने से पहले और बाद में देखा है? तब वह ककड़ी था और अब काशीफल। जैसे ही वह 'कुछ' हो जाता है, स्वार्थ-सिद्धि की खाद खाने लगता है, फलस्वरूप शरीर मोटा होता जाता है और आंखें छोटीं। न सोये कुत्ते की पूंछ दीखती है, न खुली हुई नाली; केवल अंकुश के सहारे चलता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। खैर, अतीत की ओर पुनः मुड़ते हैं। तब के ब्राह्मण वेद-पाठ किया करते थे और अब के ब्राह्मण सिनेमा की तर्ज़ पर कीर्तन करते हैं। तब के क्षत्रिय धरती पर खड़े होकर शेर का शिकार किया करते थे और अब के क्षत्रिय चूहे मारने के लिए पुड़िया खरीदते हैं। तब के बनिया राजाओं को भरपूर धन (राजा का भाग) दिया करते थे और आज के बनिये इन्कमटैक्स चुराते हैं। आइये, कारण और परिस्थितियों को गोली मारकर देखें कि तब के छात्र, अध्यापक और सरकार कैसी थीं और अब के छात्र, अध्यापक और सरकार कैसी हैं ?

१—(क) तब के छात्र

शहर के बाहर गुरुकुलों में पढ़ते थे। सम्पूर्ण ज्ञान-प्राप्ति ही उनका एकमात्र लक्ष्य होता था। ब्रह्मचारी और चरित्रवान होना स्वाभाविक गुण थे। गुरु और उसके परिवार की सेवा उनका धर्म था। शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी न था अतः भाषा में न उलझकर छात्र विषय का ज्ञान प्राप्त करते थे। जनरल इंगलिश कम्पलसरी न थी अतः बहुत कम फेल होते थे। नकल करने का आविष्कार नहीं हुआ था। ड्रेस और भोजन सभी का समान होता था। कृष्ण और सुदामा साथ ही पढ़ते थे और जंगल में लकड़ी बीनने जाया करते थे। राजनीति से छात्रों का कोई सम्बन्ध नहीं होता था। स्ट्राइक नाम की कोई चीज़ नहीं थी। छात्रों का सम्मान उनकी योग्यता के बल पर होता था। बड़े दिन की लम्बी छुट्टियाँ नहीं होती थीं। सामवेद के गीतों से मन-बहलाव होता था। पढ़ते समय तक क्वांरा रहना पड़ता था। फीस की कोई समस्या न थी। पुस्तकालय की पूजा करते थे। गुरु का आदर प्रत्येक मूल्य पर होता था। गुरु की आज्ञा सदैव शिरोधार्य होती थी। प्रत्येक घड़ी योग्यता का प्रमाण देना होता था। विद्यालय छोड़ते समय प्रत्येक छात्र को गुरु-दक्षिणा देनी होती थी और इस गुरु-दक्षिणा को पूरा करने में छात्र को गर्व का अनुभव होता था। हरिजन छात्रों को ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य छात्रों के साथ पढ़ने का अधिकार न था।

तब का सर्वश्रेष्ठ आज्ञापालक छात्र एकलव्य हुआ। वह बड़ा मेधावी, विनम्र और शिष्ट हरिजन छात्र था। उसने गुरु द्रोणाचार्य की मूर्तिमात्र सामने रखकर बाण-विद्या सीखी थी। द्रोणाचार्य ने गुरु-दक्षिणा में एकलव्य से सीधे हाथ का अंगूठा ही मांग लिया जिसके फलस्वरूप एकलव्य अर्जुन से श्रेष्ठ धनुर्धारी न रह सका, किन्तु उसने अंगूठे की गुरु-दक्षिणा बड़ी खुशी से दी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ख) अब के छात्र

शिक्षा-संस्थाएं शहर में ही होती हैं। नौकरी-प्राप्ति ही छात्र का लक्ष्य होता है। आज के छात्र का विचार है कि—कभी भी कोई ब्रह्मचारी नहीं रहा, सब गप्प है और हम चरित्रवान् नहीं हैं यह सिद्ध नहीं किया जा सकता। गुरु की सेवा छात्र के चिन्तन में कभी शामिल नहीं होती। गुरु-परिवार की सेवा छात्र केवल सिनेमा-सरकस का पास लाकर या भीड़ में टिकट लेकर करते हैं। शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी है अतः छात्र भाषा में उलझकर रह जाता है और विषय का ज्ञान नहीं कर पाता। जनरल इंगलिश कम्पलसरी है अतः छात्र खूब फेल होते हैं। नकल हर स्तर पर हवा-पानी की तरह निर्भय उपलब्ध है। ड्रेस और भोजन समान होने का प्रश्न ही नहीं उठता। किसी छात्र का खड़ाऊं खट-खट करता है तो किसी के शू चर्रमर्र करते हैं। अध्यापक सौ रुपये का सूट पहनता है तो छात्र दो सौ का सिलवाता है। आज भी कृष्ण और सुदामा साथ-साथ पढ़ते हैं मगर जंगल में लकड़ी बीनने के बजाय गोलचा में 'संगम' देखने जाते हैं। राजनीति से छात्रों का अखण्ड सम्बन्ध होता है। सभी राजनीतिक पार्टियां छात्रों को बेवकूफ बनाकर अपना-अपना उल्लू सीधा करती हैं। स्ट्राइक छात्र के टाइमटेबिल में शामिल रहती है। छात्रों का सम्मान उनकी गुण्डागिरी, वंश और अन्य छात्रों को संगठित कर सकने के कारण होता है। बड़े दिन की बहुत लम्बी छुट्टियां होती हैं। सिने-गीतों से मन-बहलाव होता है। क्वांरेपन की कोई शर्त नहीं है (बाप और बेटा साथ-साथ एक ही परीक्षा में बैठ सकते हैं)। फीस देना सबसे बड़ी समस्या है (अभिभावक का दिवाला निकल जाता है)। पुस्तकालय की पुस्तकों के पृष्ठ फाड़ना सबसे बड़ा अध्ययन है। गुरु का आदर बहुत कम करते हैं। सकारण, अकारण (मूड पर निर्भर है) गुरुजी से माफी मंगवा लेते हैं। गुरुजी की आज्ञा (या प्रार्थना !) चाहे जब शिरोधार्य से पददलित हो सकती है। प्रमाण-पत्र के अलावा योग्यता का कभी भी प्रमाण नहीं मिलता। विद्यालय छोड़ते समय गुरु-दक्षिणा की प्रथा नहीं है। इतना ही काफी है कि छात्र भविष्य में किसी कारण से तंग करने न आये। आज हरिजन छात्रों को सभी के साथ पढ़ने का अधिकार ही नहीं है वरन् पढ़ने को प्रोत्साहन देने के लिए अनेक प्रकार से सरकारी सहायता भी मिलती है।

हरिजन छात्रों की संख्या भी आज अधिक होती है। सम्भवतः अभी तक तो कोई हरिजन छात्र सर्वश्रेष्ठ घोषित हुआ नहीं। आज का अधिकांश हरिजन छात्र एकलव्य का आदर्श नहीं निभा पाता। वह प्रायः विनम्र, मेधावी और शिष्ट नहीं होता। किन्तु वह चहुंमुखी उन्नति के पथ पर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२—(क) तब के अध्यापक

समाज में अध्यापक का बड़ा मान था। अध्यापन के शौकीन ही इस क्षेत्र में कदम रखते थे। अध्यापकों में परस्पर छोटा-बड़ापन न था। ज्ञान-दान ही जीवन का चरम लक्ष्य था। सादा जीवन और उच्च विचार का प्रतीक था। सदैव छात्र-हित का अभिलाषी रहा। विद्यालय में रहते समय राजनीति से यथासम्भव दूर रहता था। ट्यूशन नहीं करता था। शिक्षा का स्तर ऊंचा रखने के लिए कभी प्रदर्शन नहीं किये।

(ख) अब के अध्यापक

समाज में विशेष सम्मान नहीं है। अध्यापन के शौकीन कम, पेट की खातिर इस क्षेत्र में अधिक लोग आते हैं। अध्यापकों में परस्पर छोटे-बड़ों का गहरा भेद है। आवश्यकताएं बेशुमार हैं। भौतिक-स्तर से घनिष्ठ सम्बन्ध है। परिवार-पोषण और समय काटना ही चरम लक्ष्य होता है। केवल विज्ञान और अंग्रेज़ी के अध्यापक ही ट्यूशनों द्वारा सफल जीवन-यापन कर लेते हैं। डिग्री कॉलेज का अध्यापक दिखावटी सभ्यता का उत्तम प्रतीक है। प्राइमरी स्कूल का अध्यापक किसी प्रकार जीवन को ढोता है। उसकी तनख्वाह सरकारी चपरासी से भी कम होती है; जबकि प्राइमरी-अध्यापक ही राशन कार्ड बनाने में, मर्दुमशुमारी करने में, चुनाव में, १५ अगस्त, २६ जनवरी आदि विशेष उत्सव मनाने में सरकार की भरपूर सहायता करता है। आज के अध्यापक का सादा जीवन कतई नहीं होता। उच्च विचारों से सम्बद्ध होना अनिवार्य नहीं है। छात्र-हितों का हमेशा अभि-लाषी रहा है किन्तु कभी-कभी परीक्षाओं के निरीक्षण-परीक्षण का बायकाट कर वेतन में बढ़ोत्तरी के लिए छात्रों का साल दांव पर लगा देता है और सभी कुछ पढ़ाकर उसकी जांच से मुकर जाता है। यों कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में अनेक प्रोफेसर अपने विषय के छात्रों को टटोलते हैं कि मिल जाएं तो पढ़ावें। कुछ तो वेतन लेने के दिन ही दिखाई देते हैं। राजनीति से यथासम्भव घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। कभी-कभी कक्षा में किताब पढ़ाना भूल जाते हैं और अपनी पार्टी का प्रचार करने लगते हैं। यथाशक्ति ट्यूशन करता है। शिक्षा-स्तर का सम्बन्ध वेतन से जोड़ता है और शिक्षा-स्तर को ऊंचा उठाने के लिए कॉलेज से छुट्टी लेकर प्रदर्शन करता है।

३—(क) तब की सरकार

सरकार राजा की होती थी, जो छात्र और अध्यापकों का बराबर ख़याल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रखती थी । शिक्षा-संस्थाओं का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उन्हीं पर होता था । छात्रों से कोई फीस नहीं ली जाती थी । बड़े से बड़ा अधिकारी भी अध्यापक के सामने नत-मस्तक होता था ।

(ख) अब की सरकार

जनता की सरकार है और उसमें भूतपूर्व अध्यापक तथा अध्यापकों की संतान भी शामिल है । फिर भी सरकार छात्र और अध्यापकों का विशेष ख़याल नहीं रखती । सरकारी और ग़ैरसरकारी संस्थाओं में भेद बर्तती है । प्रतिवर्ष हज़ारों छात्र अंग्रेजी में फेल होते हैं किन्तु अंग्रेज़ी को वैकल्पिक विषय नहीं बनाती । छात्रों के भविष्य की अधिक नहीं सोचती या सोचती है तो कर नहीं पाती । शिक्षा का ढंग क्लर्क पैदा करने का है । मंहगाई के इस कठिन युग में प्राइमरी स्कूल के अध्यापकों और सभी शिक्षालयों के ग़ैर-शिक्षक-वर्ग को अति अल्प वेतन देकर लगभग भूखा मार रही है ।

अब तो हम समझते हैं कि 'तब' और 'अब' का भेद समझ में आ ही जाना चाहिए ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम भी लखपति हैं

हमने देखा है कि लोग दहेज के विरुद्ध कलम तोड़कर लिखते हैं और गला फोड़कर बोलते हैं। किन्तु इन लेखकों और वक्ताओं से बढ़कर शायद ही कोई मूर्ख होगा। जरा सोचा जा सकता है कि इस अर्थ-प्रधान युग में यदि रुपये की पोटली नत्थी न हो तो निरक्षरा और कुरूपा सौभाग्याकांक्षिणियों की शादियां समय पर कैसे हो सकती हैं और फिर उन्हें शिक्षित तथा स्वरूपवान वर ही हस्ता-मलक कैसे सम्भव हो सकते हैं ? जिस जाति में दहेज-प्रथा नहीं है, उस जाति की कुमारी कन्याएं सांस्कृतिक कार्यक्रम दिखाते-दिखाते बिना नकेल की ऊंटनी हो जाती हैं और कभी-कभी तो शादी के बाद के मंगल-कार्य शादी से पूर्व ही सुसम्पन्न हो जाते हैं। या ऐसी जाति की शिक्षिता कुमारिकाएं प्रायः 'विवश-ब्रह्मचर्य' का व्रत धारण कर लेती हैं।

यह सच है कि मनुस्मृति में उस विवाह को अधम विवाह कहते हैं जिसमें वर-पक्ष कन्या-पक्ष से रुपये वसूल करता है किन्तु वास्तविक समाज-सुधारक वीर तो वे ही होते हैं जो अर्थ को बदल देते हैं। कितना श्रम करना पड़ा है उन बहादुरों को जिनके कारण आज दहेज को घृणा की दृष्टि से देखने की अपावन परम्परा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टूटी और दहेज की तोल प्रतिष्ठा का पैमाना बनी। दहेज को बुरा बताने वाले को हम तो पागल ही कहेंगे। आप लाख पसीना बहाएं मगर यह दहेज अन्तर्जातीय या अन्तर्राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्लोकीय विवाहों से भी समाप्त नहीं होने वाला।

दहेज एकदम एकपक्षीय व्यापार होता है, टोटे का तो प्रश्न ही नहीं उठता। जब खनखनाते रुपये या खड़खड़ाता चैक सामने आता है तो सिद्धान्त टापते रह जाते हैं और आदर्श मुंह फाड़ते ! अपने राम ने अभी-अभी दो शादियां देखीं। पहले लड़के की अभिभाविका मिलीं तो चहकीं, "मैंने अपने लड़के की शादी तय कर दी। लड़की भी मिली, विद्या भी है और बीस हज़ार रुपया भी हाथ लगा।"

"तो क्या शादी में लड़की नहीं मिला करती ?" अपने राम चौंके और धीमे से बोले, "भगवान जब देता है तो लड़का फाड़कर देता है किन्तु आप तो समाज-सुधारों की स्तम्भा हैं, अनेक बार महिला-समाज का नेतृत्व किया है और मंच को उखाड़कर तीन इंच दूर फेंक दिया है। आप ही दहेज लेती हैं ?" तो माहिल के अक्षरों की स्वामिनी बोलीं, "तुम तो हिन्दी में एम० ए० हो। काकुवक्त्रोक्ति का सर्वाधिक प्रयोग नेता ही किया करते हैं। दहेज का विरोध करते हैं, इसका सीधा अर्थ ही यह है कि दहेज चाहते हैं।"

दूसरे विवाह में भी दहेज-विरोधी अभिभावक की बांछें खील-सी खिली हुई थीं। दुनिया ने देखा कि उनके सुपुत्र की शादी में बीस हज़ार नकद आये, यद्यपि जीवन भर वे दहेज के विरोध में ही चीखते रहे और प्रचार करते रहे। सच तो यही है कि आदमी ईमानदारी और परिश्रम से इतना कभी नहीं कमा सकता और न प्रत्येक प्यारेलाल वृष्णिः ही है जो बोलता नहीं था, केवल करके दिखाता था और जो किसी भी बहाने से आये नकद रुपये या जेवर को दहेज की संज्ञा देता था। अतः जब किसी के सामने हराम और बिना पसीने की कमाई बाढ़ से पानी-सी उमड़ती है तो समेटते ही बनती है। परसी हुई थाली को सामने के कौन हटाने देता है ! घी में मिलावट की तरह यह निश्चित है कि अगर विष्ठा के रूप में भी मिले तो दहेज के ये मतवाले उस पर सूअर बनकर टूट पड़ेंगे और अधिक-से-अधिक डकारने की कोशिश करेंगे।

उस दिन जब एक और सगाई में हमने बीस हज़ार देखे तो हमारी चना-मटर-सी आंखें सगाई की परात-सी चौड़ी हो गईं। हमने धीमे से लड़की वाले से कहा, "अगर आप कहें तो दहेज के विपक्ष में ऐसा बोलूं कि लोग परात से रुपये उठाकर आपकी जेब में रख दें। बोलो, क्या कहते हो ?"

"फिर कभी।" उसने कहा, "बिना रुपया मेरी लड़की को ऐसा लड़का नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिल सकता। बेटा ज़िन्दगी-भर करम को ठोकेगा। इस समय तो सूट, साइकिल, सोफा, रेडियो, फटफट और घड़ी पर लोट-पोट हो गया है।"

निश्चय ही बच्चे उगाना एक जुआ है और हम समझते हैं कि हज़ारों की हारजीत में इंच-भर का ही फासला होता है। लड़का हुआ तो इधर और लड़की हुई तो उधर। अस्तु, तुरन्त ही घर आये, नई पेंसिल दरांत से छीली, जूतों का डिब्बा उठाया और श्रीमतीजी से प्रश्न किया, "हमारे घर में हमारे कितने लड़के हैं ?"

"हमारे लड़के ?" जैसे श्रीमतीजी की समझ में बात नहीं आयी।

"तो क्या हमारे घर में किसी और के भी लड़के हैं ?"

"हटो भी!" श्रीमतीजी अब शरमाईं और सीधे हाथ का पंजा खड़ा कर सगर्व बोलीं, "पूरे पांच लड़के हैं।"

"ठीक है। पाँच को बीस हज़ार से गुणा किया तो एक लाख रुपये हुए।"

"एक लाख रुपये !"

"हां, एक लाख रुपये। अनजाने में ही हम लखपति बन चुके हैं और हमें मालूम तक नहीं। अपने टोटल लड़कों की शादी में एक लाख रुपया आयेगा, कैलेण्डर से नये लूंगा।"

"कहां रखोगे, कहीं आग का फुआं जा पड़ा तो ?"

"ओफ, बाल-बाल बच गए। तुमने खूब बचाया। नोट की जगह रुपये लेने पड़ेंगे, चुम्बक से चुपकाकर देखना होगा। खैर, आंगन में एक चबूतरा बनवायेंगे।" हमने आंख बन्द कर कहा, "ऊपर से ठोस भीतर से पोला जैसे भारत में योजनान्तर्गत बने बांध या ऐस्किमोज का बर्फ का घर। हम-तुम उसी चबूतरे के अन्दर सोया करेंगे।"

"आज जरूर गहरी छान ली है। अपने सपूतों की शकल तो देखो। जाड़ों में भी लंगोट लगाये, फुकने फुलाते गलियों में घूमते हैं और लेने चले हैं एक लाख !"

"लड़कों की शकल से क्या होता है, जी। नंग-धड़ंग शिव को देख लो और सजी-बजी पार्वती को। आज भी कितनी सुन्दरियां हैं जिन्हें सुन्दर पति मिल जाते हैं ? वर-महोदय ढाई सौ का सूट पहनकर भी हेता कुम्हार या छिद्दा चमार की औलाद मालूम पड़ते हों किन्तु यदि इंजीनियर हैं तो रूपवती ग्रेजुएट कन्या रॉकेट की रफ्तार से गले आ लगती है। पांचों को इंजीनियर बनाऊंगा या फॉरेन भेजूंगा।"

"तुम्हारे पुरखे भी कभी इंजीनियर हुए हैं या फॉरेन गए हैं ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम भी लखपति हैं

"पुरखों तक पहुंचोगी तो अच्छा न होगा !" हम क्रोध से चीखे, "क्योंकि सच कह रही हो इसलिए इस बार क्षमा करता हूं। अरी, इंजीनियरी पढ़ाने में क्या रुपयों की आवश्यकता पड़ती है ? बस, दाखिला कराने भर की बात है, फिर तो कोई न कोई गांठ का पूरा लड़की वाला आ भिड़ेगा जो सारे वर्षों की पढ़ाई तो देगा ही, नकद रुपये भी देगा। यही नुस्खा फॉरेन भेजने का है।"

"लड़कियों की फौज भी तो कम नहीं है, जितना लोगे उतना देना न पड़ेगा ?"

"बड़ी मूर्खा हो, बिजनेस के मैथड से कतई वाकिफ नहीं हो।" हमने धैर्य धारण कर समझाया, "लड़कियों को इतना देने की क्या आवश्यकता है ? कोई इंजीनियर या फॉरेन-रिटर्न लड़का थोड़े ही देखेंगे। यही कोई आस्टर-मास्टर, क्लर्क-व्लर्क या दुकानदार टाइप ऐरा-गैरा देखा और चार-पाँच हज़ार में पत्ता काटा। आओ, तुम्हें सारी योजना समझाऊँ।"

उसी समय बड़े साहबजादे आये, "पिताजी, छुटकना नहीं मिल रहा। बहुत तलाशा मगर खेलते-खेलते कहाँ चला गया, कुछ पता नहीं।"

हमने लापरवाही से कहा, "छुटकना नहीं मिल रहा तो जाने दो जहन्नुम में, मैं तुम्हारी ही शादी में चालीस हजार बसूल कर लूंगा।"

पर तभी छुटकन की माँ ने हमें ऐसा धक्का मारा कि हम गिरते-गिरते बचे और छुटकन की तलाश में निकल पड़े। सच तो यह है कि हम छुटकन को नहीं, बीस हज़ार के चैक की तलाश कर रहे थे।

खेद तो इस बात का है कि पुराने ज़माने में हम सस्ते लुट गए। बहुत संभव है कि श्रीमतीजी के बाप से अधिक हमारे पिताश्री ने ही खर्च किया हो। हमारा मत है कि यह दहेज समाप्त नहीं होने वाला। एक आधुनिक पुराण-कथा 'सम्मान का जीवन' से यह और भी स्पष्ट हो जायेगा। कथा इस प्रकार है—

बाबू चतुरीप्रसाद ने बीमारी का बहाना बनाकर दफ्तर से छुट्टी ले ली और घर सत्यनारायण की कथा कहलवाई। उस अप्रभावित करने वाली कथा से चतुरीप्रसादजी इस सीमा तक प्रभावित हुए कि उनके मुख से निकला, "मैं आज से, बल्कि अभी से स्वाभिमान एवं सम्मान का जीवन व्यतीत करूंगा।"

शाम को जब चतुरीप्रसादजी बैठक में अकेले बैठे 'घर बैठे ढाई हजार माहवार कमाइए' का विज्ञापन पढ़ रहे थे तो एक मूर्ति आयी और उदासीनता से बोली, "मैं जाता हूं।"

"कौन हो तुम ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"झूठ हूं मैं।"

चतुरीप्रसाद मौन हो गए। झूठ चला गया। इसी प्रकार 'धोखा' और 'विश्वासघात' आये और मुंह बिगाड़ते चले गए। थोड़ी देर बाद 'निन्दा' और 'निर्लज्जता' आयी और मन्दगति से बाहर निकल गईं। चतुरीप्रसाद चट्टान-से डटे रहे।

अन्त में एक भारी-भरकम शरीर आया। उसका चेहरा सेव-सा लाल था और आंखें नशे में मुंदी जा रही थीं।

"अब तुम कौन हो ?" चतुरीप्रसाद ने लापरवाही से प्रश्न किया।

"मैं दहेज-दानव हूं। समाज का सुख-चैन मेरी खुराक है। जब तुम सम्मान और स्वाभिमान का जीवन व्यतीत करोगे तो मैं क्या करूंगा रहकर ?"

बाबू चतुरीप्रसाद ने अखबार एक ओर फेंका और दहेज को दोनों हाथों से पकड़कर बराबर की आरामकुर्सी पर बैठा, पंखा खोल दिया, "तुम क्यों जाओगे भाई, तुम्हें तो यह मूर्ख समाज प्रतिष्ठा का आधार समझता है। बोलो, क्या पीओगे, चाय या शरबत ?"

किन्तु दहेज की आंखें नशे में बन्द हो चुकी थीं और वह चतुरीप्रसाद की गोद में गन्दे पैर फैलाकर खर्राटे ले रहा था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वक्त देखो, बात देखो

जब हम उषाकालीन अनिवार्य त्याग में दत्तचित्त थे, द्वार पर श्रीमतीजी किसी पड़ोसिन से कह रही थीं, "देखो बहन, वक्त देखा करो और बात भी। यह क्या कि भिखारी और ब्राह्मण की तरह अपनी ही बात में डूबी हुई और वक्त की कोई परवाह नहीं।"

अहा, कितनी कीमती बात उगल गईं श्रीमतीजी ! हम तो उन्हें मात्र गाजर का अचार डालने और नये बच्चों की माँ बनने में ही निपुण समझते थे, पर वे तो पूरी ज्ञानदेई निकलीं। भिखारी को अपनी भीख से मतलब और ब्राह्मण को अपनी दक्षिणा से, चाहे कहीं जन्म हो चाहे कहीं मरण। एक बार डॉक्टर चाहे फीस न ले मगर भिखारी और ब्राह्मण से पीछा नहीं छूटता। हमने सब कुछ भूल वक्त और बात पर ही दिमाग भिड़ा दिया। कौन नहीं जानता कि वक्त और बात मिलकर उसी प्रकार इतिहास बन जाते हैं जिस प्रकार नीला और पीला रंग मिल-कर हरा रंग; या आधुनिक क्लबों में सौन्दर्य और समर्पण मिलकर संस्कृति (!) और स्वर्ण का रूप धारण कर लेते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"सरकार, फरजन्द होने की खुशी में हुए इस जश्न में बुलाकर आपने हम गरीबों को जो इज्जत बख्शी है, इस अहसान का बदला हम ज़िन्दगी भर नहीं चुका सकते। फिर भी हम आधी रात खिदमत के लिए हाज़िर हैं, जब भी मुनासिब समझें हम गरीबों को जरूर याद करें।"

"जरूर-जरूर !" वकील साहब ने खुश होकर कहा, "हम काम पड़ने पर जरूर याद फरमायेंगे। क्या काम करते हो तुम लोग ?"

"सरकार, कब्र खोदा करते हैं हम।"

वकील साहब की सांस अन्दर तो साँस का पीछा करता दम बाहर।

मजदूरों ने जो बात की वह वक्त से मेल नहीं खाती थी किन्तु वे भोले थे, बात और वक्त में क्या रिश्ता है, वे नहीं जानते थे। किन्तु जो जानते हैं वे भी बेवक्त की बात कर जाते हैं। मातादीन की शादी हुई तो बारात लौटते ही देवेन्द्र ने उसे बुद्ध की प्रतिमा भेंट की। अब बताइये, यह बेवक्त की शहनाई नहीं तो और क्या है ? देवेन्द्र के जाते ही जब मातादीन प्रथम मिलन की मधुर कल्पना में डूबा था तो सुरेन्द्र साहब अपना बैग लिये टपक पड़े, "कहो दोस्त, कल तक तो कहा करते थे कि मरने के बाद रुपये कौन संभालेगा। अब तो गिननेवाली आ गई है, बीमा करा लो।"

ये बीमा-एजेण्ट बड़े अशुभ होते हैं, सदा यही कहते हैं कि मर जाओगे तो फायदा होगा। वक्त-बेवक्त कुछ भी न देख मतलब गाँठने की ताक में रहते हैं। पचीस वर्षीय अर्जुन की जब अचानक मौत हो गई तो आँगन में उसकी लाश के चारों ओर हाहाकार मच गया। तभी एक सर्वथा अपरिचित किन्तु सहानुभूति से भरा स्वर सुनाई पड़ा, "आज के तरक्कीशुदा ज़माने में मौत और ज़िन्दगी में फर्क ही क्या रह गया है, बिजली छू ली और साँस बाहर। कुछ बीमा भी था या नहीं ?"

"जवान-जवान बहू, दो गीदे-गीदे बालक ! हाय, क्या होगा ?" किसी भले पड़ोसी ने रोते-रोते उत्तर दिया।

"ओह, बीमा तो अवश्य करा लेना चाहिए था।" वही अपरिचित दुःखी स्वर था।

"मैं तो बीमा अवश्य कराऊँगा, भगवान् !"

"तो फिर आइये बाहर, मैं फार्म निकालता हूँ।" अपरिचित स्वर असली रूप में आ गया।

जो डॉक्टर वक्त और बात को समझता है उसे कुशल और समझदार डॉक्टर की संज्ञा मिलती है; वरना कोई-कोई डॉक्टर साफ़ कह देता है कि मरीज को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

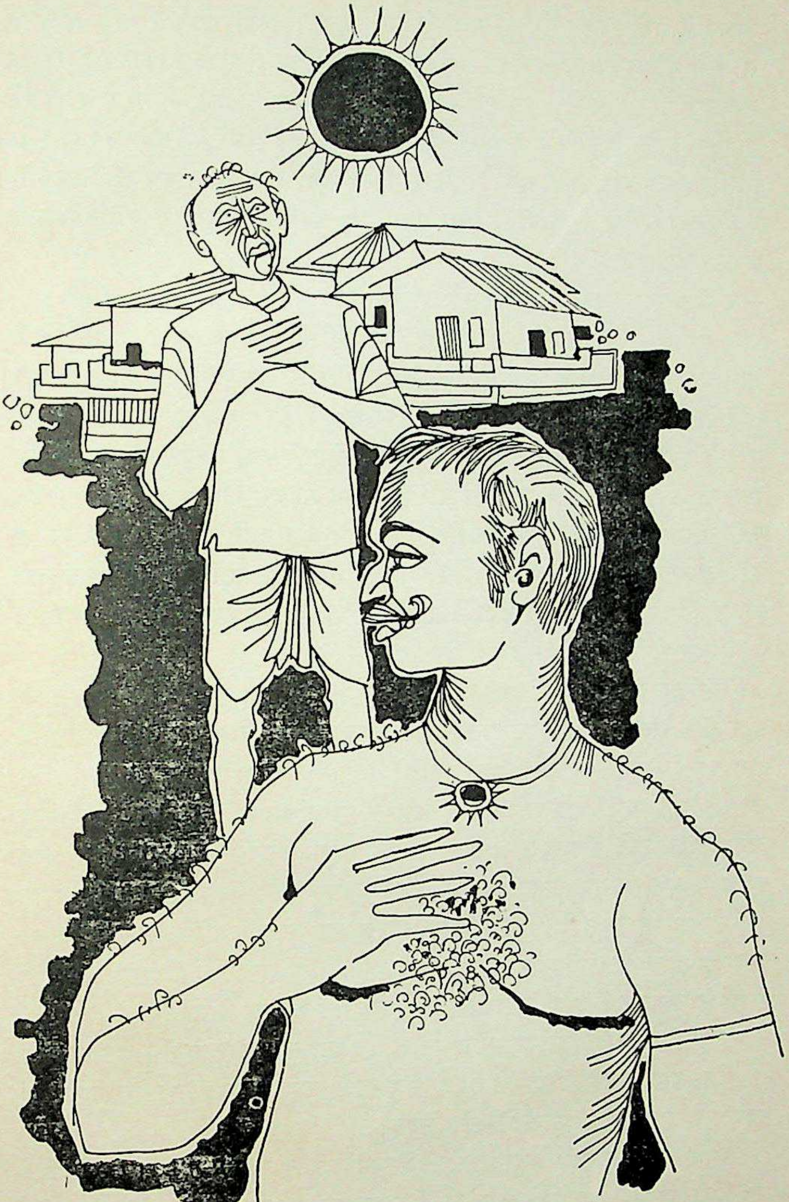

इकहत्तर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईश्वर के भरोसे छोड़ दीजिये। ऐसी ईमानदार डॉक्टरी अधिक नहीं चलती। लाश में भी इन्जेक्शन लगाकर आशा दिलाना प्रथम श्रेणी के डॉक्टर का अन्तिम कर्तव्य है। एक मरीज लबे-दम था। आड़ में, जरा हटकर, नगर के चारों बड़े डॉक्टर दवा के बारे में परामर्श कर रहे थे। प्रत्येक दूसरे की दवा को मृत्यु का निमंत्रण-पत्र ठहरा रहा था। धीमे-धीमे परामर्श ने बहस का रूप ले लिया और तब सहसा मरीज के कानों में सुनाई पड़ा, "अच्छी बात है, देखते हैं मरीज किसकी दवा से मरता है।"

जैसे मरीज का मरना तो अनिवार्य था ही।

मुहल्ले में एकाध बूढ़ा या बुढ़िया, ऐसे भी होते हैं जो खरी बात कहने में उसी प्रकार नहीं चूकते जिस प्रकार संसद में विरोधी दल के नेता। अर्थात् वे वक्त नहीं देखते, अपनी बात को ही सर्वस्व समझते हैं। जैसे एक डॉक्टर किसी गम्भीर मर्ज के मरीज को इंजेक्शन दे रहा है तो वे कहेंगे, "किस यमदूत को बुला लिया, इस डॉक्टर की सुई अन्दर गई नहीं कि रोगी का दम निकला !" किसी युवक की पत्नी मरी पड़ी है तो ये उस रोते युवक से एक साँस में कहेंगे, "रोता क्यों है बेटा, तेरे लिए बीसियों बहू आ जायेंगी। पढ़े-लिखे हो, कमाते हो, लूले-लंगड़े नहीं हो, उमर भी अभी क्या है, ऊपर से दहेज दुबारा मिलेगा। अरे, आफत तो औरत की है जब भरी उमर में मर्द दगा दे जाता है।"

वास्तव में बक्त और बात में वही घनिष्ठ सम्बन्ध है जो दाल और भात में, चोर और रात में, गधे और लात में तथा चीन और विश्वासघात में है। वक्त पर बात बनाने में प्रतिभा की आवश्यकता होती है। बीरबल में यह प्रतिभा अपनी चरम सीमा पर थी। आज भी बीरबल की मानस-संतानें बिखरी पड़ी हैं। एक बार रेल के डिब्बे में कुछ छात्र इश्क़ पर गर्म बहस कर रहे थे। उनकी इस बहस का लक्ष्य एक खूबसूरत छात्रा थी जो उनके सामने की बर्थ पर बैठी थी और कभी-कभी मुसकरा देती थी। वक्त नाजुक था, छात्र अपनी बहस को और भी नग्न रूप दे रहे थे कि एक गँवार ने प्रवेश किया, मूँछें छप्पर जैसी थीं। जब वह छात्रों के बराबर बैठा तो छात्रा ने अचानक घूंघट निकाल लिया।

देहाती के चले जाने पर छात्रा पुनः घूंघट हटा मुसकराने लगी। एक छात्र से नहीं रहा गया, "हमारे सामने तो आप मुसकरा रही थीं और उस देहाती से इस कदर शरमा उठीं कि घूंघट निकाल लिया।"

"जी, बात यह थी कि आप लोगों में मुझे वही एक मर्द नजर आया…" बात पूरी भी न हुई थी कि डिब्बे में चारों ओर कहकहा पड़ा। अगले स्टेशन पर ही चारों छात्र किसी दूसरे डिब्बे के लिए उतर पड़े।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वक्त देखो, बात देखो

एक नाई की चतुराई भी कम न थी। अपने काम में वह इतना चतुर था कि सोते आदमी की दाढी बनाए और नींद न टूटे। एक बार गाँव में लाटसाहब के डेरे पड़े। हजामत के लिए उसी नाई को पकड़ बुलाया गया। नाई लश्कर देख घबरा गया। सभी की हजामत रोज़ बनानी पड़ेगी और मिलेगा छदाम नहीं। नाई घर गया और अपना सामान समेट लाया। लाटसाहब बैठे और नाई ने अपना सामान सजाया। लाटसाहब की नजर टूटे सकोरे पर पड़ी तो पूछा, "यह क्या है ?"

वक्त देख नाई ने बात बनाई, "सरकार, यह चूल्हे की राख है, जब भी मेरा हाथ बहकेगा तो यह राख लगा दिया करूँगा। खून नहीं बहने पायेगा हुजूर, चाहे उस्तरा हज़ार जगह लग जाए।"

इतना कह नाई ने गर्दन झुकाई ही थी कि लाटसाब की फटकार पड़ी। नाई के साथ वह सिपाही भी जान बचाकर भागा जो उसे इनाम के लोभ से लिवा लाया था।

एक उपन्यासकार की जबानी पता चला कि एक मीरासी को भी वक्त देख-कर बात बनाने में कमाल हासिल था। एक बार मीरासी से नाराज होकर एक आतिथेय ने उसका उचित आदर-सत्कार नहीं किया, यहां तक कि मुर्ग-मुसल्लम बना तो वह भी मीरासी को नहीं मिला और उसकी मेज अलग लगा दी गई।

मीरासी खामोश था। मेजबान ने व्यंग्य से कहा, "कहो मीरासी भाई, जबान क्यों चुप है ? क्या सोच रहे हो ?"

"कुछ भी नहीं, बस खुदा की कुदरत पर गौर कर रहा हूं।" मीरासी ने गम्भीरता से कहा।

आतिथेय के साथ अन्य लोग भी उत्साहित हुए, "किस कुदरत पर ?"

"जी, देखिये न !" मीरासी बोला, "जब मैं शाम को यहां आया था तो मुर्गा कभी यहां कूद रहा था, कभी वहां। गरज कि सारे घर मुंडेर नाच रहा था और अब जबकि पूरी तरह छः घंटे भी नहीं गुजरे, उस मुर्गे में इतना दम नहीं रहा कि आपकी मेज से मेरी मेज तक भी आ जाए। है न खुदा की कुदरत !"

मेजबान बेहद झेंपा और मुर्ग-मुसल्लम मीरासी की मेज पर भी आ गया।

और यह तो हमने कल ही कहीं पढ़ा था कि एक ससुराल में दूध के समय जमाई को छोटा गिलास (पाव भर का) और पानी के समय बड़ा गिलास (सवा सेर का) मिलता था। एक बार सुबह जब सास पानी देकर कमरे से बाहर भी न जा पायी थी कि तन्दुरुस्त जमाई ने गिलास की कर-बद्ध आराधना की, "हे गिलास देवता, सारे दिन प्रकट रहकर रात को दूध के समय कहां अन्तर्धान हो जाते हो ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहना न होगा कि जमाई राजा सवा सेर दूध पर हाथ मारने लगे।

कभी-कभी बात वक्त से ऐसी उल्टी पड़ती है कि खून का घूंट पीकर रह जाना पड़ता है। कन्या विदा हो रही थी, वर देहलीज पर द्वार से बाहर जाने के उपक्रम में था कि रिकार्ड बज उठा, "जायेगा जब यहाँ से कोई न साथ होगा, दो गज कफन का टुकड़ा तेरा लिबास होगा..."

वर की आँखों से मई-जून के सूरज की आग बरसने लगी।

साँप या मुवक्किल जब घर में होता है तो नींद नहीं आ सकती। वकील साहब को झपकी लगती ही है कि मुवक्किल आ झकझोरता है, "मिसल तो आपने देख ली थी ?"

"हाँ, देख ली थी।" वकील साहब बेमन से कहते हैं।

"खेत तो मेरा हो जाएगा न ?"

"हो तो जाना चाहिए।"

"वकील तो उसने भी बड़ा किया है।"

"..."

"बड़ी जोरदार बहस करेगा सुसरा।"

"सो तो करेगा।"

"आप भी तो बड़े वकील हैं।"

"लोग कहते तो हैं।"

"खूब जोरदार बहस करना।"

"अच्छा।"

"फिर तो खेत मेरा हो जायेगा न !"

"..."

"मिसल तो आपने देख ली थी ?"

उत्तर में वकील साहब को ऊँघता देख मुवक्किल भी अपनी खरैरी खाट की ओर खिसक जाता है। किन्तु चार बजे ही मुर्गे के साथ मुवक्किल वकील साहब को जगा देता है, "मेंड़ की लम्बाई तो आपको याद है न ?"

वक्तानुकूल बात करना प्रत्येक के वश की बात नहीं है, सिखाने-पढ़ाने पर भी नहीं। प्रसिद्ध लोक-कथा है कि एक नगरसेठ अपने मित्रों के साथ गप्प-गोष्ठी में मग्न थे, कहकहे पड़ रहे थे, फरसी का धुआँ गगन-गामी हो रहा था कि घर का नौकर भागा-भागा आया और लगा गोष्ठी बीच बार-बार चीखने, "सेठजी, घर में नमक नहीं है।"

नगरसेठ को बड़ा क्रोध आया। अवकाश के समय नौकर को समझा दिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि जब सभी मिलने-जुलने वाले सेठ-साहूकार चले जाया करें तब घर की बात धीमे से अकेले में कहा करे। एक दिन उसी प्रकार सेठजी की महफ़िल रंग पर थी। घर का नौकर भागकर तो आया मगर चुपके से एक ओर खड़ा हो गया। सेठजी सन्तुष्ट हुए। घंटे भर बाद महफिल उठी और नगरसेठ अकेले रह गये, तब नौकर ने धीमे से कहा, "सेठजी, घर में आग लग गई है।"

सभी जानते हैं कि कवि-सम्मेलनों में वक्त और बात का बड़ा ख़याल रखा जाता है। दरबारी नियम वक्त और बात की खूबी देखकर ही बनते हैं। अधिक कहने से क्या, वक्त और बात के सम्बन्धों पर ही साहित्य, संगीत, कला, राजनीति, इतिहास, भूगोल, दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और विज्ञान आदि सभी विद्या-विषय निर्भर करते हैं। 'वक्त की बात है' कहकर सम्पूर्ण परिवर्तनों की ओर संकेत किया जाता है।

वक्त-वक्त की शोभा सभी ने सुनी है। वंश में चाहे आपके ही प्रथम बार पुत्र-रत्न उगा हो, फिर भी यदि आप किसी की मातमपुर्सी में जायेंगे तो रोनी सूरत बनानी ही पड़ेगी और मोती-से निर्मल होने पर भी आप अपने दांत तनिक भी नहीं फाड़ सकते।

केवल वक्त का ही ध्यान रखा जाए और बात का नहीं, यह मूर्खता भी अर्थ का अनर्थ कर देती है। एक स्थान पर रात को रामलीला होती थी। बीच-बीच में एक स्वामीजी मंच पर चढ़ जाते, लीला में चल रहे दृश्यों का मार्मिक वर्णन करते और अन्त में पूरी लम्बाई में दाहिना हाथ तानकर उच्चस्वर में घोषित करते, "कितना सुहाना समय है!" जैसे वे कहते, "राम का जन्म हुआ है, सारी अयोध्या में खुशी उमड़ रही है, तरह-तरह के उत्सव मनाये जा रहे हैं, कितना सुहाना समय है!"

'सुहाने समय' से उनका अर्थ यही होता था कि श्रोता-समूह घर के झंझटों से दूर हैं, तारे छिटक रहे हैं, सर्वत्र शान्ति है, भगवान् राम की पवित्र कथा का आनन्द आ रहा है, आदि-आदि। दृश्य-वर्णन के साथ अनजाने ही सुहाने समय को घोषित करते थे। इसी तरंग में उन्होंने एक बार कहा, "राम वन जाने को तैयार हैं, लक्ष्मण भी क्रोध में भरे बैठे हैं, सीताजी साथ जाने के लिए रो-रोकर हठ कर रही हैं, सारी अयोध्या में उदासी छायी है, कैकेई कोपभवन में पड़ी है, दशरथ मरणासन्न हैं, कितना सुहाना समय है!"

बेचारे करते भी क्या! उनके मतानुसार सीता-हरण पर या लक्ष्मण के शक्ति लगने पर अथवा सुलोचना के विलाप करने पर सुहाना ही समय था।

इसके विपरीत यदि बात का ही ध्यान रखा जाए, वक्त का नहीं, तो भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुड़-गोबर हो जाता है। इसके कई उदाहरण दिये जा चुके हैं, एक नमूना और देते हैं। एक बूढ़े रसिया को सारी उमर हनुमानजी की सेवा में गुजार देने के बाद शादी की सूझी। उसके हितैषियों ने बताया कि अमुक गाँव में अमुक के यहाँ एक लड़की है, गरीब है, शायद बात पट जाए। बूढ़े रसिया ने पिचके कपोलों पर सरसों का तेल चुपड़ा, ऊँचा रंगीन साफा कसा, बन्दूक कन्धे पर रखी और घोड़ी हिनहिनाते शाम तक वह गाँव जा दावा। घर का पता लगाया और ऐन दरवाजे पर, प्रतिष्ठा और वैभव का आतंक-सूचक बन्दूक का एक फैड़ कर दिया।

वह लड़की भागकर तुरन्त दरवाज़े पर आयी और किवाड़ खोलते हुए आगन्तुक से बाल-सुलभ चंचलता के साथ कहा, "बाबा, एक और।"

वास्तव में, वक्त और बात को या तो प्राचीन काल में राजपूत जाति समझती थी या आज के युग में धूर्त, खुशामदी, कूटनीतिज्ञ, पालतू पति या गवर्नर जैसा फालतू व्यक्ति समझता है। एक बात और भी है कि वक्त के साथ बात बदल जाती है। जैसे आज के युग में मूँछ-विहीनता के आधार पर, मूँछों पर हाथ फेरकर शपथ खाना समाप्त हो चला है। संतति-निग्रह के इस काल में माँ-बाप नालायक सन्तान से यह नहीं कहते कि, 'क्या इसीलिए तुम्हें पैदा किया था ?' यों···

"बैठे-बैठे सपनों में खो गये क्या ? मेरे पेट में दर्द हो रहा है।" श्रीमतीजी चीखीं तो हमने शीघ्रता से हाथों को हरकत दी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्पादक की मुसीबत

सम्पादक का अर्थ ही सम पर पाद-प्रहार करनेवाला अर्थात् नाचनेवाला होता है। सम पर ताली बजाने वाले होते हैं कानून, संचालक, आलोचक, पाठक और लेखक। वेचारा निकलता तो सेवा करने के लिए है मगर चौतरफा मार पड़ती है, परिणामतः सम्पादक की हवा बराबर निकलती रहती है। कानून की ओर से कभी आर्डीनेन्स, कभी आदेश-पत्र, कभी पेपर-कंट्रोल आर्डर, कभी डिफेन्स ऑफ इंडिया एक्ट तो कभी मान-हानि का दावा; संचालक की नीति पर न चले तो पेट पिचकने का पूरा-पूरा डर; आलोचक, पाठक और लेखक भी सम्पादक का माँस नोचने में नहीं चूकते। सम्पादक की दशा यह कि—

सीने की चोट दिल की औ' पहलू की हाय चोट।
खाये किधर की चोट बचाये किधर की चोट॥

पिछले जन्मों का पाप और साहित्यिक शौक का नतीजा यह कि हम भी एक मासिक पत्रिका के सम्पादक बने और बनते ही मुसीबतें उसी प्रकार आनी आरम्भ हुईं जिस प्रकार नुमाइश के दिनों में मेहमान-मंडलियाँ आ धमकती हैं। यदि पत्र जाति-बिरादरी का हो तो ये मुसीबतें और भी वजनी बनकर आती हैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और सम्पादक की नाजुक गर्दन नापने में किसी को भी हाथ बढ़ाने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता।

हाँ तो, सम्पादक होते ही मिलने-जुलने वालों की संख्या बीमार पड़े बड़े नेता (जब यह निश्चित होता है कि नेता मरेगा नहीं या मरना निश्चित हो तो उसका पुत्र किसी ऊँचे स्थान पर हो) के दर्शकों की भाँति बढ़ गई। चिट्ठी-पत्री भी अधिक होने लगी और हमारी व्यस्तता कई गुना हो गई। जब कभी श्रीमती जी कहीं साथ चलने को कहतीं तो हम प्रूफ-रीडिंग की रफू में आँख फोड़ रहे होते; प्रेस जाने की वजह से प्रायः घर भी देर से पहुँचते। इसमें शक नहीं कि कचहरी की क्लर्की और सम्पादन से कभी-कभी इतना समय भी न मिलता कि भोजन भी निगल लें। जैसे दाना पाट में और टी० बी० का मरीज खाट में चीं बोल जाता है वही दशा क्लर्की और सम्पादन के भिच्चे में हमारी थी। किन्तु सबसे अधिक परेशान हमें आलोचक-पाठकों ने किया। एक बार कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति बैठे थे कि एक वकील साहब बोले, "यार, तुम पत्र में कहानी-उपन्यास मत निकाला करो, बस जाति-बिरादरी के समाचार काफी हैं। कहानी-किस्सों के लिए तो 'माया'-'सरिता' ही मिल जाती हैं। वैसे भी तुम्हारे अखबार में जान नहीं है।"

हमने एक साँस में तीन दर्जन पत्रिकाओं के नाम गिनाये और उनसे निवेदन किया, "आप जो पत्रिकाएँ पढ़ते हैं, उन्हें ही क्यों पढ़ते हैं, और भी तो हैं। फिर जाति-बिरादरी के समाचारों से आप कितने पृष्ठ भर सकते हैं ?"

इतना कहने के बाद हमने तीन-चार माह के ताजे पत्र निकाले और उनके सामने रखकर कहा, "आपने इनमें से कौन-सा अंक पढ़ा है ?"

"पढ़ा तो एक भी नहीं।"

हमारे साथ और लोग भी हंस पड़े, "फिर आप कैसे कहते हैं कि अखबार में जान नहीं है !"

वकील साहब को झेंपना पड़ा।

अब एक दूसरे साहब की सुनिये। काफी विद्वान हैं। समझदार हमने जान-बूझकर नहीं कहा। जब भी मिले एक ही वाक्य बोले, "तुम्हारे पत्र में कुछ नहीं निकलता।"

"आप कहें तो नाम ही 'कुछ' रख दूं। फिर तो 'कुछ' निकला करेगा।" हमने एक बार उत्तर दिया।

"अरे भाई, यह मतलब नहीं। मेरा आशय है कि कुछ मतलब की रचनाएँ नहीं निकलतीं।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्पादक की मुसीबत

"क्या चाहते हैं आप ?"

"यही कुछ मतलब की रचनाएँ।"

"किस मतलब की, नाम तो लीजिये !"

"भई, यही मतलब की रचनाएँ।"

"कमाल है ! अपने मतलब की रचनाएँ आप ही लिख दिया करें।"

"भई, लिख तो नहीं सकते, समय ही नहीं है। हमारे मतलब को समझने की आप कोशिश कीजिये न !"

"हमारा विश्वास है कि आपके मतलब को भगवान भी नहीं समझ सकता।" हमने हारकर कहा और खिसक दिये।

एक दूकानदार ग्राहक बोले, "भाई, तुम्हारे अखबार को तो मैं आते ही रद्दी की टोकरी में फेंक देता हूँ।"

"क्यों, क्या उस समय आपके पास और रद्दी नहीं होती ?"

"क्यों नहीं होती, मगर तुम्हारा अखबार भी तो पढ़ने लायक नहीं निकलता।"

"कैसे जाना कि पढ़ने लायक नहीं निकलता, रद्दी की टोकरी में तो आते ही फेंक देते हो।"

"बात तो ठीक कहते हो तुम।"

"हाँ, अब पढ़कर फेंका करो।"

कुछ आलोचक ततैया-वंश के कुलदीपक होते हैं जो बारहों महीने डंक मारते रहते हैं। कभी कहते हैं कि सिवाय दहेज और वेश्या के आप कोई सामाजिक समस्या नहीं लेते। अब इन्हें कौन समझाये कि दहेज-समस्या के सुलझने से ही समाज की आधी से अधिक समस्याएँ सुलझ जायेंगी। कभी कहते हैं कि तसवीरें ही तसवीरें निकलती हैं तो कभी टोकते हैं कि चित्र बहुत कम निकलते हैं। जो कभी ग्राहक नहीं बनते वे पत्र को विज्ञापन से भरा बताते हैं। एक साहब मिलते ही फूटे, "पिछले माह का पत्र किसी काम का नहीं निकला।"

"क्यों ?"

"मैंने अपने कुंआरे भाई का विज्ञापन भेजा था। न तो वही छपा और न मेरी भेजी हुई कविता।"

"ओह !" मैंने आश्वासन दिया, "मैं कोशिश करूँगा कि इस मास आपकी दोनों रचनाएँ छप जाएँ।"

आलोचक-समूह को छोड़कर लेखक-झुंड की ओर बढ़िये। एक कुमारी आयीं। क्या कहने शृंगार-साधन के ! हम अपने गरीबखाने की ऐन चौखट पर नेकर-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनियान पहने पड़े थे, जैसे केले के छिलके पर अभी-अभी फिसले हों।

"सम्पादकजी कहाँ हैं ?"

"कहीं गये हैं।"

"घर तो यही है ?"

"बिलकुल।"

"मुझे काम था उनसे।"

"कहिये।"

"एक रचना देनी थी उन्हें।"

"मुझे दे दीजिये, मैं दे दूँगा उन्हें।"

"लेकिन मुझे छपवानी थी।"

"इतना तो वे समझ जायेंगे।"

"आप मेरा आशय नहीं समझते।"

"दिखाइये तो सही, अगर आप उचित समझें।"

हमने रचना पढ़ी। 'आँसू' के कई छन्द थे। हमने पीड़ा और वेदना की उस निराकार प्रतिमा से कहा, "जयशंकरप्रसादजी, नमस्कार। इतने वर्षों से आप कहाँ थे और यह महिला का चोला कब से धारण कर लिया ?"

"आप बड़े बदतमीज हैं ! इसीलिए मैं अपनी रचना आपको नहीं दिखाना चाहती थी, सम्पादकजी इसे कभी न पहचान पाते।" सम्पादक को मूर्ख समझने वाली उस कुमारी ने कागज़ को हमसे छीना और एक ओर लपक दी।

एक और लिक्खाड़ आये, बोले, "एक कहानी लाया हूँ, देख लीजियेगा।"

हमने कहानी ले ली और देखने में तनिक देर लगा दी। लिक्खाड़ बोले, "देख लीजिये कागज़ के एक ओर ही लिखी है।"

"यदि आप कागज़ के किसी ओर भी न लिखते, तो अधिक अच्छा था।" हमारे मुँह से निकला।

कुछ दिन बाद यही कहानीकार फिर आए। शक नहीं कि कहानी मोती जड़े अक्षरों में थी किन्तु हमें विवश हो कहना पड़ा, "आपके धैर्य और साहस को बधाई ! वरना प्रेमचन्द की इस लम्बी कहानी की कोई नकल कर सकता है ?"

एक प्रसिद्ध सम्पादक का अनुभव हमें भी हुआ। एक कवि महोदय आये। हमने कविता पढ़ी और कवि से प्रश्न किया, "आप रस जानते हैं ?"

"जी हाँ, नमकीन, मधुर आदि खटरस प्रसिद्ध हैं, वैसे हाथरस और बनारस भी हैं।" कवि मुसकराये।

"उचित है, अलंकारों के विषय में आपका ज्ञान कितना है ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"एकदम पूर्ण। आज ही धर्मपत्नी के लिए कुंडल बनवाये हैं। पुराने अलंकार झुमका, झमेल, पहुँची, गुलूबन्द आदि मुझे पसन्द नहीं हैं। साहित्यालंकार और विद्यालंकार भी नहीं जमते। मुझे तो आधुनिक टौप्स, आर्मलेट, कंगन, पैंडिल ही रुचते हैं।"

"कविता में इनके प्रयोग के बारे में कुछ कहिये।"

"देखिये, एक पुराना गीत है, 'झुमका गिरा रे बरेली के बाजार में'; और एक आज का गीत है 'खनके कंगना, बिंदिया हंसे, आयेंगे अंगना हमरे सजना, खनके…"

"भाव के विषय में ?"

"अब तो मिट्टी से लेकर सोने तक के भाव चढ़ गये हैं। एक समय था जब रुपये की छत्तीस सेर बेझड़ आती थी और सवा सेर घी। आजकल भारतीय जनता को आटेदाल का भाव मालूम पड़ रहा है।"

"ठीक, छन्द तो समझते ही होंगे ?"

"नाम सुना है मैंने कहीं !"

"अवश्य सुना होगा, जैसे स्वच्छन्द और छलछन्द।" हमने कहा और चुप हो गये क्योंकि उन्हें पसीने आने के अतिरिक्त कुछ भी न आता था।

एक अन्य कवि ने सादर निवेदन किया, "ललकारे की तुक बता दीजिये, सम्पादकजी !"

हमारा मूड बड़े अधिकारी की तरह ऑफ था किन्तु विनम्रता-सप्ताह की टोन में धीरज धरकर कहा, "रतनारे लगा लीजिये।"

"लगा ली यह तो।"

"कजरारे भी है।"

"जी, यह भी लिख ली।"

"तो फिर हारे-मारे हत्यारे जारे…" हमने 'हत्यारे ज़ारे' दाँत भींचकर कुछ इस ढंग से कहा कि कवि महोदय तुरन्त एबाउट टर्न हो गये।

एक नाटककार से भी पाला पड़ा। तीन अंकों में काफी स्याही बर्बाद की थी। एक दिन रास्ते में हमें पकड़ लिया, "तो कब निकाल रहे हैं उसे ?"

"भाई, एक अंक निकाल दूं तो बुरा तो न लगेगा आपको ?"

"जिस समय चाहें आप किसी भी अंक को निकाल दें, मुझे कोई मलाल न होगा।"

"सुबह मैं चाहता हूँ कि पहला अंक निकाल दूं, दोपहर को दूसरा अंक निकालने की इच्छा करती है और शाम को तीसरा अंक बर्दाश्त नहीं होता।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतना कह हम नाटककार को असमंजस में छोड़ एक ओर बच निकले।

इनके अतिरिक्त और भी प्राणी हैं जो चारों ओर मंडराते रहते हैं और अपनी किस्म के तूफान मचा देते हैं। स्थानीय मासूम, सुन्दर, किंचित् निर्लज्ज देवियाँ कुर्सियाँ आ तोड़ती हैं जो निरन्तर मुसकराती हैं और अपनी स्पष्ट लिखी रचनाओं को कम्पोज कराकर ही पीछा छोड़ती हैं। संचालकों के रिश्तेदार अलग होते हैं जो पैदा तो (शक्ल और अक्ल से) जूते गाँठने को होते हैं मगर हमारी सहायता से कवि और कथाकार बनना चाहते हैं। कितने ही ढक्कनसिंह निकल आते हैं जो कुमारी लतिका के नाम से सहायक सम्पादक को मूर्ख बनाते रहते हैं।

अस्तु, एक दिन श्रीमतीजी रूठ गईं—न भोजन, न बातचीत। रात के बारह बजकर बारह मिनट पर बर्स्ट हुईं, "इस बुढ़ापे में आपको इश्क़ सूझा है। कमर झुक जाने पर धनुष तोड़ने चले हो ?"

"क्या मतलब ? कसम ले लो जो तुम्हारे सिवा हमने किसी से भी इश्क़ किया हो।"

"बस-बस, कसम खराब मत करो, मुझसे कितना इश्क़ किया है, यह मैं जानती हूँ। पहले यह बताओ कि आपको सूझा क्या ? अब लिखा-पढ़ी पर भी नौबत आ गई !"

बड़ी खुशामदों से श्रीमतीजी ने वह पत्र दिया जो उन्होंने धोबी को डालते समय कुर्ते की जेब से निकाल लिया था।

"अरे भई, यह तो एक लड़की की प्रार्थना है, अपनी रचना छपवाना चाहती है।" हमने लाख समझाया किन्तु श्रीमतीजी की समझ में खाक न आया। उन्होंने रोना आरम्भ किया और हमने झोंकना।

हम सोचते हैं कि बीस साल बाद जब क्लर्की से रिटायर होंगे तो पनवाड़ी की दूकान ही कर लेंगे, सम्पादक की मुसीबतों से तो बच जायेंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आँखें आयीं

आँखें आने का व्यावहारिक ज्ञान जब हमें मिला तो स्मृति की गेंद लेकर हमने कबीर की ओर बाउलिंग की। कबीर ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए छक्का मारा कि जब पानी को जलाकर दूध पाया जाता है तो दुनिया उसे 'खोया' कहती है। रंगी हुई को 'नारंगी' कहती है और द्रुत गति से दौड़ने वाली वस्तु का नाम 'गाड़ी' है। किन्तु हमने गेंद को बीच से रोककर चौका ही रहने दिया, कारण कबीर साहब यह बताने में असमर्थ रहे कि जब आँखें शरीर से जाने का उपक्रम करती हैं तो मूर्ख दुनिया इसे 'आँखें आना' पुकारती है।

जैसे ही हमने चौखट पर पैर रखा तो श्रीमतीजी से मुठभेड़ हुई, वे आँखों पर नज़र डालते ही चीखीं, "हाय, तुम्हारी तो आँखें आ गई हैं, दोपहरी में घूमे जान पड़ते हो।"

"तुम्हारी माताजी की कसम जो हम तनिक भी दफ्तर से बाहर निकले हों।" कहते हुए ज्यों ही हम अन्दर के कमरे में पहुँच कपड़े उतारने में लगे कि घर-भर में शोर मच गया, "पिताजी की आँखें आ गईं, पिताजी की आँखें आ गईं" और श्रीमतीजी आँगन के एक कोने में खड़ी हुई, घर के सभी लघु सदस्यों को एकत्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर घोषणा कर रही थीं, "पिताजी के पास तुममें से कोई नहीं जायेगा, उनकी आँखों की ओर कोई नहीं देखेगा। वे पढ़ रहे हों तो जिसकी नजर पड़े तुरन्त किताब छीन ले। जो ऐसा नहीं करेगा उसे सुबह का चाय-टोस्ट बन्द।"

हमें बड़ा क्रोध आया। हमारी आँखें गई ही कहाँ थीं जो आ गईं। फिर भी श्रीमतीजी से हमने इस घोषणा का अर्थ जानना चाहा तो उन्होंने कार्यवाहक मंत्री की भाँति कोई उत्तर नहीं दिया, जैसे वे हमारे छोटे मुँह लगना न चाहती हों। साथ ही सख्त ताकीद कर दी, "आप कहीं घूमने नहीं जा सकते।"

रात को पता नहीं क्या चीज़ गरम की गई। माताजी के हज़ारों उपदेशों के बाद श्रीमतीजी ने उस उष्ण-द्रव से हमारी आँखों को धोना क्या नहलाना आरम्भ किया। कुछ क्षणों में ही हमने अपनी नाजुक आँखों को उबले हुए आलू की भाँति अनुभव किया जिनके पलकों के छिलके चटक गये हों। बड़ी मुश्किल से माताजी और श्रीमतीजी को रोका और तय किया कि अगले दिन से अंग्रेज़ी मलहम लगायेंगे।

हम भोर ही टहलने जाया करते थे किन्तु उस दिन हमें नहीं जाने दिया गया। आधुनिक पति की आचरण-संहिता के अनुसार बहुत खुशामद की तो छः बजे दया-पूर्वक हुक्म मिला कि अगर कहीं धूप का चश्मा मिल जाए तो आधा घंटे टहल आओ।

विवश हो पड़ोसी का द्वार बड़ी देर तक खटखटाया। "कौन है बे ?" की कर्कश आवाज़ के साथ वृद्ध मुहर्रिर आँख मीड़ते निकले। हमने अपनी अर्ज पेश की तो निगाह उठाते हुए बोले, "आँखें कैसे आ गईं, दोपहरी भर घूमे होगे !"

"घूमे तो नहीं।" हमने उत्तर दिया।

"तो लगातार सैकिण्ड शो देखे होंगे।" उन्होंने जिज्ञासा प्रकट की।

"जी नहीं, सैकिण्ड शो भी नहीं देखे।" बिना यह ध्यान दिलाये कि लगातार सैकिण्ड शो देखने से उनका क्या आशय है, हमने जिज्ञासा शान्त की।

"तो रात में देर-देर तक पढ़ते रहे होगे ?" उन्होंने अनुमान लगाया।

"नहीं, पढ़ते तो नहीं रहे।" हमने उनका अन्दाज फिर गलत सिद्ध किया।

"तब तो फिर कंकड़ियाँ अवश्य पड़ गईं होंगी !" और जैसे उन्हें विश्वास हो गया कि अब की बार उनकी बात बिलकुल सही थी।

"नहीं, कंकड़ियाँ भी नहीं पड़ीं।" इस बार बात काटते हुए हमें सचमुच ही दुःख हुआ।

"तो फिर आँखें कैसे आ गईं ?" चश्मा लड़के के हाथ से लेकर हमारी ओर बढ़ा हताश होकर बोले, "कनपटी पर चूना लगाओ।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आँखें आयीं

"पता नहीं कैसे आ गईं, बिना बुलाये।" हमने कहा नहीं और चश्मा ले नासिका-पुल पर टिका टहलने को चल दिये।

मुश्किल से गली से बाहर आये होंगे कि एक प्रोफेसर मिले और छूटते ही बोले, "आज एकाएक धूप का चश्मा कैसे ? कितने का खरीदा ? ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी ?"

"जी, मेरा नहीं है।" हम उनके प्रश्नों का पूरा उत्तर भी न दे पाये थे कि उन्होंने बड़े सहज भाव से कहा, "कहाँ से उड़ा दिया ?"

"उड़ाया नहीं है···" हम इस बार भी उत्तर पूरा न कर पाये कि उन्होंने पुन: प्रश्न दागा, "किससे माँग लाये हो ?"

अब हमें क्रोध आ गया, "लाये तो हम अपने पड़ोसी से हैं, लेकिन आप देख लीजिये कि आपका तो नहीं है !" और हमने उन्हें चश्मा उतारकर देना चाहा तो तपाक से बोले, "अरे, तुम्हारी तो आँखें आ गई हैं !"

'हाँ, आँखें आ गई हैं।" हमने क्रोध को ज़ब्त किया।

"कैसे आ गई ?"

"पता नहीं कैसे आ गईं ?"

"कब आयीं !"

"कल दोपहर।"

"कोई लापरवाही की होगी।"

"ऐसी तो कोई बात नहीं की।"

"फिर कैसे आ गईं ?"

"पता नहीं।"

"नहीं जी, जरूर लापरवाही की होगी।"

"ऐसी तो कोई बात नहीं की, हमें खूब याद है।"

"फिर कैसे आ गईं ?"

"पता नहीं।"

"धूप में तो नहीं घूमे ?"

"नहीं।"

"रात को देर तक तो नहीं जागे ?"

"नहीं।"

'आँधी में निकल पड़े होंगे और आँखों में कंकड़ियाँ गिर गई होंगी।"

"आँधी तो पिछले हफ्ते से नहीं आयी।"

"दफ्तर का समय क्या है ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"दस बजे का।"

"सुबह का कर लो।"

"समय कैसे बदला जा सकता है ?"

"छुट्टी ले लो।"

"हाँ, छुट्टी ले लूँगा।"

"कई दिन की लेना।"

"जी, ऐसा ही करूँगा।"

"जब तक बिलकुल ठीक न हो जाओ, घर से मत निकलना।"

"नहीं निकलूँगा।"

"बिलकुल; आँख हैं तो जहान है।"

"आप ठीक कहते हैं।" हमने कहा और याद किया कि प्रोफेसर 'जान है तो जहान है' का कभी प्रयोग नहीं करते। किशनुआ की टाँग में मोच आ गई थी तो उससे कहा था कि टाँग है तो जहान है। इसी समय उनके कोई परिचित आ गये और हम व्यर्थ के प्रश्न-परामर्श से जान छुड़ा आगे बढ़े। चौराहे तक ही पहुँचे होंगे कि पिताजी के एक बुजुर्ग शतरंजी मित्र मिल गये। देखते ही उन्होंने भी आँखों के भूत, भविष्य और वर्तमान की बखिया उधेड़कर रख दी। जैसे ही हम मुड़े तो गरम हो उठे, "अजीब अहमक आदमी हो, पूरी बात भी नहीं सुनते। क्या दवा करोगे ?"

"जी, अंग्रेज़ी मलहम लगाऊँगा।"

"वही बेमतलब के खर्च !" बुजुर्ग महोदय ने अनुभव सामने रखा, "नीम का धुआँ दो, नीम के पानी से धोओ और नीम बाँधो।"

गनीमत रही कि नीम खाने को नहीं कहा। अनमने मन से आज्ञा शिरोधार्य कर आगे बढ़े। तभी कोई उनका साथी उत्तर से दातौन करता हुआ नीम की शाखाएँ लिये आ निकला। फिर क्या ? उन्होंने उससे नीम की शाखाएँ लीं, हमारी जेब से रूमाल निकाला और हमारे ना-ना करने पर भी हमारे माथे पर बाँध दी। हमें ऐसा लगा कि माथे पर नीम उग आया है जो आँखों पर होता हुआ पाँवों तक फैल जायेगा। जंगली बने हम क्या टहलने जाते अतः लौट पड़े। हम रूमाल को खोल भी नहीं सकते थे क्योंकि वे बुजुर्ग हिदायतें देते हुए रेल की दूसरी पटरी के समान हमारे साथ ही आ रहे थे। हम जब घर की गली की ओर मुड़े तब एक और हितैषी-बन्धु मिले और छूटते ही आँखों का सम्पूर्ण इतिहास पलट डाला। हमने भी संक्षिप्त में अपना रोना रोया। ये हितैषी-बन्धु पश्चिमी सभ्यता की नई रोशनी में पले थे और पुराने किस्म की बातों से घृणा करते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दन से बोले, "किस बेवकूफ की बातों में आ गये, यह क्या सिर पर पेड़ उपजा रखा है ?"

हम कुछ कहें-कहें कि बुजुर्ग उस हितैषी-बन्धु पर टूट पड़े, "तुम बड़े नालायक किस्म के जानवर मालूम पड़ते हो !" और दोनों में जो तू-तू मैं-मैं हुई तो हम चुपके से निकल आये।

भोजन का समय हो चला। थाली सामने आयी, पहला ग्रास लिया तो नमक गायब !

"आज साग में नमक ही नहीं डाला है।" हमने शिकायत की तो श्रीमतीजी बोलीं, "गौर कीजिये, न इसमें खटाई है और न मिर्च, नमक की तो बात ही क्या। बस उबला हुआ लौकी है। रात अगर पड़ोसिन के बताने से पहले ही भोजन न बना लिया होता तो रात भी यही हाल होता।"

क्रोध में हमने थाली एक ओर फेंक दी (सरका देना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि थाली में से कुछ न गिरा था) तो श्रीमतीजी ने आश्वासन दिया, "मीठा चाहे जितना खा सकते हो, घी-बूरा खाओ या हलवा, मगर नमक किसी भी शर्त पर न मिलेगा।"

हमें पुन: क्रोध भड़का, "क्या तुम नहीं जानतीं कि दावतों में भी, बड़ों के डाँटने-पीटने पर भी, हमने बचपन से ही मीठी तश्तरी और दही-बूरे से हाथ नहीं लगाया ?"

"मैं खूब जानती हूँ। मुझे यह भी मालूम है कि मेरे मायके से जब भी लड्डू आते हैं तुम्हारे लिए अलग से मठरियाँ आती हैं। लेकिन इस समय मैं भाँवरों के वक्त-सी विवश हूँ।"

जब क्रोध से काम नहीं चला तो हमने नरमी का प्रयोग किया, "जरा हमसे आँखें तो मिलाओ।"

"नहीं, इस समय नहीं। मेरी भी आँखें आ जायेंगी।"

जब प्रेम भी चारों खाने चित हो गया तो हमने बंगलौरी साड़ी का लोभ देना चाहा मगर तभी माताजी आ गईं और बैठकर हमें कहीं खाना खिलाया जिसे हम सात जन्म तक न सूँघते।

दोपहर को इस ज़ोर से आँखें आयीं कि पलक न उठा सके। इससे एक लाभ तो हुआ कि न घर से बाहर निकलेंगे और न परिचित-बन्धु प्रश्न पर प्रश्न पूछ-कर हमारी छूँछ निकालेंगे। किन्तु दो दिन बाद ही हमारी यह धारणा चीन-पाक पर विश्वास-सी निराधार निकली। लोग हमारे आराम के कमरे में आते, अखबार उठाते और आँखों की उधेड़बुन में लग जाते, हम मरे मन से उत्तर देते। एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुसीबत यह कि इन हितैषियों के कारण श्रीमतीजी हमारे पास न फटकती थीं।

एक महाशय को तो सहानुभूति दिखाते-दिखाते ऐसा आराम मिला कि नींद आ गई। तीन घंटे हो गये मगर जागने का नाम नहीं। खर्राटे ऐसे कि पहली बार तो घरवालों को शक हो गया कि हमारे कमरे में इंजिन शंटिंग कर रहा है।

शाम हो गई, उन्हें जगाया तो आँख खोलते ही बोले, "आँखें कैसे आ गईं ?"

"बस, आ गईं।" हँसी रोक हमने उत्तर दिया।

"आँखें जाने का अन्देशा तो नहीं है ?"

"ऐसी तो कोई बात नहीं दीखती।"

"वैसे जा भी सकती हैं।"

"हाँ, ऐसा भी हो सकता है।" दूसरा उत्तर हमें सूझा ही नहीं।

"भाई, कष्ट कितना ही पा लेना पर आँखें मत जाने देना, हाथ-पैर की बात दूसरी है।" उन्होंने एक जंभाई ली और जेब में हाथ डाले निकल गये।

एक महाशय और भी अजीब निकले। घंटे-भर 'अन्धे होने के दुष्परिणाम' पर बोलते रहे और अन्त में कहा, "सिगरेट पिलवाओ।"

"सिगरेट तो हम पीते नहीं।"

"पान ही खिलवाओ।"

"पान भी नहीं खाते हम।"

उपदेश-सा देते हुए बोले, "डॉक्टर क्या उन दवाओं को खुद भी खाता है जिन्हें मरीजों को देता है। हमारी बात और है, बुरा नहीं मानते, मगर दूसरे बुरा अवश्य मानेंगे। इसलिए लाओ, पान-सिगरेट का इंतजाम कर दूँ।"

और हमारी नहीं-नहीं के बावजूद उन्होंने हमारे सिरहाने से एक रुपये का नोट लिया और स्वयंसेवक की तरह 'अभी आया' कह फुर्ती से चले गये।

कहना न होगा कि उन्होंने पुनः दर्शन नहीं दिये।

एक हमारे बालापन के मित्र आये जिन्होंने अब तक के जीवन में केवल तम्बाकू बेचना सीखा था। दरवाज़े से ही आवाज़ लगा दी, "क्यों भाई, आँखें बुला लीं।" और घर के लोग देखें न देखें, वे आँगन को पार कर हमारे कमरे में।

"अरे भाई, हमने सुना था कि तुम्हारी आँखें आ गईं।"

"ठीक ही सुना था आपने।"

उन्होंने हमारी आँखों में आँखें डाल बड़े गौर से देखना आरम्भ किया। तम्बाकू-सी लाल उनकी आँखें देख हमने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

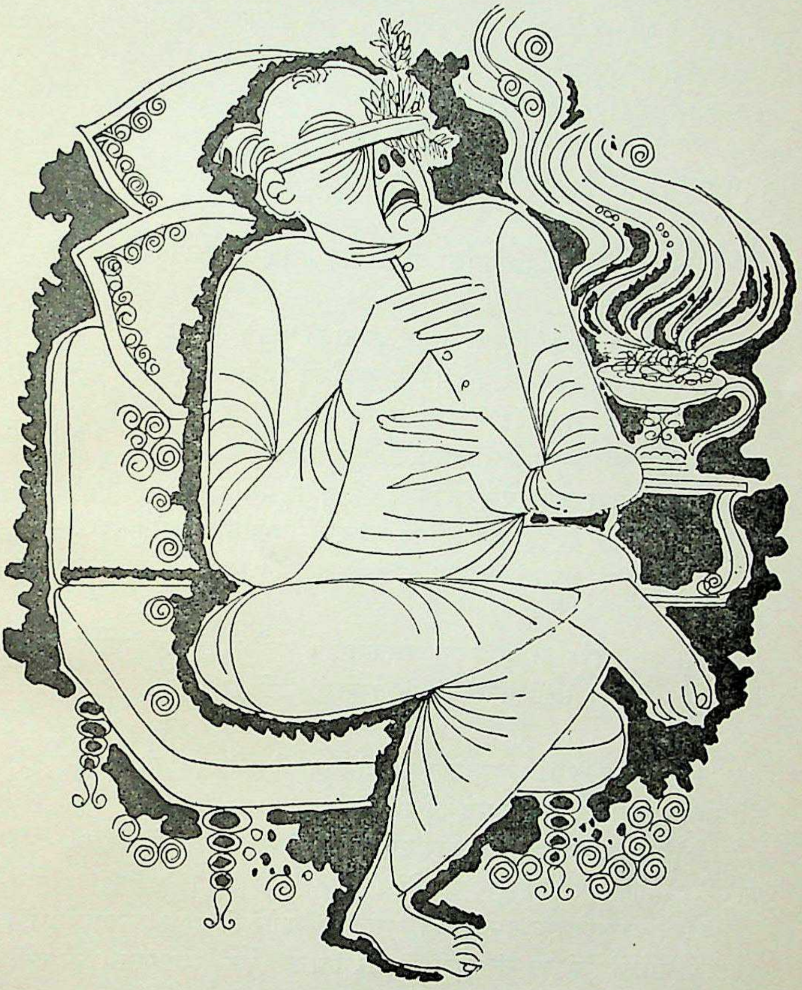

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"अरे, दिखाओ तो सही, बन्द भी कर लीं। तुमसे तो अधिक ही नाज खाया है, साल-भर बड़ा हूँ, कुछ अनुभव की ही कहूँगा।"

हमने आँखें खोल दीं। वे क्षण-भर बाद विस्मित हो चीख पड़े, "भई, ये तो तुम्हारी आँखें आ गई हैं।"

हम हँसी न रोक सके।

"वाह, तुम्हें विश्वास नहीं होता। मैं दावे से कहता हूँ कि तुम्हारी आँखें आ गई हैं।" फिर तुरन्त साँस लेकर बोले, "तुम खुद ही देख लो अपनी आँखों को।" और उन्होंने जबर्दस्ती हमारी आँखों के सामने आईना कर दिया, "लो, अब देखो।"

हमारे उत्तर देने से पहले वे फिर बोले, "कहो, अब तो हुआ विश्वास, मानते ही न थे हमारी बात।"

"जी हाँ, मान गये।" विवश हो हमें कहना ही पड़ा।

रात के दस बजे हम आराम से पड़े थे कि हाँफते हुए पिताजी आये, "तुम्हारा कौन-सा साल चल रहा है, बेटा?"

हमने बड़ी मुश्किल से हिसाब लगाया, "पेंतीसवाँ।"

"गजब हो गया, शनिश्चर का प्रकोप है। गंगा ज्योतिषी को तुम्हारी जन्म-पत्री अभी दिखाकर आ रहा हूँ। पेंतीसवें वर्ष तुम्हें नेत्र-हानि का योग पड़ा है।"

हमें मन ही मन अपने भोले पिता पर हँसी आ गई, "क्या ज्योतिषी ने स्वयं ही बताया है?"

"बिलकुल, बड़ा पहुँचा हुआ ज्योतिषी है। ग्रहों का हिसाब लगाकर स्वयं ही बताया। मैंने तो सिर्फ़ इतना कहा कि तुम्हारी आँखें आ गई हैं।"

"फिर?"

"मैं उसे जाप के लिए कह आया हूँ। दो-तीन दिन में ठीक हो जायेंगी। हाँ, उसे सवा रुपया और पाँचों कपड़े देने पड़ेंगे।"

"कोई आवश्यकता नहीं। आप उन पंडितजी से कह आइये कि हम बिना जाप के ही शनिश्चर को प्रसन्न कर लेंगे।"

आँखों को आये एक सप्ताह हो चला था। आँखें ठीक होती जा रही थीं। आँखों के बारे में किये जा रहे प्रश्नों के कारण घर भर की दशा पतली हो चली थी। इन हितैषियों के गिने-चुने प्रश्नों के उत्तर हमें ही, श्रीमतीजी, माताजी और पिताजी को भी देने पड़ते थे। घबराकर हमें एक उपाय सूझा और हमने आँखों के बारे में सभी सम्भावित प्रश्नों के उत्तरस्वरूप निम्नलिखित जानकारी-पत्र तैयार किया—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आँखें आयीं

१—आँखें आ गयी हैं।
२—आँखें आये एक सप्ताह हो चुका है।
३—पता नहीं, कैसे आ गईं ?
४—धूप में नहीं घूमे। रात को देर तक नहीं जागे। अधिक देर तक नहीं पढ़े। आँखों में कंकड़ियाँ नहीं गिरीं।
५—दवा घर की चल रही है।
६—अंग्रेजी मलहम का भी प्रयोग किया है।
७—नीम के पानी से भी धो ली हैं।
८—जी हाँ, इस हकीम से सलाह ले ली है।
९—क्यों नहीं, इस डॉक्टर को भी दिखा लिया है।
१०—जी हाँ, आई हास्पिटल भी हो आये हैं।
११—अब आँखें ठीक हो रही हैं।
१२—कुछ लालामी बाकी है।
१३—दो-तीन दिन में बिलकुल ठीक हो जायेंगी।
१४—जी हाँ, आँख हैं तो जहान है।
१५—छुट्टी ले रखी है।
१६—दफ्तर जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।
१७—जब तक निरोग नहीं हो जाऊँगा, दफ्तर नहीं जाऊँगा।
१८— जी नहीं, घर से बाहर नहीं निकलता।
१९—जी नहीं, नमक-खटाई-मिर्च कतई नहीं खाता।
२०—जी हाँ, घी-बूरा और हलवे से ही पेट भरता हूँ।
२१—पढ़ना कतई बन्द कर रखा है।
२२—आप ठीक कहते हैं, अखबार भी नहीं पढ़ता।
२३—जी हाँ, तबीयत नहीं मानती तो औरों से सुन लेता हूँ।
२४— सच कहता हूँ, जब तक आँखें बिलकुल ठीक नहीं हो जायेंगी एक अक्षर नहीं पढ़ूँगा।
२५—हाँ, कोई खास तकलीफ नहीं है।
२६—चिन्ता की कोई बात नहीं है।
२७—नहीं जी, आँखें जाने का कोई डर नहीं।
२८—जी, शुक्रिया।
२९—आप बेफिक्र रहें।

सुभीते के लिए इसकी चार प्रतियाँ कराईं। श्रीमतीजी, माताजी और पिता-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जी को एक-एक प्रति दे दी। एक प्रति अपनी चारपाई के पास औसत आदमी की ऊँचाई पर दीवार पर लटका दी। अब जो भी कोई आँखों के विषय में जिज्ञासा प्रकट करता तो उसके सामने खुले ताश-सी यह प्रति सामने कर दी जाती। दो आदमी भी एक साथ आये तो उन्हें अलग-अलग प्रतियाँ थमा दी गईं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि हमसे सहानुभूति रखने वालों की संख्या एकदम कम हो गई और घर में सभी ने चैन की साँस और नींद ली।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह दिन आने वाला है, जब....

जमाना कितना बदल गया ! देखते-देखते समाज और राजनीति शीर्षासन लगा गये। पहले लोग सिर मुँड़ाते थे और मूँछें रखते थे; अब जुल्फें रखते हैं, मूँछ मुँड़ाते हैं। पहले कमीज में बटन लगाते थे और पाजामे में नारा पड़ता था । अब हमने खुद देखा है कि कमीज में नारा पड़ता है और पाजामे में बटन लगते हैं । अंग्रेजी की दासता ने जोर मारा तो 'माँ' 'मम्मी' में बदल गई और 'बाप' 'डैडी' हो गये (हमें मम्मी और डैडी दोनों से मौत का रिश्ता नज़र आता है) । जाट अध्यापक होने लगे और ब्राह्मण सेनापति । लोग धारोष्ण दूध की जगह डिब्बे का पाउडर मुँह लगाने लगे और घी के स्थान पर 'सुनहरी तीर' खाने लगे । पुरुष पुनः धोती पहनने लगे और स्त्रियाँ पैंट । संक्षिप्त में किसी लोक-क़वि के अनुसार—

पहले घी से सब्जी बनती थी,
अब सब्जी से घी बनता है ।
पहले औरत जनती थी,
हर मर्द आज का 'जनता' है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और तो और, कल ही की बात है कि देखते-देखते गेहूँ सोलह से साठ हो गया । इसी प्रकार चना, बाजरा, गुड़, चीनी और चावल का भाव आसमान छूने लगा । भावों से भी ज़माना बदला है; बल्कि कुछ विचारक तो सभी परिवर्तनों की जड़ भावों को ही मानते हैं । अतः हमारा विश्वास है कि वह दिन शीघ्र आने वाला है, जब—

मेहमान गेहूं या आटा लेकर आया करेगा

आजकल बहुत से घरों में उस मेहमान को स्थान नहीं मिलता जो बिस्तर लेकर नहीं चलता । वह चलन भी जल्दी चलेगा जब मेहमान से निम्नलिखित वार्तालाप हुआ करेगा—

"कहो मेहमान, आ गये !"

"हाँ, जरा रिक्शा से बिस्तरा उतरवा लो ।"

"बस, बिस्तरा ही ?"

"नहीं, आटा भी है गेहूँ का ।"

"आपने ठीक किया । हमारे यहाँ दिखावा या बनावट नहीं है । कुछ लोग यह करते हैं कि मेहमान तो बाजरा या बाजरे का आटा लाता है मगर वे गेहूँ की रोटियाँ खिला देते हैं । हम तो जो अतिथि लाता है वही खिलाते हैं । यही हमने लड़कियों को भी सिखाया है और इसीलिए हम अतिथि को भगाने की कोशिश नहीं करते ।"

या फिर शादी के समय अन्य दहेज तय हो जाने के बाद लड़के वाला धीमे से कहा करेगा, "और बीस क्विन्टल गेहूँ !"

"बीस क्विन्टल !"

"और क्या, लड़का इंजीनियर है । पाँच-छः क्विन्टल गेहूँ तो खौमचे वाला ले मरता है । देख लीजिये वह तो आपकी लड़की सुन्दर और सुशिक्षित है, तब यह माँग है वरना लड़की वाले पचास-पचास क्विन्टल गेहूँ देने को आ रहे हैं ।"

ब्राह्मणकुमार किसी हरिजन को बाप बनायेगा

शिक्षा कितनी महँगी हो गई है, सभी जानते हैं । किन्तु हरिजन छात्रों को सुविधा है कि फीस नहीं देनी पड़ती । छात्रवृत्तियाँ भी मिलती हैं । कुछ परिस्थितियों में तो पास न होने पर भी यह सुविधाएँ समाप्त नहीं होतीं । अतः वह दिन शीघ्र ही आयेगा जब कोई ब्राह्मणकुमार किसी हरिजन से हाथ जोड़कर विनय करेगा, "आह, मेरे अभिभावक शिक्षा का खर्च नहीं उठा सकते । गलती से, जिसमें मेरा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोई दोष नहीं है, मैं एक ब्राह्मण के घर पैदा हो गया हूँ। अगर कृपा कर आप मेरे बाप बन जाएँ तो मैं अपनी शिक्षा पूरी कर लूँ। आप चाहें तो मेरे अब तक के उत्तम शिक्षा-परिणामों की जाँच कर सकते हैं।"

कन्या परिवार-नियोजन में प्रवीण होगी

यह विश्व-परिचित तथ्य है कि भारत में आबादी इस कदर बढ़ रही है कि जीवन-साधन कम पड़ते जा रहे हैं। सरकारी विशेषज्ञों के अनुसार परिवार-नियोजन की घोर आवश्यकता है। आज का युवक शादी करने से घबराता है, क्योंकि वह परिवार को वहन करने में स्वयं ही असमर्थ पाता है। अतः वह दिन आनेवाला है जब वर महोदय अन्य परीक्षण-निरीक्षण के बाद कहा करेंगे, "मैं अनियोजित बच्चे पैदा नहीं करना चाहता। मेरी योजना शादी के दस वर्ष बाद संतान उत्पन्न करने की है। जानना चाहता हूँ कि आपकी सुपुत्री मुझसे सहमत है या नहीं ?"

"आप निश्चिन्त रहें। हमने सिलाई, कढ़ाई, बुनाई और भोजन बनाने के अतिरिक्त परिवार-नियोजन की शिक्षा भी पूरी-पूरी दिलाई है। आप चाहें तो प्रथम श्रेणी का प्रमाण-पत्र दिखा सकते हैं।"

"लेकिन मैंने तो सुना था कि···"

"नहीं-नहीं। पहली साल फेल हो गई थी मगर इस साल उसने कड़ा परिश्रम किया और थ्योरी में प्रथम श्रेणी के अंक और प्रैक्टीकल में विशेष योग्यता प्राप्त की।"

छुट्टी का कारण स्वाभाविक प्रसव होगा

नौकरी की प्रतियोगता कठिन से कठिनतर होती जा रही है और नौकरी के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाएँ पुरुषों को मात दे रही हैं। इधर एक और आन्दोलन चल रहा है। समाज के कुछ क्रान्तिकारी नेताओं का परामर्श है कि समाज कुमारी माँ को सम्मान प्रदान करें और इस प्रकार की संतान को वैध सन्तान की मान्यता देकर सभ्य और सुसंस्कृत समाज का सदस्य बनाएँ। अतः वह दिन आने वाला है जब कार्यालयों में अध्यक्ष के सामने अवकाश के लिए कुँआरी महिलाओं के निम्न प्रकार के प्रार्थना-पत्र आया करेंगे—

श्रीमान्,

निवेदन है कि गत सात मास से मैंने गर्भ धारण कर रखा है। डॉक्टर ने मुझे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूरा आराम करने का परामर्श दिया है। अतः मैं कार्य करने में असमर्थ हूँ और चार मास का अवकाश चाहती हूँ। आशा है, आप नियम के अनुसार मुझे चार मास का अवकाश प्रदान करेंगे।

डॉक्टर का प्रमाण-पत्र संलग्न है।

भवदीया
मिस ए० बी० सी०

शकुन्तला दुष्यन्त का शिकार करने निकलेगी

लड़कियों की ऐसी चुस्त पोशाकें चली हैं कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में अनेक स्थानों पर अधिकारियों में चुस्त लिबास पहनने पर पाबन्दी लगा दी है। लड़कों की भी अजीब चुस्त ड्रेस चली है। बाब हेयर्स और पैंट की वजह से कहीं-कहीं तो लड़के और लड़की में अन्तर ही दिखाई नहीं देता। एक बार पुल पर से दो व्यक्ति नीचे कुछ लड़कों का खेल देख रहे थे। एक लड़के की ओर इशारा करते हुए पुल के एक व्यक्ति ने दूसरे से कहा, "वह लड़का कितना अच्छा खेल रहा है !"

"वह लड़का नहीं है, लड़की है।" दूसरे व्यक्ति ने उत्तर दिया।

"आप क्या उसके पिताजी हैं ?" पहले व्यक्ति ने पूछा।

"नहीं। मैं उसकी माँ हूँ।" उत्तर मिला।

जो भी हो, इतना सच है कि तन्दुरुस्त लड़कियाँ (सुन्दर नहीं) चुस्त पोशाक में कुछ अजीब मर्दाना-सी लगती हैं और कुछ सुन्दर-से मरघिल्ले लड़के अजीब जनाने-से। अतः वह दिन भी आनेवाला है जब शकुन्तलाएँ दुष्यन्त के शिकार को निकला करेंगी और तब एक नया कालिदास जन्म लेगा।

'चाय पियो और बाँझ रहो' आदर्श आशीष होगा

आज के भारत में 'दूधो नहाने' का तो प्रश्न ही नहीं उठता। भारत में ऐसे भी भूखंड हैं जहाँ नहाना तो दूर, पीने का पानी भी नहीं मिलता। सिंचाई के लिए पानी का प्रचुर प्रबन्ध न होने के कारण ही आज भारत अन्तर्राष्ट्रीय भिखारी है और उसकी आँखों का पानी मर चुका है। किन्तु दूध में मिलाने के लिए भारत में पानी की कमी नहीं है। हमने अपने ग्वाले से एक दिन स्पष्ट कहा कि हम दूध पीने को लेते हैं, शिवजी पर चढ़ाने को नहीं। ग्वाला जरा भी तो नहीं शरमाया, मुसकराता बोला, "बाबूजी, चाय बनाते समय दूध-पानी के अलग-अलग झंझट से बच जाओगे।" उधर एक दूकानदार से हमने यही निवेदन किया तो वह चौंका, "बाबूजी, असली दूध अब किसे पचता है, मुझे तो ग्राहकों ने अपच की शिकायत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की तो दूध में पानी मिलाना पड़ा।"

आज तो गाय-भैंस क्या, माँ का दूध पीने का रिवाज भी समाप्तप्राय है और ताम्बूल-शिष्टाचार का स्थान चाय पीने-पिलाने ने ले लिया है। आमाशय और जेब कमजोर होने के कारण इतना ही बड़ा सौभाग्य है कि चाय ही पीने को मिलती रहे।

'पूतो फलने' से तो आज खाद्य-मंत्री तक घबराते हैं, अतः वह दिन आने ही वाला है जब बहू-बेटियाँ चरण-स्पर्श किया करेंगी तो बड़ी-बूढ़ियाँ 'दूधो नहाओ और पूतों फलो' के स्थान पर स्पष्ट स्वर में 'चाय पियो और बाँझ रहो' का आशीष दिया करेंगी और बहू-बेटियाँ हर्ष से आँखें भर-भर लाया करेंगी।

छात्र अध्यापक का इण्टरव्यू लेकर दाखिला लिया करेगा

आज के कॉलेज, जो सरकारी नहीं हैं, अनेक कारणों से विद्या-मंदिर के स्थान पर व्यावसायिक-केन्द्र अधिक नज़र आते हैं। जिस विभाग में छात्र कम या बहुत कम दाखिला लेते हैं, उस विभागाध्यक्ष को विभाग बन्द होने की चिन्ता सवार हो जाती है। परिणाम यह होता है कि जो दशा इक्कों के अड्डों पर सवारी की होती है, (सामान को एक इक्के वाला खींचता है तो सवारी को दूसरा इक्के वाला उठा ले जाना चाहता है) वही दशा जुलाई मास में विभिन्न विभागाध्यक्षों के बीच छात्र की हो जाती है। छात्र की आवश्यकता, इच्छा और प्रतिभा का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। अध्यापक कुछ लोभ भी दिलाते हैं और छात्र को अपने विषय की ओर आकर्षित करते हैं। संक्षेप में हम अनुभव करते हैं कि निकट भविष्य में ही वह दिन आनेवाला है जब दाखिले के समय अध्यापक छात्र का इण्टरव्यू नहीं लेगा बल्कि छात्र ही अध्यापक का इण्टरव्यू लिया करेगा और लगभग निम्नलिखित वार्ता हुआ करेगी—

"आप मेरी कितनी फीस माफ़ करा देंगे?"

"पूरी।"

"किताबें?"

"समूचा सैट, परीक्षा तक के लिए।"

"हॉकी की कैप्टेनशिप के लिए कोशिश करनी होगी।"

"करूँगा।"

"अमुक अध्यापक ने कहा है कि छात्र-यूनियन का सेक्रेटरी बनवा दूंगा।"

"मैं प्रेसिडेंट बनवाने का वायदा करता हूँ।"

"अमुक अध्यापक ने मुझे परीक्षा में नकल कराने का आश्वासन दिया है।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"प्रथम श्रेणी दिलवा देना मेरे बाएँ हाथ का खेल है।"

"मैं आपके विषय में दाखिला लेने के लिए तैयार हूँ। बस, एक ही बात और है, थोड़े जेब-खर्च का आप इन्तज़ाम कर दें तो…"

"देखो भाई, इस बारे में मेरा सिद्धान्त स्पष्ट है। यदि मेरे विषय में आप ही अकेले छात्र रहे तो मेरा विभाग आपके जेब-खर्च का भी कुछ इन्तज़ाम कर देगा।"

"शर्त मंजूर है" कहते हुए छात्र उठकर एक अँगड़ाई लेगा और धीमे से कहेगा, "कक्षा में हाजिर तो मैं एक दिन भी न हो सकूँगा।"

"उसे कहने की क्या आवश्यकता थी !" प्रोफेसर भी खड़ा हो जायेगा और उत्तर देगा, "कक्षा में मेरा आना भी कब निश्चित रहता है !…तो फार्म कब भर रहे हैं आप ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लाखों के बोल सहे इस शक्ल के लिए....

यह सूरत-शक्ल भी क्या चीज़ है। सूरत ठीक होने पर प्राचीन काल में मछेरे की लड़की की शादी राजा शान्तनु से हो जाती थी और आधुनिक काल की तितली सैकड़ों प्रतियोगियों को पछाड़कर लालाराम की स्टेनो हो जाती है। किसी लड़के की शक्ल ठीक हो तो माँ-बाप का अधिक लाड़ तो मिलता ही है, बड़ा होने पर लड़की वाले भी उस नालायक के लिए, चुनाव-टिकट के प्रत्याशियों की भाँति टूटते हैं। सुन्दर शक्ल के लिए उन्नति के मार्ग पर लाल झण्डी कभी दिखाई नहीं देती। बदसूरत नारी जब रोती है तो कोई आँख उठाकर देखना पसन्द नहीं करता और जब कोई सुन्दरी टसुये टपकाती है तो जमीन काँप जाती है, आसमान हिल जाता है, रामायण लिखी जाती है और महाभारत खड़े हो जाते हैं। समाचार-पत्र गवाह हैं कि मूर्खा सुन्दरी के लिए युवक अपनी कीमती जान गँवा देते हैं। कौन नहीं जानता कि आलीशान दुकानों पर सुन्दरियों की मुद्राएँ ही ग्राहक को बिना रस्सी के खींचती हैं !

खैर, इस प्रसंग में तो दुनिया भर का कागज़ कम पड़ जायेगा। हमारा तात्पर्य तो इतना ही है कि सूरत ठीक हो तो श्रीमती से लेकर मालिक तक धूप-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सा खिला रहता है। सीरत की कौन पूछता है, यद्यपि सूरत कब तक साथ देती है ? जवानी ने धोखा दिया नहीं कि मुँह पाल के ग्राम-सा हो जाता है। फिर भी, किसी-किसी का चौखटा ऐसा होता है कि वह तो अपने विवाह की खुशी में हर्ष-पुलकित है मगर लोग उससे पूछ बैठते हैं, "कहो भाई, क्या पिताजी चल बसे ? भले आदमी थे।" और उत्तर पाने से पूर्व ही नश्वरता एवं सान्त्वना के प्रामाणिक वाक्य आरम्भ हो जाते हैं।

हमारी शक्ल ऐसी तो नहीं है किन्तु है इसी की खानदानी। बचपन से अब तक बीसियों नाम पाये हैं। क्रमश: बानगी लीजिये—मनसुखा, बड़दत्ता, हूड़ा, पोंगर, घड़ियाल, बघर्रा और हनुमान। यों नाम अच्छा-खासा है किन्तु औलाद की वल्दियत बताने के अतिरिक्त कभी काम नहीं आया। संक्षेप में शक्ल को यों समझिये कि हम महिलाओं के स्वागतार्थ तो कभी आगे आये ही नहीं, पुरुषों के स्वागत में भी पीछे रहे।

इस शक्ल के लिए हमें लाखों के बोल सहने पड़े हैं। एक बार हम नाई की दुकान पर जा बैठे। तहमत-बनियान पहने थे। नाई नहीं था। उसी समय एक महाशय आये और हुक्म दिया, "शेव बनाओ, जल्दी !"

"उस्तरे से मेरी आदत नहीं है।" कुछ सोचकर हमने उत्तर दिया।

"कोई बात नहीं, जरा जल्दी।" कहते हुए उन्होंने तौलिया यथास्थान डाल लिया।

"मैं अनाड़ी हूँ।"

"चिन्ता नहीं।"

"आपके उस्तरा लग जायेगा।"

"लग जाने दो।"

"साहब, मैं सच कह रहा हूँ।"

"अजीब आदमी हो ! मेरे लगेगा कि तुम्हारे, जल्दी करो।"

अब हम क्या करते ! कमबख्त ने खानदानी नाई समझ लिया था। विवश होकर साबुन सहित बुरुश रगड़ना पड़ा। इस बात की बड़ी सावधानी बरती कि बुरुश उनके मुँह में न हाथ मारे। शेव की इस भूमिका में हमने काफी देर लगाई किन्तु नाई का बच्चा कहीं दिखाई नहीं दिया। उधर वे महाशय फर्माने लगे, 'एक दिन तुम्हारी दुकान अवश्य ठप्प हो जायेगी। तुम्हें ग्राहकों को बातों में उसी प्रकार उलझाये रखना चाहिए, जिस प्रकार काश्मीर से पाकिस्तानी जनता को और गांधीवाद से भारतीय जनता को भुलावे में रखा जाता है। या कम से कम लखनऊ के मालिशवालों की तरह ही अपने तुच्छ वंश को नवाबों से मिला देना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चाहिए। चलो, अब उस्तरा उठाओ।"

क्रोध तो बहुत आया और एक बार सोचा भी कि बच्चों की कलम की तरह इन रईस की नाक को एक हाथ में ही छील दें, किन्तु धैर्य के साथ हमने उस्तरा उठाया और ईश्वर का नाम लेकर उन महाशय की बायीं कनपटी पर रखकर सावधानीपूर्वक चलाया तो लाइफबाय साबुन के चिकने कागज की तरह डेढ़ इंच लम्बे कपोल-मैदान को चौथाई इंच तक समभाव से उचालता चला गया। वे महाशय उछलकर ऐसे चीखे मानो हमने उनकी गर्दन पर तलवार मार दी हो।

"मैंने पहले ही कहा था कि मैं अनाड़ी हूँ, उस्तरे से मुझे आदत नहीं है।" हमने तुरन्त सफ़ाई दी। इंजिन के कोयले-सा उनका चेहरा भभका ही था कि नाई आ गया और बार-बार हमको सलाम कर देर के लिए माफी माँगने लगा। कनपटी दाबे वे महाशय हमारी ओर अष्ट-ग्रह-दृष्टि से ताक रहे थे। उनकी समझ में, कश्मीर सम्बन्धी एंग्लो-अमेरिकन कूटनीति की तरह सारा मामला स्पष्ट हो गया और कुछ मिनट पूर्व का वार्तालाप कलयुगी सत्य के रूप में उनकी आँखों में साकार हो गया। अन्त में हमने सारांश कहा, "मैंने इसीलिए कहा था कि आपके उस्तरा अवश्य लग जायेगा।"

दूसरी घटना छोटी-सी है। हम अच्छी-खासी हालत में सड़क को नाप रहे थे कि बगल से एक बारीक और मधुर आवाज़ आयी जैसे वीना बोल उठी, "हाय जमादारजी, अब हमारी सुधि कब लोगो ?"

हमने मुँह मोड़ा तो वह मनोहारिणी महतरानी किशोरी सिटपिटा गई, "हूज़ूर, माफ करना, जमादारजी से आपकी शक्ल इतनी मिलती-जुलती है कि ···सरकार, माफी चाहती हूँ।"

जब हम दूल्हा बने ससुराल के द्वार पर खड़े थे तो रिवाज के अनुसार सास-जी हमारा स्वागत करने आयीं। हमको देख ऐसे चौंकी जैसे पहली खुराक में रोगी को स्वस्थ देखकर डॉक्टर और पहली तारीख में ही फैसला सुनते समय वकील चौंकता है। सासजी ने हमारे ससुर को सभी के सामने मूर्ख सिद्ध किया और निर्णयात्मक घोषणा की कि इस हनुमान के गले में अपनी मोती-माला नहीं डालूंगी।

बड़ा हंगामा मचा। बिजली अलग चली गई। अब मजा यह कि मुहल्ले के औरत-मर्द आएँ। हमारी शक्ल के ऊपर लालटेन, ढिबरी, मोमबत्ती या केवल दियासलाई तानें और हमारी शक्ल को फेल कर जाएँ। अपनी शक्ल की इस जाँच-पड़ताल से हमें रोना आ गया। तभी बिजली भी आयी और आकाशवाणी सुनाई दी, "मेरा विवाह होगा तो यही होगा।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी होने वाली अर्द्धांगिनी के इस वज्र-तुल्य संकल्प-घोष को हम बारातियों ने भी सुना। फिर क्या था, सासजी का मुँह भंगिन द्वारा छुए घड़े-सा धरा रह गया। हमारा स्वागत आरम्भ हुआ। कई महिलाओं ने एक साथ प्रश्न किया, "जब हम शक्ल खरीद रही थीं, तब आप कहाँ थे, लाला ?"

"उस समय हम अक्ल खरीदने चले गए थे, जी !" हमने उत्तर दिया। बाद को पता चला कि श्रीमतीजी ने इसी एक बात से सभी आलोचकों के मुँह पर सिंगर मशीन चला दी थी।

इस शक्ल के लिए और भी कई बार मात खानी पड़ी है। अपने बच्चों को खिला रहे थे कि नये पड़ोसी ने पूछा, "किसके बच्चे हैं ? बड़े सुन्दर हैं, तुम्हें कितने रुपये माहवार मिलता है ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्मराज के दरबार में जानवर

धर्मराज ने सिंहासन सँभाला ही था कि सामने से 'नारायण-नारायण' भजते, मुसकराते, नारदजी मर्त्यलोक की ओर से आते दिखाई दिये। नारदजी के पीछे भारत-उत्पन्न साँप, कुत्ता, शेर, हाथी, गिरगिट, बगुला, उल्लू, घोड़ा और बिल्ली आदि अनेक जानवर, जिनावर और पक्षी भी आ रहे थे। चित्रगुप्त जब तक अपनी बही सँभालें तब तक नारदजी मय अनुगामियों के दरबार में प्रवेश कर चुके थे।

"कहो नारदजी, क्या मामला है ? विष्णु भगवान के यहाँ देर से जाना है क्या ? यह जानवरों आदि का संग कैसे है ? क्या आपके पद-चिह्नों पर चलने वाले आदमी नहीं मिले ?" धर्मराज ने प्रश्न किया।

"मेरे पद-चिह्नों को तो गोली मारिए, अब तो विष्णु भगवान की भी पूछ नहीं है। देखिए न, अच्छा-खासा मंदिर है नई दिल्ली में लक्ष्मीनारायण का, मगर भक्तजन 'बिड़ला-मंदिर' पुकारते हैं। खैर, ये महानुभाव भारत से क्यों आए हैं, स्वयं ही बतायेंगे। नारायण-नारायण !" कहते नारदजी एक ओर विराज गए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नी शरणं गच्छामि

"कहो, सर्पराज, भारत में क्या दूध नहीं मिलता ? असमय ही यहाँ कैसे ?" धर्मराज ने सभी को यथोचित स्थान दे नागराज से प्रश्न किया।

"भगवन् !" सर्प ने उत्तर दिया, "मुझे तो भी दूध में पानी मिलाकर मिलता था किन्तु भोलेशंकर को तो पानी में दूध के छींटे मारकर घिस्सा दे दिया जाता है। मगर मेरे आने का कारण दूसरा है। भारतवर्ष में अब मेरा काम नहीं रहा, दूध ही नहीं बल्कि अनेक प्रकार के आराम देकर लाखों साँपों को आस्तीनों में पाला जा रहा है। इन साँपों को न पकड़े जाने का डर,. न मारे जाने का। चाहे जब हवा में जहर घोल देते हैं और हज़ारों को काट लेते हैं, फिर भी सरेआम रेशमी आस्तीनों में कुण्डली मारे बैठे है। इसलिए अब मेरा क्या काम रह गया ? अजगर दादा भी आ रहे होंगे। धीमी चाल के कारण पीछे रह गए हैं। लोग गद्दी पर पसरे-पसरे ही खाते और ऊँघते रहते हैं। अजगर दादा के बराबर भी मेहनत नहीं करते, मगर मोटे उनसे भी ज्यादा हो गए हैं।"

"और आप कूकर महोदय, क्या आपका भी काम नहीं रहा ?"

"हाँ भगवन्, सभी का यह हाल है। हम तो चोर-डाकू के आने पर ही भौंका करते थे और मालिक की सेवा में जान तक गँवा देते थे। मगर भारत की नेता और मंत्री नाम की बिरादरी में 'गृह-रक्षा' को छोड़कर हमारे गुण शत-प्रतिशत पाए जाते हैं। ये वक्त-बेवक्त भौंकते रहते हैं। 'बड़ों' के सामने हिलने वाली इनकी पूँछें विदेशी लुटेरों के आने पर पेट से जा लगती हैं। लुटेरों के लौट जाने पर पूँछें टाँगों से बाहर निकल आती हैं और भौंकना फिर शुरू हो जाता है। उद्घाटन नाम के त्योहार पर इन्हें मान-पत्र के पूए खिलाये जाते हैं तब ये विशेष तर्ज में भौंकते हैं। बताइये भगवन्, मैं क्या करता ?"

"कहिये, वनराज, आपको क्या कष्ट था ?"

"क्या बताऊँ, धर्मराज, भारत में विचित्र दशा है। ताव में आकर मैं अपने जन्म-दिन पर जंगली जानवरों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा कर बैठा और केवल आदमी के शिकार पर निर्भर हो गया। कुछ दिनों तो शिकार मिले मगर हाल में ही मैं भूखों मरने लगा। अगर आपके यहाँ अखबार आता हो तो रोज़ यह पढ़ने को मिलेगा कि 'अमुक की दिन दहाड़े हत्या, जनता देखती रही, कातिल फरार।' अब आप ही बताइये, जब आदमी खुले मैदान को, जहाँ भीड़ की भीड़ विचरती होती है, पार नहीं कर पाता तो जंगल तक कैसे आये ? अतः भूख बर्दाश्त करने में असमर्थ मैं विवश हो आपकी सेवा में शीघ्र आ गया।"

"और आप, गजराज ?"

"भगवन्, एम० पी० और एम० एल० ए० नाम के विचित्र व्यक्ति पैदा हो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गए हैं। इनके शरीर मोटे हैं और आँखें छोटी। चाल में मस्ती, आँखों में नशा है। राजनीति के जंगल में जनता के पेड़-पौधों को तोड़ते-कुचलते दिन-रात घूमते हैं और केवल स्वार्थ के अंकुश से इधर-उधर होते हैं। विवश मैं भी वनराज के साथ हो लिया।"

"गिरगिटजी, आप भी सुनाइये।"

"कमाल हो गया, धर्मराज ! आज तक रंग बदलने में संसार में मेरा कोई सानी न था, मगर भारत के लोगों ने मुझे मात दे दी। रंग बदलना तो उनके लिए करवट बदलने से भी आसान है। कभी-कभी तो वह एक साथ कई रंग में नज़र आता है। साधारण आदमी तो पेट के कारण रंग बदलता है किन्तु मंत्री और नेताओं का रंग बदलना दिनचर्या में शामिल है। बौद्ध सम्मेलन का उद्घाटन किया तो कहेंगे विश्व-शान्ति अहिंसा से ही सम्भव है। झाँसी की रानी की मूर्ति का अनावरण करेंगे तो कहेंगे तलवार ही नारी की शोभा है और लड़कर ही दुश्मन को देश से बाहर निकाला जा सकता है। दक्षिण की ओर मुँह करके कहेंगे कि अंग्रेज़ी रहनी चाहिए, उत्तर की ओर मुँह हुआ तो कहेंगे कि अंग्रेज़ी हटनी चाहिए। मंत्री लोगों ने कई-कई ड्राइंग-रूम बनवा रखे हैं। एक ड्राइंग-रूम कम्युनिस्टों के आदर्शों के अनुकूल है। लेनिन और मार्क्स के चित्र लगे हैं। वैसी ही पुस्तकें हैं। कम्युनिस्ट मिलने आए तो सादे कपड़े पहने, कुर्ते के बटन तोड़े, बाल बिखेरे और जा बैठे। दूसरा ड्राइंग-रूम जनसंघियों से मिलने का है। उसमें डॉ० हैडगवार और गुरु गोलवलकर के चित्र लगे हैं। कोई आया तो धोती के ऊपर काली टोपी लगाई और जा नमस्ते की। तीसरे ड्राइंग-रूम में गाँधी, नेहरू और शास्त्री के चित्र हैं और उसमें कांग्रेसियों से मिलते हैं। बताइये, इन लोगों से कैसे मुकाबला किया जा सकता है ? नेताओं और विधायकों का तो यही पता नहीं लगता कि सोने से पहले किस पार्टी के सदस्य हैं और जागने पर किस पार्टी के ! अतः भगवन्, मैं तो इन रंगबाजों से पराजित होकर आपकी शरण में आ गया।"

"हूँ," धर्मराज ने कहा, "और आपकी कथा, बगुलाजी !"

"बहुत छोटी कथा है, धर्मराज ! बदनाम तो मैं हूँ मगर भारतवर्ष में चारों ओर मुझ जैसे बोरियों भरे पड़े हैं। वर्दी पुलिस की, काम डाकू का। बाहर से गाय, अन्दर से बाघ। देश-भक्ति का ढोल पीटते हैं और दुश्मन से मिले हुए हैं। कपड़े भारतीय हैं, मन विदेशी है। बाहर से झोंपड़ियाँ हैं मगर अन्दर महल को भी मात करने वाले आराम हैं। कहेंगे, एक रुपया भी अण्टी में नहीं है, मगर बीस लाख तो पत्नी के ही नाम हैं। हिन्दी के प्रोफेसर हैं, काम अंग्रेज़ी में करते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शराबबन्दी पर भाषण दे रहे हैं, मुँह से बदबू आ रही है। भगवन्, बड़े-बड़े नमूने हैं। दिन में साधू हैं और रात में गोपियों में रास रचाते हैं। दुराचारी सदाचार के संरक्षक बन बैठे हैं। धर्मराज ! मुझे ही शर्म आयी और नारदजी के पीछे हो लिया।"

"क्यों उलूकराज, क्या भारत में लक्ष्मीजी को पैदल मारोगे ?"

"ऐसी बात नहीं है, भगवन् ! मेरी तरह भारत में बड़े-बड़े हैं जिन्हें भरी दोपहरी में जब सिर पर सूरज का हण्डा जलता है, कुछ दिखाई नहीं देता। जानबूझकर आँख बन्द कर लेते हैं। वर्षों की क्या कल की बात दिखाई नहीं देती। खुल्लमखुल्ला सामने पड़ी रिपोर्ट को गुप्त बताते हैं। बड़े-बड़े सर्वोदयी, सन्त और चक्रवर्ती राजाओं को सम्प्रदायवादी, देशद्रोही और देशभक्त में अन्तर नज़र नहीं आता। दूसरे, भगवन्, अब लक्ष्मीजी मुझ पर नहीं, सरकारी कुर्सी पर विराजती हैं। मेरे सारे गुण सरकारी कुर्सी में समा गए हैं। फिर, भगवन्, मैं क्या करता ?"

"कहो, बिल्लीरानी, चूहे कम पड़ गये क्या भारतवर्ष में ?"

"नहीं, धर्मराज, चूहे तो अरबों की संख्या में हैं। मगर उनकी संख्या ही नहीं बढ़ी, ताकत भी मुझसे अधिक है। अब उन्हें मेरे गले में घण्टी बाँधने की आवश्यकता नहीं रही। मैं खुद उनसे डरती हूँ। गवर्नमेण्ट, व्यापारी और किसानों ने चूहों को इतनी लिफ्ट दे रखी है कि गरीब आदमी भूखों मरने लगा है। भगवन्, इन चूहों की नई रिश्तेदारियाँ बड़े ऊँचे घरानों से हैं। ओवरसियर के यहाँ इनकी ससुराल है तो इंजीनियर के यहाँ ननसार। ठेकेदार खुशी-खुशी भातई का काम सँभालते हैं। जब भी कोई बाँध, मकान, सरकारी कार्यालय या गोदाम बनते हैं तो चूहों के लिए पहले गुंजाइश छोड़ी जाती है। इनसे भयभीत हो कूकर के साथ भाग आयी, भगवन् !"

इसी समय धर्मराज की टाँगों पर कोई चीज़ रेंगी। धर्मराज के हाथ के साथ निगाह गई तो खटमलजी लपक रहे थे। धर्मराज से रहा न गया, "आप कब तशरीफ लाए ?"

"भगवन्, गरीब का रक्त पहले ही अमीर लोग चूस चुके हैं। हमें न तो अमीरों के यहाँ अवसर मिलता था और न उनके पापी खून से हम अपना पेट भरना चाहते थे। यद्यपि मेरे अनेक भाई गरीबों के हार्दिक रक्त-दान से प्रभावित हो वहीं रह गए हैं, मगर मुझे गरीबों पर दया आयी और बहुत पहले इधर चला आया।" खटमल ने अर्ज किया।

"ओह ! कहो अश्वराज, तुम्हारे बिना भारत में कैसे काम चलेगा ?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्मराज के दरबार में जानवर

"आह ! धर्मराज, कभी-कभी आप मेरे ऊपर अवश्य कृपा करें। भारत में अब मेरा कोई काम नहीं रहा। शराब और चाय के शौकीन भारत के लोगों में इतना दम नहीं है कि मेरे ऊपर सवारी कस सकें। मेरी खुराक को भी कभी-कभी खुद ही खा जाते हैं। पैसे वालों ने अब कारें खरीद ली हैं, गरीब साइकिल पर चलता है, रिक्शा भी आदमी खींचता है। ताँगे-इक्के खत्म हो चले। शादी-व्याह में भी खच्चर काम में आने लगा। सिवाय घुड़दौड़ के मेरा कोई काम नहीं रहा, भगवन् !"

"नहीं-नहीं, तुम जरा-सी परेशानी में ही घबरा गए। देखो, गर्दभराज तो आए ही नहीं।"

"यह आप क्या कहते हैं, भगवन् !" अश्वराज हिनहिनाये, "गधा तो इधर मुड़कर भी नहीं देखेगा। आज जैसी इज्जत उसे भारत में कभी नहीं मिली। जिसको चाहे चुनकर कुर्सी पर बैठाल देता है। महाराज! कमाल यह है कि भारत देश के सभी दफ्तर—क्या सरकारी, क्या गैर-सरकारी—सभी का संचालन इसी के हाथों में है। भगवन्, एक और अफवाह है भारत में, कि जो भी गधा मरता है सीधे किसी बड़े नेता या मंत्री का जन्म लेता है। अतः यहाँ कोई नहीं आएगा, भगवन् ! ये गधे कुर्सियों और गद्दियों पर रेंकते लोट मारते हैं और धोबी तथा कुम्हारों को छोड़कर सारी जनता पर दुलत्ती झाड़ते रहते हैं।"

"बहुत खूब ! चित्रगुप्त, जरा इन सबका खाता तो निकालना।" धर्मराज ने चित्रगुप्त से कहा।

तभी बाहर से भैंसे ने हुँकार की। धर्मराज चौंके, सिंहासन से उठे और नारद-जी से हँसकर बोले, "आइये, नारदजी ! लंच का टाइम हो गया।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बच्चों की शह और मात

चटाई पर तकिये में मुँह गड़ाये पड़े श्री गोपाल बाबू शर्मा अपने भतीजे से बोले, 'बेटा, जरा पैर तो दबाना।'

मगर बेटे ने जनतंत्री नेता की भाँति प्रार्थना अनसुनी कर दी। शर्माजी ने कई बार कहा, झिड़का, किन्तु बेटा कि हर दशा में भारतीय विदेश नीति के समान तटस्थ ! निदान शर्माजी झल्ला उठे, 'कहने से कुम्हार गधे पर नहीं चढ़ता।'

भतीजे बादशाह को क्या सूझा कि शर्माजी की कमर पर चढ़ बैठा और कूदते हुए बोला, 'मगर चाचा, देख लो, मैं तो चढ़ रहा हूँ।'

अब शर्माजी गधे बने झेंपने लगे।

हँसते हुए, हम घर आए तो छोटे कुँवर ने कहा, 'पिताजी, आज मैंने मास्टर जी को झूठ बोलते पकड़ लिया। कल तो पाँच और चार नौ बता रहे थे और आज छः और तीन नौ बताने लगे।'

'तुम गधे हो !' हम बोले।

'जी, पिताजी !'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बच्चों की शह और मात

और शर्माजी की तरह हम भी गधे बने झेंपने लगे।

वास्तव में शतरंजी शह और मात तो प्रौढ़ बुद्धि-कौशल के बल पर योजना-बद्ध होती है तथा समय भी पर्याप्त लगता है किन्तु दैनिक जीवन में बच्चों की ये शह और मातें अचानक, भोली और बड़ी प्यारी होती हैं। अभी उसी दिन की बात है। बाल-मन्दिर में श्रीमती देविकारानी बच्चों को पढ़ा रही थीं कि निरीक्षक महोदय आए और शिकायत की, 'बच्चे आपके पढ़ाने पर ध्यान नहीं दे रहे और आप हैं कि पढाये जा रही हैं।'

'प्रणाम, श्रीमान् !'

'अभी लीजिए।' और निरीक्षक ने देविकाजी से चौक लिया, कक्षा की ओर मुँह कर बोले, 'बच्चो, कोई संख्या तो बोलो।'

'जी, अठहत्तर।' एक स्वर आया।

निरीक्षक ने बोर्ड पर सत्तासी लिख दिया।

'और बोलो !'

'जी, उन्तालीस।'

निरीक्षक ने बोर्ड पर तिरानबे लिख दिया।

'एक और।'

'जी, बयासी।'

निरीक्षक ने बोर्ड पर अट्ठाईस लिखकर अध्यापिका की ओर निगाह की, 'देखा आपने, मैं पहले ही कह रहा था कि…'

तभी एक कोने में छोटा-सा बच्चा खड़ा हुआ, उसने बायाँ हाथ कमर पर रखा और दाएँ हाथ से ताल ठोकता बोला, 'लिखो तेंतीस और बदलो अब !'

अध्यापिका मुसकरा उठी और निरीक्षक महोदय अपना अधूरा वाक्य छोड़ कक्षा से बाहर हो गये।

इसी प्रकार एक समदर्शी निरीक्षक ने कक्षा की बुद्धि-परीक्षा के लिए प्रश्न किया, 'मान लीजिए, सारे हिन्दुस्तान को विमान से देखने पर मुझे सोलह दिन लगते हैं…'

'तो हमें आठ दिन लगेंगे।'

निरीक्षकजी बिगड़ गए, 'क्यों, तुम्हें क्यों आठ दिन लगेंगे ? क्या खास बात है तुममें ?'

झिझकता-सा वह बच्चा बोला, 'जी, जब आप एक आँख…और हम दो आँख…"

बात पूरी होने से पूर्व निरीक्षक द्वार की ओर बढ़ रहा था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नी शरणं गच्छामि

जब घर में सुगृहिणी छोटे-छोटे मोजे बुनती है तो प्राय: निम्नलिखित वार्ता हो जाया करती है––

'ये किसके लिए बुन रही हो, माँ ?'

'छोटे मुन्ने के लिए। तेरा भैया आयेगा न !'

'मेरा भैया कब आयेगा, माँ ?'

'थोड़े दिनों में आयेगा रे !'

'थोड़े दिनों में कहाँ से आयेगा, ?'

'मेरे पेट से और कहाँ से ?' मां झल्लायेगी।

'पेट में कहां से आ गया, मां !' मुन्ना उसी भोलेपन से कहेगा और माँ सलाई छोड़ माथा थाम लेगी। इसी प्रकार घरों में अनेक प्यारी शह और मातें होती रहती हैं—।

'माँ, तुमने कहाँ जन्म लिया ?'

'कलकत्त में रे !'

'और पिताजी ने, माँ !'

'इलाहाबाद में, भाई !'

'और मैंने ?'

'दिल्ली में, फिर ?'

'फिर हम एक साथ कैसे रहते हैं, माँ ?'

या कभी—

'यह बारात किसकी है, माँ ?'

'वह आ रहा है सामने दूल्हा पड़ोसिन राधा को ब्याहने।'

'पिताजी का किससे ब्याह हुआ, माँ ?'

'मुझसे और किससे ?'

'बिना बारात, घर ही घर में ब्याह कर लिया, माँ !'

पता नहीं किस बच्चे ने गरम होकर अपने पिता से कहा था, 'आपने मेरी माँ से विवाह किया है, इसलिए मैं आपकी माँ से विवाह कर लूंगा।'

जो भी हो, छोटे बच्चे भी कम खोटे नहीं होते। अब दूध का भरा गिलास फैल गया तो पति चीख उठा, 'अब मैं क्या पीऊँगा ?'

'नाराज क्यों होते हो, तुम मेरा दूध पी लेना।' सहज भाव से पत्नी ने कहा।

'फिल मैं क्या पीऊँदा!' शैतान पूत ने कहा तो पत्नी ने एक चाँटा रसीद कर दिया। पूत रोता हुआ खाट के नीचे आ छिपा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बच्चों की शह और मात

पत्नी को 'बाल-मनोविज्ञान' पर भाषण देते हुए पतिजी बच्चे को बुलाने पहुँचे। खाट के नीचे जो झाँका तो बच्चा बोला, 'आपते भी ताता माल दिया त्या, आ दाइये अभी ददै ऐ।'

दावतों के मौक़ों पर बच्चों से कहा-सुनी देखते ही बनती है। पत्तल पर जैसे ही मिठाई की तश्तरी आती है कि बाप बेटे को क़ोहनी मारना शुरू कर देता है, 'खा-खा, शुरू कर, इमरती खा।'

मगर बेटाराम है कि मौनी साध जाता है। बाप पूरी पत्तल परसने तक किसी तरह सबर करता है। फिर भी यदि बेटा पूरी के टुकड़े से आलू का साग छुलाता है तो बाप धीमी आवाज़ में चीख उठाता है, 'कमबख्त, घर पर तो जरा-सा लड्डू कहीं से आया नहीं कि पाँचजन्य फूँक देता है और यहाँ तश्तरी सामने है तो छुई भी नहीं जा रही! ले और खा!' और बाप अपनी तश्तरी भी बेटे के सामने रख स्वयं खस्ता कचौड़ी की ओर हाथ बढ़ाता है।

बेटा अब भी सोंठ-रायते में मगन है। बाप पुनः कोहनी मारता है और तनिक जोर से मारता है, 'अबे. मिठाई क्यों नहीं खाता, खा!'

तभी बेटा अप्रत्याशित रूप से चीख उठता है, 'नहीं खाता मैं मिठाई, लो, नहीं खाता। मार लो चाहो जितना!'

और तब बाप बीसियों उठती नजरों से बचता बेटे से दूर सरक जाता है।

कहीं-कहीं बच्चे बड़े शैतान होते हैं और उस माँ से भी नहीं डरते जिससे बाप डरता है। एक बार एक माँ ने बच्चों को चुनौती दी, 'हफ्ते में जो सबसे अधिक शान्त रहा करेगा, उसे मैं इनाम दिया करूँगी।'

कई बच्चे एक साथ बोल उठे, 'हम नहीं मानते। सभी इनामों को पिताजी ले लिया करेंगे।'

फेल हुए बेटे को जब पिता ने समझाया, 'देखो मुन्ना, जब सरदार पटेल तेरी उम्र के थे तो क्लास में फर्स्ट आते थे।' तो मुन्ना ने बिना रुके उत्तर दिया, 'जी हाँ, पिताजी, और जब वे आपकी उमर के हुए तो भारत के गृह-मंत्री बन गए।'

लो, कर लो बात! अब पिताजी क्या कहते!

घर ही नहीं, जहाँ भी अवसर मिलता है, बच्चे नहीं चूकते। एक ऐतिहासिक किला दिखाया जा रहा था। जब गाइड ने रानियों के शयन-कक्ष की चर्चा की कि बिना पूर्व-सूचना के हवा भी अन्दर नहीं आ सकती थी तो एक बच्चे से नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नी शरणं गच्छामि

जब घर में सुगृहिणी छोटे-छोटे मोजे बुनती है तो प्राय: निम्नलिखित वार्ता हो जाया करती है—

'ये किसके लिए बुन रही हो, माँ ?'

'छोटे मुन्ने के लिए। तेरा भैया आयेगा न !'

'मेरा भैया कब आयेगा, माँ ?'

'थोड़े दिनों में आयेगा रे !'

'थोड़े दिनों में कहाँ से आयेगा, ?'

'मेरे पेट से और कहाँ से ?' मां झल्लायेगी।

'पेट में कहां से आ गया, मां !' मुन्ना उसी भोलेपन से कहेगा और माँ सलाई छोड़ माथा थाम लेगी। इसी प्रकार घरों में अनेक प्यारी शह और मातें होती रहती हैं— ।

'माँ, तुमने कहाँ जन्म लिया ?'

'कलकत्त में रे !'

'और पिताजी ने, माँ !'

'इलाहाबाद में, भाई !'

'और मैंने ?'

'दिल्ली में, फिर ?'

'फिर हम एक साथ कैसे रहते हैं, माँ ?'

या कभी—

'यह बारात किसकी है, माँ ?'

'वह आ रहा है सामने दूल्हा पड़ोसिन राधा को ब्याहने।'

'पिताजी का किससे ब्याह हुआ, माँ ?'

'मुझसे और किससे ?'

'बिना बारात, घर ही घर में ब्याह कर लिया, माँ !'

पता नहीं किस बच्चे ने गरम होकर अपने पिता से कहा था, 'आपने मेरी माँ से विवाह किया है, इसलिए मैं आपकी माँ से विवाह कर लूँगा।'

जो भी हो, छोटे बच्चे भी कम खोटे नहीं होते। अब दूध का भरा गिलास फैल गया तो पति चीख उठा, 'अब मैं क्या पीऊँगा ?'

'नाराज क्यों होते हो, तुम मेरा दूध पी लेना।' सहज भाव से पत्नी ने कहा।

'फिल मैं क्या पीऊँदा!' शैतान पूत ने कहा तो पत्नी ने एक चाँटा रसीद कर दिया। पूत रोता हुआ खाट के नीचे आ छिपा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बच्चों की शह और मात

पत्नी को 'बाल-मनोविज्ञान' पर भाषण देते हुए पतिजी बच्चे को बुलाने पहुँचे। खाट के नीचे जो झाँका तो बच्चा बोला, 'आपते भी ताता माल दिया त्या, आ दाइये अभी ददै ऐ।'

दावतों के मौक़ों पर बच्चों से कहा-सुनी देखते ही बनती है। पत्तल पर जैसे ही मिठाई की तश्तरी आती है कि बाप बेटे को कोहनी मारना शुरू कर देता है, 'खा-खा, शुरू कर, इमरती खा।'

मगर बेटाराम है कि मौनी साध जाता है। बाप पूरी पत्तल परसने तक किसी तरह सबर करता है। फिर भी यदि बेटा पूरी के टुकड़े से आलू का साग छुलाता है तो बाप धीमी आवाज़ में चीख उठाता है, 'कमबख्त, घर पर तो जरा-सा लड्डू कहीं से आया नहीं कि पाँचजन्य फूँक देता है और यहाँ तश्तरी सामने है तो छुई भी नहीं जा रही ! ले और खा !' और बाप अपनी तश्तरी भी बेटे के सामने रख स्वयं खस्ता कचौड़ी की ओर हाथ बढ़ाता है।

बेटा अब भी सोंठ-रायते में मगन है। बाप पुनः कोहनी मारता है और तनिक जोर से मारता है, 'अबे मिठाई क्यों नहीं खाता, खा !'

तभी बेटा अप्रत्याशित रूप से चीख उठता है, 'नहीं खाता मैं मिठाई, लो, नहीं खाता। मार लो चाहो जितना !'

और तब बाप बीसियों उठती नजरों से बचता बेटे से दूर सरक जाता है।

कहीं-कहीं बच्चे बड़े शैतान होते हैं और उस माँ से भी नहीं डरते जिससे बाप डरता है। एक बार एक माँ ने बच्चों को चुनौती दी, 'हफ्ते में जो सबसे अधिक शान्त रहा करेगा, उसे मैं इनाम दिया करूँगी।'

कई बच्चे एक साथ बोल उठे, 'हम नहीं मानते। सभी इनामों को पिताजी ले लिया करेंगे।'

फेल हुए बेटे को जब पिता ने समझाया, 'देखो मुन्ना, जब सरदार पटेल तेरी उम्र के थे तो क्लास में फर्स्ट आते थे।' तो मुन्ना ने बिना रुके उत्तर दिया, 'जी हाँ, पिताजी, और जब वे आपकी उमर के हुए तो भारत के गृह-मंत्री बन गए।'

लो, कर लो बात ! अब पिताजी क्या कहते !

घर ही नहीं, जहाँ भी अवसर मिलता है, बच्चे नहीं चूकते। एक ऐतिहासिक किला दिखाया जा रहा था। जब गाइड ने रानियों के शयन-कक्ष की चर्चा की कि बिना पूर्व-सूचना के हवा भी अन्दर नहीं आ सकती थी तो एक बच्चे से नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहा गया, "झूठ बोलते हो, जब हवा ही अन्दर नहीं आ सकती थी तो रानियाँ कैसे ज़िन्दा रहती होंगी ?"

राह चलते भी शह मात होती रहती है। सुबह स्कूल जाते एक बच्चे ने सहसा कहा, "इसी जगह कल शाम दो रुपये गिर पड़े थे !'

"अच्छे बच्चे रास्ते में बिना रुके स्कूल जाया करते हैं।" नाली साफ करने वाले भंगी ने उस बच्चे से कहा। बच्चा तुरन्त अपने रास्ते हो लिया।

दोपहर को बच्चा उसी रास्ते से लौटा तो भंगी ने टोका, "क्यों भैया, खूब याद है तुम्हें कि इसी जगह रुपए गिरे थे ?"

"हाँ-हाँ, खूब याद है। कल शाम की तो बात ही है, दस पैसे देकर दोनों रुपये निकलवाये थे।"

बेचारा भंगी झाड़ू-पंजे फेंक 'ओह' कर बैठ गया।

कक्षाओं में अध्यापकों को प्राय: शह और मात खानी पड़ती है। जब प्रधान-अध्यापक ने कुर्सी पर बैठे-बैठे एक छोटे से छात्र की ओर अपनी रूल सीधी की और कहा कि रूल के सिरे के सामने उल्लू बैठा है तो छात्र ने तुरन्त पूछा, "गुरुजी, किस सिरे के सामने ?"

अध्यापिका उमादेवी ने जब रामू को दर्जा तीन में चढ़ जाने की बधाई दी तो रामू ने बड़ी संजीदगी से कहा, "और आप दर्जा दो में ही रह गईं।"

"मेजों में से मेजें ही निकाली जा सकती हैं और कुर्सियों में से कुर्सियाँ। किसी चीज़ में से वही चीज़ निकाली जा सकती है।" बाकी समझा रहे थे सुरेशचन्द्र कि नन्दू बोल पड़ा, "मगर मास्साब, मैंने आग में से धुआँ निकलते देखा है और थनों में से दूध।"

नवनीतकुमार पढ़ते ही चले गए तो कुछ छात्र मुसकरा उठे। कुमार साहब ने कहा, "यह तो कोई लम्बा सेन्टेन्स नहीं है। सेन्टेन्स तो तीन-तीन और चार-चार पेजों तक चले जाते हैं।"

धीरूजी दोनों हाथ फैलाकर खड़े हो गए, "तब तो मास्टरजी, फुलस्टॉप भी इतना बड़ा आता होगा।"

आप कह सकते हैं कि ये तो बड़े बच्चों की बातें हैं। हम कहते हैं कि ये बहुत छोटे बच्चों की करामातें हैं, आखिर बच्चा आदमी का बाप है। जब खेल-खेल में सारी पट्टी को घेरता हुआ वीरेन्द्र ने 'अ' बनाया और पप्पू से कहा, 'कहो बेटा, छोटा अ' तो पप्पू ने बड़े भोलेपन से कहा, 'डैडी, इतना बड़ा, फिर भी छोटा अ।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बच्चों की शह और मात

अन्त में; कौन नहीं जानता कि जरा-जरा से बच्चों के कारण ही बड़ों-बड़ों में सिरफुटव्वल हो जाती है और पेट में दाढ़ी वाले ये बच्चे घंटे भर बाद ही परस्पर गर्दनों में बाँहें डाल बड़े लोगों की मूर्खता पर हँसते हुए गोली टीच में लग जाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बेशरमी : जीवन का एक अनिवार्य तत्त्व

उस दिन भरे बाज़ार में नेकराम ने हमें बेशरम कह दिया, किन्तु हम शिवमूर्ति की तरह मौन रहे। अगर कुछ कड़े शब्दों का प्रयोग करते तो उदरस्थ होनेवाली मिठाई का क्रम आधुनिक प्रेमी के साहस-सा टूट जाता। अब एकान्त में हमारा कथन है कि जिस प्रकार दुर्बल प्राणी के लिए नरमी का महत्त्व है, बर्फ़ बेचनेवालों को गर्मी से ममत्व है, उसी प्रकार सम्पूर्ण जीवन के लिए बेशरमी एक अनिवार्य तत्त्व है। तनिक विचारिए तो सही कि यदि बेशरमी धारण न की जाती तो यह धरा बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, गाँधी जैसी महान आत्माओं से वंचित रह जाती। फिर न ख्रुश्चेव होते, न कैनेडी; न टीटो-नासिर होते और न शान्ति के दूत जवाहरलाल। विनम्र-योद्धा लालबहादुर के अनूठे व्यक्तित्व के दर्शन ही कब होते ? इस बेशरमी का इतिहास मानव-जाति के जन्म और विकास का इतिहास है।

विज्ञान कहता है कि पशु-पक्षियों और फूल-पौधों में भी इस किस्म की बेशरमी पायी जाती है, अतएव सिद्ध हुआ कि सम्पूर्ण जगत (जड़ या चेतन) बेशरमी के इस अनिवार्य तत्त्व से ओतप्रोत है। किन्तु हमारा उद्देश्य इस चिरन्तन उत्पादन की ओर संकेत करना नहीं है बल्कि दैनिक दृष्टि से भौतिक लाभों को गिनना है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chaṇdigarh

बेशरमी : जीवन का एक अनिवार्य तत्त्व

हमसे जब कोई भोजन के लिए प्रार्थना करता है तो पुनः आग्रह की प्रतीक्षा में समय न गँवाकर तुरन्त पालथी मारकर बैठ जाते हैं। घर की एक खुराक बची और श्रीमतीजी का परिश्रम। किसी ने सिनेमा चलने को कहा तो आज्ञा अविलंब शिरोधार्य की। बेशरमी से दिग्गज लाभ अपने आँगन में होता है। यदि हम बेशरम न बने और श्रीमतीजी के प्रत्येक चंचु-प्रसव का उत्तर दें तो बात की बात में महाभारत के अठारहों पर्व खड़े हो जाएँ।

बहू जरा-सी बेशरमी रखती है तो रोज़ दूध-रबड़ी पर हाथ साफ़ करती है और सप्ताह में एक बार सिनेमा भी देखने को मिलता है। सास-ससुर और पड़ोसी 'बेशरम' कहकर रह जाते हैं, इस एक शब्द से डरकर नाना प्रकार के सुखदाता पातिव्रत-धर्म को कैसे छोड़ा जा सकता है ! कई वृद्ध तनिक से बेशरम कहलाकर एकाधिक इन्द्रियों का मुक्त उपभोग करते हैं। आज तो उन्नति का मार्ग ही यह है कि बेशरम बन आत्म-विज्ञापन कीजिए। यदि बेशरमी को न अपनाया जाए तो प्रायः सभी उच्च शिक्षित घरानों की प्रगतिशीलता को दीमक लग जाए।

अभिनेत्री, वेश्या या नर्स को बेशरमी धारण करना रोज़ी-रोटी के कारण अनिवार्य हो जाता है। कन्या अगर नाच-गाकर न दिखाये तो वर महोदय कैसे पसन्द करें ? पिता भी विवशतः बेशरम बन अपनी पुत्री के प्रत्येक अंग-सौष्ठव का वर्णन कर उसे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने की आज्ञा दे एकान्त में छोड़ देता है। उधर वर महाशय और उनके परिवारी बेशरमी के साथ खूब तो खाते हैं और रुपया अलग डकारते हैं। प्राइवेट भी देखने आयेंगे तो बारात के लघु संस्करण के रूप में आ मरेंगे। कहना न होगा कि प्रत्येक बाराती नम्बरी बेशरम होता है। ऐतिहासिक स्वयंवर-प्रथा एक प्रकार से बेशरमी की शाख पर खिला फूल ही तो है। बेशरमी के शॉर्टकट से प्रेम-गली में अनायास ही पहुँचा जा सकता है।

बेशरम दुकानदारों को आपने देखा है ? मिलावटी माल बेचने और चोर बाज़ारी करने पर जब पकड़े जाते हैं तो दाँत निपोरते सिपाहियों के साथ चल देते हैं। चोर और उनकी जाति वाले बेशरमी के आधार पर अगर अपना पेशा ही छोड़ दें तो पुलिसवालों के पेट का क्या होगा ? बिना बेशरमी का दामन थामे क्या कभी पैसे वसूल होते हैं ? ब्याज पर रुपया उठानेवाले वकील और डॉक्टर का पेशा बिना बेशरमी कितने दिन चल सकता है ? नेतागिरी और तलाक का सुख भी बेशरमी का ही परिणाम है। जिस प्रकार कृषि-प्रधान देश की शोभा अकाल से होती है उसी प्रकार धन की शोभा बेईमानी और बेशरमी से होती है।

किन्तु कभी-कभी बेशरमी उल्टा दाँव मार देती है। एक श्रीमान भोजन करने जा रहे थे कि साथ आठ मित्र आ टपके। बेचारे रुक गए, उधर श्रीमतीजी रसोई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में चिमटा और करछुली पर निमंत्रण राग गा रही थीं। आखिर श्रीमानजी ने एक उपाय निकाला, "भाई, जरा शौच हो आऊँ, अभी आया।"

जब भोजन कर बैठक में वापस आए तो दाल का एक दाना होंठों पर टिका हुआ था। एक मित्र से न रहा गया, बोल ही तो उठा, "आपके मुँह से शौच-प्रसाद लगा रह गया है।"

शादी-ब्याह में बेशरमी नंगी होकर सामने आती है। जिन पति और जेठ-ससुरों के सामने बहुएँ घूँघट नहीं उठातीं, उन्हीं के कानों में गालियों की वह रस-धार पड़ती है कि तबीयत मिचलाने लगती है। सभ्य समाज ने दैनिक चर्या को सरस बनाने के लिए बेशरमी की हलकी किस्में निकाल ली हैं जैसे साली और भाभी से मज़ाक का अधिकार प्राप्त कर लेना। इन समाज-सम्मत सिद्धान्तों का जब भी उल्लंघन होता है (जैसे सड़कछाप मजनूँ छात्राओं को छेड़ते हैं) तो सिर और सैंडिलों का संयोग होने में देर नहीं लगती।

भारत की ब्राह्मण, नाई और भिखारी जैसी बेशरम जातियाँ अन्यत्र नहीं मिलेंगी। ब्राह्मण को भोजन, नाई को हक और भिखारी को भीख हर हालत में चाहिए। कहते हैं कि बेशरम हँसी के आधार पर लम्बा जीवन निश्चय है, कुछ तो ऐसे बेशरम हो जाते हैं कि चिता में दियासलाई दिखाई जा रही है और वे हैं कि जीने के लिए करवट बदल रहे हैं।

इस प्रकार बेशरमी जीवन का एक आधारभूत तत्त्व है और बेशरम इस संसार का अनिवार्य जीव। पग-पग पर 'बड़ा बेशरम है', 'बेशरमी की हद हो गई' आदि वाक्य सिनेमा के अश्लील गीतों की भाँति सुनाई पड़ते हैं। 'जिसने की शरम, उसके फूटे करम', 'जिसने की बेशरमाई, उसने खाई दूध-मलाई' आदि कहावतें प्रकट करती हैं कि बेशरमी का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

यदि बेशरमाई इस संसार से उठ गई तो मेहमान जाति ही नष्ट हो जायेगी। फिर शेष ही क्या रह जायेगा ! (प्रत्येक प्राणी किसी न किसी का मेहमान होता ही है ?) एक बार की बात है कि एक मेहमान ने पौरी पार कर आँगन में पैर रखा ही था कि घर के मालिक और मालकिन में भयंकर गाली-गुफ्तार शुरू हो गई। बेचारा मेहमान उल्टे पाँव लौट गया।

"कहो प्रिये, कैसा होशियार निकला मैं जो झगड़ा शुरू कर दिया। गालियों के लिए माफी चाहता हूँ।" मालिक ने कहा।

"इसमें माफी की क्या बात है, जी ! मेहमान को देख मैं पहले ही समझ गई थी।" मालकिन खिलखिलाई, "मैं भी कैसी समझदार निकली !"

"और मैं भी कैसा बुद्धिमान हूँ !" सहसा मेहमान ने प्रकट होकर कहा, "सब

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ समझकर मैं भी तो छिप गया था, गया नहीं था।"

बेशरमी के कीटाणु विनष्ट होने पर घर-दामाद का तो कोई नामलेवा न रहेगा। एक घर-दामाद की कथा हमें याद है। ससुराल गये। पहले दिन तो थाली के चारों ओर इतनी कटोरियाँ लगीं कि दोनों हाथ एक सीध में जोड़ लम्बा करने पर भी उठा न सकते थे। सुन्दर और रसीली सालियाँ कटोरियाँ उठाने-रखने को पास बिठा दी गयीं। दूसरे दिन पूड़ी-कचौड़ियाँ तो रहीं किन्तु कटोरियों को प्लेग हो गया। तीसरे दिन दाल-चपातियाँ ही हाजिर थीं, थाली से बाहर कटोरी न थी। चौथे दिन कढ़ी-चावल थे, कटोरी एक भी न थी। फिर धीमे-धीमे सामान सिकुड़ने का वह नम्बर आया कि खिचड़ी बनी तो सास ने उसमें घी भी नहीं डाला। दामाद भी एक ही थे, बोले, "अम्माजी, जरा-सा घी तो डाल दो।"

"लाला, अब घी नहीं रहा।" सास ने उत्तर दिया।

"था तो सही।"

"खतम हो गया।"

लाला चुप रहे। सास किसी काम से उठी तो लाला ने घी का डिब्बा शीघ्रता से उलट लिया। खिचड़ी गर्म थी अतएव मिलाया न जा सकता था। उसी समय सास लौट आयी। उसने जो थाली में घी देखा तो थाली के पास ही बैठ गई। बोली, "लाला, न तो तुमने हमारी लल्ली को कभी कोई जेवर ही बनवाया···" और उसने गरम खिचड़ी में ही उँगली से एक लकीर खींच दी।

घी उस रेखा से बहकर थाली के किनारे पर आने लगा।

"न तुमने कभी कोई अच्छा कपड़ा ही सिलवाया···" और सास ने दूसरी रेखा खींच दी।

घी तेजी से किनारे आने लगा।

"न लल्ली को सास-ससुर के तानों से ही बचा सके।" तीसरी रेखा खिंच गई।

"तुमने हमारी लल्ली को कुछ भी सुख तो नहीं दिया···" कहते-कहते सास ने थाली में अनेक रेखाएँ खींच दीं।

सारा घी थाली के किनारे पर आ लगा। सास यह देख हँस पड़ी और लाला किसी सोच में पड़ गए।

सास कुछ कहे कि लाला बोले, "देखो अम्माजी, अगर तुम्हारी लल्ली को किसी ने जरा भी दुःख दिया हो तो उसका घर ऐसा हो जाए···" और लाला ने दाहिने हाथ की हथेली से घी और खिचड़ी को मिलाते हुए थाली में वृत्ताकार लीपा कर लिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ये दाँतों के डॉक्टर

युग विशेषता का है। साहित्य हो या अन्य क्षेत्र, महीन-महीन विषयों के विशेषज्ञ उसी प्रकार बहुतायत से मिलेंगे जिस प्रकार हिन्दी पुस्तकों में अशुद्धियाँ। चिकित्सा के क्षेत्र में भी आपको दाहिनी आँख के ऊपरी पलक की बरौनियों के मूल-विशेषज्ञ मिल जायेंगे और नासिका के बाएँ रन्ध्र के बालों के छोर-विशेषज्ञों की भी कमी नहीं रहेगी। फिर दाँतों के उखाड़ने और जमाने के विशेषज्ञों का पाया जाना ही आश्चर्यजनक कैसे कहला सकता है। जिस प्रकार असफल लेखक आलोचक बन जाता है उसी प्रकार दाँतों का मंजन बेचनेवाला जब विक्रय में असफल रहता है तो दाँतों का डॉक्टर बन बैठता है।

जो भी हो, दाँतों का डॉक्टर दुकान पर बैठा मक्खियाँ मार-मारकर तीन के पहाड़े के अनुसार गिनता रहता है या जासूसी उपन्यासों में डूबा यह सोचता रहता है कि किसी स्वस्थ आदमी के चमकीले दाँतों को किस उपाय से दो रुपये के हिसाब से उखाड़कर दो रुपए की दर से नकली दाँत फिट कर दे। अगर इन डॉक्टरों का वश चले तो संसार की समूची आबादी के दाँत उखाड़कर नकली लगा दें। इनके पास बैठकर (बैठने का स्थान काफी होता है क्योंकि दुकान में उपकरण बहुत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कम होते हैं) जो भी जोर से हँसा कि परीक्षक की लाल पेंसिल की तरह अपनी अभ्यस्थ उँगली मुँह के अन्दर किसी दाँत पर रखकर कहेंगे, "पायरिया !" और निन्यानबे दशमलव नौ प्रतिशत वह हँसनेवाला अपना कीमती दाँत खोकर ही जायेगा। हमारे सामने ही एक एम० बी० बी० एस० के अच्छे-खासे दाँतों को बीस रुपये में उखाड़ डाला गया और चौंसठ रुपये में नकली दाँत स्थानापन्न कर दिए गए। फिर मामूली आदमी को तो दाँतों के डॉक्टर उसी प्रकार उल्लू बनाते हैं जिस प्रकार सुन्दर पत्नी से नत्थी ग्राहक को बजाज उल्टे उस्तरे से मूँडता है। ये डॉक्टर, ग्राहक न मिलने पर अपने मित्रों, रिश्तेदारों और कभी-कभी अपने परिवार वालों के मजबूत दाँतों पर ही प्रेक्टिस करते रहते पाये जाते हैं।

कोई-कोई डॉक्टर तो समाज से अपनी आवश्यकता का दावा साहित्यिक शैली में करता है। वह कहता है कि रदनावली एक कविता है जो प्राचीन युग में (राक्षसों को छोड़कर) बड़ी सुन्दर होती थी किन्तु आज प्रयोगवादी कविता की भाँति अनगढ़ दोषों से भर उठी है। प्राय: दाँत छन्दोबद्ध नहीं उगते। किसी के दाँत परस्पर अमेरिकन फ्री स्टाइल में कुश्ती लड़ रहे होंगे तो किसी के होंठों के किनारों पर हाथी की तरह दो दाँत बाहर निकलकर कन्नी दाब रहे होंगे। किसी के सामने के चार या छ: दाँत बाहर निकलकर नीचे के होंठ रूपी बरामदे का छज्जा-सा बना लेते हैं। एक महोदय के तो सामने के दो दाँत मुखसागर से निकल ऊपरी होंठ के मैदान को पार कर नासिका-गिरि की दोनों गुहाओं में प्रवेश कर गए थे, जैसे प्राकृतिक भूगोल पलट गया। किसी-किसी का अकेला दाँत ही विभीषण की तरह फूट निकलता है। वह युग गया जब बिम्बाफलों पर मोती जड़े होते थे या हँसने पर अनारदाने खिल जाते थे। आज तो होंठ ही खरबूजे-तरबूजे के दल-से होते हैं और दाँत तो काशीफल के बीज से भी अधिक बदशकल और विस्तृत क्षेत्रफल के देखने में आते हैं। दाँतों का डॉक्टर आपको विश्वास दिलाकर रहेगा कि आजकल दाँतों की वही दशा है जो पहली बार कलम पकड़ने वाले बच्चे से बोर पतला होने के कारण 'आ' के डंडे की हो जाती है।

सड़क पर या रेल के डिब्बे में जो कम्पनियों के पेटेन्ट मंजन बेचते हैं, वे रूमाल से ढककर उँगली छुलाते नहीं कि दाँत पके आम-सा उसी प्रकार गिर पड़ता है जिस प्रकार मरने या चुनाव हार जाने पर मंत्री अपदस्थ हो जाता है। किन्तु ये डॉक्टर बड़ा कष्ट देते हैं। पेटी के चोबे की तरह दाँत को अगल-बगल से ठोक-पीटकर ढीला कर लेते हैं, फिर दम लगाकर खींचते हैं। एक मरीज वेदना से रो पड़ा तो डॉक्टर ने दुगुने पैसे चार्ज किए। कारण पूछने पर फर्माया कि मरीज इतने जोर से क्यों चीखा कि दूसरा मरीज उठकर चला गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खजूर और ताड़ के वृक्षों, गेहूँ और जौ के पौधों अथवा खद्दर वेश में छिपे गुण्डे और लीडर की तरह ये असली और नकली दाँत में अन्तर नहीं कर सकते। एक रोगी ने दाँत निकलवाने को मुँह खोला तो डॉक्टर ने सुन्दर विनोद किया, "मुँह इतना क्यों फाड़ते हो, मैं तो बाहर बैठकर ही निकालता हूँ।" रोगी झेंपा तो सही किन्तु वह भी योजनावद्ध था। उसने तुरन्त अपना दाहिना हाथ मुँह से लगाया और बत्तीसी निकालकर डॉक्टर के सामने कर दी। अब डॉक्टर के झेंपने की बारी थी। 'एक हाथ में बत्तीसी निकल पड़ेगी' मुहावरे का आधार नकली दाँत अवश्य रहे होंगे, इसमें ग्राम भर भी गुंजाइश नहीं है।

शीघ्रता करने में भी ये डॉक्टर शैतान होते हैं। एक बार एक महाशय अपनी छटपटाती श्रीमती को साथ लाए और दाँत के डॉक्टर से बोले, "डॉक्टर साहब, रात भर न सोयी है और न किसी को सोने दिया है। मुझे मालूम है कि इन्हें पहला बच्चा होने में भी इतना कष्ट नहीं हुआ था। कृपया यथाशीघ्र सामने का दाँत निकाल दीजिए।"

डॉक्टर ने आश्वासन दिया, श्रीमतीजी ने मुँह फाड़ा और सामने के दाँत जमूड़े के शिकंजे में। श्रीमतीजी ने बुरी तरह बिलखना आरम्भ किया। कुछ 'ना'-'ना' कहा भी मगर पति महोदय बोले, "डॉक्टर, इसकी मत सुनो, रोने-चीखने दो, फिर तो आराम मिलेगा।"

गरज यह कि जब-जब श्रीमतीजी ने कुछ कहना चाहा, पतिदेव के संकेत पर डॉक्टर ने कोई चिन्ता नहीं की। निदान दाँत उखड़ते ही लहू-लुहान श्रीमती बेहोश हो गईं। जब होश में आयीं तो पतिदेव से कराहते हुए बोलीं, "दर्द वाले दाँत से तो डॉक्टर ने हाथ भी नहीं लगाया।" और पुनः बेहोश हो गईं।

अधिक काम न होने से ये डॉक्टर बीमा के एजेन्ट होते हैं या दार्शनिक। कंजूस भी हो जाते हैं और जल्दबाज भी। एक ही मरीज से सारा दिन का खर्चा उसी प्रकार निकालने की ताक में रहते हैं जिस प्रकार वकील एक ही मुकदमे से घर का व्यय वर्षों चलाता है। या तीन कन्याओं के दहेज में देने के लिए एकमात्र पुत्र की शादी में ढेर-सा दहेज लेने की चेष्टा किसी बाप की होती है। एक बार एक डॉक्टर ने दाँत उखाड़ा तो आनन्दविभोर हो चीख उठा, "अरे, तुम्हारा दाँत तो चौबीस कैरिटी सोने का है!"

"जी नहीं!" रोगी ने शान्ति से शंका-समाधान किया, "आपने मुँह से दाँत नहीं, काज से बटन उखाड़ लिया है।"

दूसरी बार जब वह दाँत उखाड़ने को हुआ तो रोगी कष्टमय होकर चीख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उठा । डॉक्टर ने आश्चर्य प्रकट किया, ''अभी तो तुम्हारे दाँत से हाथ भी नहीं लगाया।''

''यह तो ठीक है किन्तु अपना संगीन लगा तीन क्विंटली जूता तो हटाइये, पैर का अंगूठा पिसा जा रहा है !'' रोगी ने कहा ।

मुँह में दाँत का वही महत्त्व है जो पेट में आँत का और रैकिट में ताँत का होता है । दाँत उखड़ने का व्यय दाँत पर उसी प्रकार निर्भर नहीं करता जिस प्रकार लड़की की शादी का व्यय लड़की पर निर्भर नहीं करता । या तो वर के हिसाब से व्यय होता है या बाप की हैसियत के अनुसार । इसी प्रकार गली के रामसिंह से सुभाष रोड का डॉक्टर जे० पी० फुलश्रेष्ठ अधिक फीस लेगा या मटरू खोमचेवाले से प्रोफेसर विनयकुमार की जेब अधिक हल्की हो जाएगी ।

इन दाँतों के डॉक्टरों के पास अन्य मर्ज के मरीज को भूलकर भी नहीं जाना चाहिए वरना वही दशा होगी जो हिन्दी माध्यम से लिखी उत्तर-पुस्तिकाओं की अंग्रेज़ी-दाँ परीक्षकों द्वारा होती है । आँखों का मरीज जब पहुँचेगा तो दाँतों का डॉक्टर हमेशा यही कहेगा, ''जब मैं किसी के दाँत में दर्द देखता हूँ तो उसे निकाल लेता हूँ । आपको भी मैं यही सलाह दूंगा ।''

सौन्दर्य में गर्व के समान सच यह भी है कि जनरल-स्टोर की भाँति सर्वरोग-चिकित्सक के पास भी दाँत उखड़वाने नहीं जाना चाहिए । एक बार ऐसा हुआ कि दाँत उखड़वानेवाला और बुखार में तपा हुआ रोगी, अनुशासनहीनता और छात्र-जीवन की भाँति नत्थी हुए एक डॉक्टर के पास पहुँचे । डॉक्टर जब दाँत उखाड़ने वाले जमूड़े आदि हथियार लाया तो दाँत उखड़वाने वाला भय के कारण, अध्यापक से अध्ययन की भाँति रफूचक्कर हो गया । आफत का मारा बुखार का रोगी बैठा रहा । डॉक्टर ने आते ही मुँह खोलने का आदेश दिया । बेचारे मरीज ने जो मुँह खोला तो सामने का दाँत जमूड़े ने जकड़ लिया । अब मरीज कुछ कहना चाहे तो भी न कह सके । दाँत को जमूड़ा ऐसे मरोड़ रहा था जैसे भीगी धोती निचोड़ी जाती है । रोगी बहुतेरा रोया, चीखा, अनेक ऐसे दर्द भरे अंग-संचालन किए जिनसे निरीक्षण के समय शिक्षा-संस्था की बनावटी सफाई के समान स्पष्ट था कि वह दाँत उखड़वाने नहीं आया है और उसके सुन्दर दाँत को उखाड़कर भयंकर गलती की जा रही है । किन्तु कर्तव्य पर डटे डॉक्टर ने 'बस-बस अभी निकला' करते-करते एक झटके के साथ म्यान से तलवार की तरह दाँत निकालकर ही दम लिया ।

रक्त की धार बह निकली । डॉक्टर ने हथियार सँभालते हुए कहा, ''और वह बुखारवाला मरीज कहाँ है ?''

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थर्ड क्लास कम्पार्टमेंट

टिकट के लिए पुरुषों की वह वक्र रेखा वैसी ही प्रतीत होती थी जैसे चीनी के लिए चींटियों की। अन्तर केवल इतना था कि चींटियां स्व-अनुशासित, विनयशील एवं शान्त होती हैं जबकि ये मानव सिपाहियों द्वारा अनुशासित, अविनयशील एवं 'कौन है', 'आगे सरको', 'बीच में कौन घुस आया' आदि उच्च स्वरों के साथ परस्पर धक्कों के सहारे अग्रसर होनेवाले 'कौन श्रेष्ठ' है। सोचते हुए हमने भी उस विशेष रेखा में उम्मीदवारी के लिए अपना स्थान सुरक्षित करना चाहा और कुछ सफल भी हो चुके थे कि पीछे से एक ताली बज उठी और साथ ही एक अजीब-सी आवाज़, "अए-हए ! पीछे आये हो बाबूजी, कायदे से पीछे ही खड़े हो जाइये।"

हम मुड़े तो चक्कर में पड़ गये । हटना चाहते नहीं थे । अतएव कहनेवाले से कुछ-न-कुछ कहना आवश्यक था, पर कहते कैसे ? न तो उन्हें साफ-साफ 'बहन जी' ही कहा जा सकता था और न स्पष्ट रूप से 'भाई साहब' ही। वाह रे ब्रह्मा की कला का दिवालियापन ! काश कि समाज के यह शिखण्डी ही नियामक होते ! कम से कम पुरुष और नारी के अधिकार बिना किसी पक्षपात के सुरक्षित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तो रह पाते ! हम पुरुष और नारी के इस अद्भुत सन्धि-स्थल की उधेड़बुन में ही पड़े थे कि 'गाड़ी छूटने में केवल पाँच मिनट' की सामयिक चेतावनी सुन दुम दबाकर इस प्रकार भागे जिस प्रकार प्रश्न-पत्र बाँटने से पाँच मिनट पूर्व परीक्षार्थी का किताबी ज्ञान भाग जाता है।

प्लेटफार्म पर पहुँच, नाक की सीध ले, पुराने थान की तरह भीड़ को चीरते हुए सामने के डिब्बे में (यद्यपि बारीक स्वरों से पर्याप्त विरोध हुआ) घुस ही गये। क्षण भर में ऐसा गोलमाल उठा मानो चिड़ियों के गोल में बाज आ जाए।

वह जनाना डिब्बा था। हम विद्युत्गति से उल्टे पैर हो गये।

स्यात लंका-प्रवेश में हनुमानजी को भी इतना परिश्रम न उठाना पड़ा होगा जितना कि हमको उस थर्ड क्लास कम्पार्टमेंट में प्रवेश करने पर उठाना पड़ा। यात्री सिर के बल खिड़कियों से ठूंसे जा रहे थे। उनका सिर पहले खिड़की में डाल पीछे से दुलत्ती पकड़ डिब्बे में उसी प्रकार ठेल दिया जाता था जिस प्रकार विवाह की भट्ठियों में झटके के साथ लड़कियाँ अथवा लड़कियाँ। एक खिड़की के पास जा हमने धीरे से, बड़ी नम्रता के साथ कहा, "क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?"

"स्थान नहीं है।" उत्तरस्वरूप एक बारीक आवाज़ आयी।

डिब्बे को दोनों आँखों से कई बार देखा, मर्दाना ही था। हमने कई सज्जन ऐसे देखे हैं कि वे जितने मोटे होते हैं, उनकी आवाज़ उतनी ही बारीक होती है। क्योंकि आवाज़ मीठी भी थी अतः निश्चय हो गया कि कोई मोटा हलवाई खिड़की रोके है।

"जी, जरा दिल में जगह हो तो···" हमने कहा और "डिब्बे में स्थान होते कितनी देर लगती है" जोड़ इस रस-भरे किन्तु अर्थपूर्ण वाक्य को पूरा करते कि खिड़की खुली। इससे पहले कि हम 'धन्यवाद' दे चढ़ने का उपक्रम करें, सामने मोटे हलवाई की जगह एक देवीजी ने, काजल द्वारा बनाये गये काननचारी दीदों से मढ़े हुए शीशों को हटाकर, शून्य में भौंहें लटकाते हुए लिपस्टिक पुते अधर वृत्ताकार फैला दिये, "आपको शर्म नहीं आती यह बात एक महिला से कहते हुए !"

"यह तो भीड़युक्त डिब्बे में चढ़ते समय साधारणतया कहा ही जाता है।" हम कहना चाहकर भी न कह सके और एक ओर खिसक आये।

येन केन प्रकारेण हम भी सिर के बल, दूसरी ओर से उसी डिब्बे में झटके के साथ ठूंस दिये गये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिस समय हम डिब्बे में गिरे, हमारे हाथ बीच की सीट पर बैठे एक महाशय की गर्दन के चारों ओर थे। हमारी दोनों असहाय टाँगें दीवार से सटे एक सज्जन के कन्धों पर नसेनी के डण्डों के समान विराज रही थीं। सहसा उन सज्जन ने दयापूर्वक दोनों टाँगों को झटके के साथ घुमा दिया। हमने गर्दन कसकर दाब ली। अब जैसे हम कोई अर्द्धव्यास थे और उन महाशय की गर्दन केन्द्र। टाँगें चक्कर खातीं एक देवी की गोद में पड़ीं। गोद में सोया बच्चा ठोकर खाकर चीख उठा और वे देवी काली के रूप में हुंकार उठीं, "हमारे लग्गई, शर्म नहीं आती, डिब्बे में चढ़ना नहीं आता, लल्ला रो उठा।"

"विश्वास रखिये···" हम जिन महाशय की गर्दन को खुण्टी बनाये थे, उनकी चटपटी गालियों को सुनते और मोटे-तगड़े हाथ से (उनकी आँखें बाहर निकली-सी पड़ रही थीं और आवाज़ भी मन्द हो चली थी) अपने सिर को बचाते हुए बोले, "भविष्य में हम ऐसा प्रयत्न करेंगे कि न आपके लगे और न लल्ला रोये।"

हम अब भी उन महाशय की गर्दन से झूल रहे थे कि एक जोरदार धक्का आया। सहसा लगा कि देह से फूल टकरा गये हैं। आँखें खोलीं तो कॉलेज गर्ल! 'पैसे कम होंगे'—हमने सोचा।

"आपका नाम क्या है?" जैसे उस बोली से कानों में लेमनेड टपक पड़ा।

"जी, प्राणवल्लभ।" हमने शरारत से गिड़गिड़ाते हुए कहा जैसे कोई अपराध कर रहे हों।

"प्राणवल्लभ!"

"जी कहिये, क्या आज्ञा है?" मानो हम घर में अपनी श्रीमतीजी से कह रहे हों।

"चलिये, आप बड़े वो हैं?" यद्यपि हम इसी उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे, पर हमने देखा कि उसका गुलाबी चेहरा क्रोध से टमाटर हो रहा है, "आपको शर्म नहीं आती?"

"आती है, जी।"

"फिर?"

"चली जाती है, जी।"

"आपकी बहनें भी तो आपको इसी नाम से पुकारती होंगी?"

"जी, नहीं। यह नाम तो दूरदर्शी पंडित ने अपरिचितों के लिए रखा था। जैसे माँ मुझे बेटा कहती है उसी ढंग से बहनें मुझे भैया कहती हैं।" हमने बेशर्मी से सच्ची बात कह दी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्तर में वह और भी लाल हो गई, मगर इस बार वह नारी-सुलभ लज्जा से हँसी। सहसा रेल चलने का धक्का लगा और सधने के लिए उसने हमारी बाँह थाम ली।

हमारी हानि अब तक केवल इतनी हुई कि गर्दन से लिपटे रुमालराम खिसक पड़े, साथ ही कमीज़ की जेब दम तोड़ गई। फलत: एक फाउण्टेनपैन और टिकट के दाम प्लेटफार्म पर ही शोर मचाते अन्तर्धान हो गये। इससे पहले कि हम कुछ समझें और करें, गाड़ी ने विश्वासघात किया। हम विवश हो नवविवाहिता अवगुण्ठनवती वधू के समान चुप रह गये।

यदि आपने कभी ब्लैक-मार्केटियर का बोरियों से भरा गुप्त गोदाम देखा हो या फिर किसी उदासीन कबाड़िये का कबाड़खाना तो आप सरलता से अनुमान लगा सकते हैं कि उस डिब्बे में हम कितने थे और किस दशा में थे। एकता और संगठन का अपूर्व दृश्य था।

धक्कों के साथ समझौता कर, आराम अनुभव करते हुए जैसे ही यात्रीगण स्थिरचित्त हुए कि, "हाय मेरी पोटरी !" एक बुढ़िया ने करम ठोका।

"अरे, वो कहाँ रह गये ?" एक कामिनी लजा उठी।

"दादी, चाचा, नरेन्द्र, शीला, बक्स एक, दो···" एक साहब ने नग और अदद गिने।

"चश्मा दूसरा लेना पड़ेगा।" एक महाशय ने बालों को झटका दिया।

किसी की कमर छिल गई थी तो किसी के पैर में मोच आ गई थी। कोई कलाई सहला रहा था तो कोई गर्दन को झटके दे-देकर सीधी कर रहा था। किसी की साड़ी चिर्र हो गई थी तो किसी की पैंट में दरार आ गई थी। किसी की नई चप्पलें टूट गई थीं तो कोई एक सैण्डिल को रो रहा था। एक कसे वस्त्रों को ढीला कर रहा था तो दूसरा ढीले वस्त्रों को कस रहा था। एक इधर सिकुड़ा था तो दूसरा उधर लटका था। झटके के साथ जो हमारा सिर टकराया तो आँखों के सामने पट्टी आ गई, 'केवल अड़तालीस यात्रियों के लिए', किन्तु डिब्बे में समाने वाले कई गुना थे। एक जन-समुद्र था जो पीछे छूट गया, एक लहर थी जो डिब्बे में समाकर रह गई। सौभाग्यशाली कौन ? डिब्बे में बीड़ी का धुआँ और पसीने के पनाले चल रहे थे, पानी की कड़ी माँग थी, बच्चों को लघु और दीर्घ शंकाएँ उठ रही थीं मगर समाधान के नाम पर रास्ते बन्द थे। एक वृद्ध पहले ही शौच-गृह में जा फँसा था जो चाहने पर भी निकल नहीं पा रहा था, भीड़ तथा सामान के कारण द्वार खुल ही नहीं सकता था। गर्दन घुमाई तो देखा कि अनेक यात्री केवल डण्डों को पकड़े हुए लटके हैं। हमने भली प्रकार समझा कि उन सभी के पास टिकट

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

होना सम्भव था और अन्दर हम जैसे कई बेटिकट थे ।

इसका दोषी कौन ?

यात्री, सरकार या परिस्थिति ?

'गिर गया', 'मर गया' 'टकरा गया' की चीख-पुकारों से डिब्बा भर गया । गाड़ी रुक गई । एक बाईस-तेईस वर्ष का बाँका जवान खम्भे से टकरा गया और दम तोड़ दिया । छाती फट गई थी, सिर खोखला हो गया था । पलकों की चन्द झपकनों में 'हाय बीरन ! हाय लाल !' की करुण चीत्कारों से वातावरण सिहर उठा । एक तरुणी अलग पछाड़ें खा रही थी । शायद मृतक की पत्नी थी ।

बेचारा कुटुम्ब को गंगा-स्नान कराने ले जा रहा था । प्रत्येक दर्शक की आँखें गीली थीं । हमने अनुभव किया कि कन्धे पर किसी का कोमल हाथ रखा है । देखा, वही कॉलेज गर्ल थी । भीगे स्वर में बोली, "आप क्या इस समय भी कोई मज़ाक ढूंढ़ रहे हैं ?"

उत्तर में हमने अपना गीला चेहरा उधर मोड़ा । उसने देखा और कन्धे पर हाथ पुनः दबा दिया ।

"थोड़े से पैसों के लिए जान दे दी, बेवकूफ !' एक अप-टू-डेट जैण्टिलमैन मुँह से धुआँ छोड़ते बोले, "थर्ड क्लास में ही मरते हैं !"

"यू आर करैक्ट ।" फर्स्ट क्लास से ट्रेवल करनेवाले एक अन्य साहब ने योग दिया ।

"अगर थर्ड क्लास के सभी यात्री फर्स्ट क्लास में मरें तो क्या फर्स्ट क्लास थर्ड क्लास न हो जाए ?" वह लड़की बोली ।

"ढीट, कमीने, कुत्ते !" हमारे मुख से निकला ।

"मुर्दे कहीं के !" वह लड़की पुनः बोली, "फर्स्ट क्लास में जीवन नहीं, वास्तविकता नहीं, बनावट और निष्ठुरता है ।"

गाड़ी चल दी । गंगा-स्नान के इस दुखद परिणाम पर हम सोच रहे थे कि एक बूढ़े मियाँ अपनी सफ़ेद दाढ़ी पर आँसू ढुलकाते कह उठे—

"जानेवाले चल बसे दुनिया की बस्ती छोड़कर,
रोनेवाले एक दिन क्या उम्र भर रोया करें ।"

एक अन्य महाशय ने अपनी पगड़ी उतारी, बोले, "यह रोना नहीं है साहब, भूल जाने की अनूठी कोशिश है । देखिये न—

बीते को भूल जाने का भी कैसा ढब अनूठा,
रोते हैं याद में यों आँसू बहाये जाते हैं ।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"यदि आंसू न हों तो इन्सान पागल हो जाए।" एक ग्रामीण नौजवान ने कहा।

"हाथी जैसी झूमती जवानी थी।" एक बुढ़िया ने आह भरी।

"मगर मौत तो आंख मींच के अर्राती है।" एक दूसरी वृद्धा ने कहा।

"जाना है उस पार बंदे !" एक साधू चिमटा बजा उठा।

"यही तो एक सत्य है दुनिया का, और क्या ?" एक कम अवस्था की स्त्री ने तनिक धीरे से कहा।

"फिर भी रुकने या ठहरने से काम नहीं चलता। जीना पड़ेगा और आगे बढ़ना ही होगा।" किसी युवक ने कहा।

और हम मनन कर रहे थे कि इस थर्ड क्लास कम्पार्टमेंट में कितने फर्स्ट क्लास इन्सान भरे पड़े हैं। उस कॉलेज गर्ल का हाथ अब भी हमारे कन्धे पर था और वह भीगी मुसकान मुसकरा रही थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन चंगा तो कठौती में गंगा

महंगाई और अहसान फरामोशी के इस जमाने में यार लोग गाली के अलावा शुभ कामनाएं और बधाई देने में कोई कसर नहीं छोड़ते। घर नहीं आ सके तो रास्ता चलते दे मारा। बुजुर्ग भी पुराने जमाने के फिक्रैत होते हैं। वे भी इसी तर्ज पर बद्दुआ या आशीर्वाद देने में कोई कंजूसी नहीं करते। अस्तु, किसी कारणवश जब हम अपने दोस्त साधूराम के सुपुत्र की शादी में शामिल नहीं हो सके तो दोस्त को बधाई और नव-दंपति को आशीर्वाद देने उसके घर जा धमके। ड्रॉइंगरूम दहेज के सामान से पटा पड़ा था। पंखा, सोफा, ट्रांजिस्टर, रेडियो, टेप रिकॉर्डर, स्टील के बर्तन, सेफ, टेलीविजन, फ्रिज और न जाने क्या-क्या था। जैसे पकड़े गये तस्करी माल का किसी नये थाने में प्रदर्शन हो रहा था। मगर यह क्या ? नव-वधू एक कोने में सिसक रही थी। हम लपककर अंदर पहुंचे तो आंगन में वर को छोड़कर समस्त परिवार बहू की भांति मुंह लटकाये बैठा था।

हमें मालूम था कि शादी अस्सी हजार की हुई थी। पचास तोले के तो स्वर्ण-आभूषण ही थे। हमें वे मुद्रायें जानी-पहचानी लगीं। जैसे कहीं बार-बार देखी हों। हां, याद आया, ये चेहरे श्मशान भूमि पर पाये जाते हैं जब मृतक के घरवाले रोते-रोते थक जाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन चंगा तो कठौती में गंगा

हमारा मूड बरसात के बाद पिच की तरह खराब हो गया। ड्राॅइंगरूम में नववधू सिसक रही थी, सामने पूरा परिवार शोकमग्न था और वर महोदय इतवार होने पर भी गैरहाजिर थे। रहस्यमय दृश्य का सारा भेद खुल गया। हमने अपना चेहरा गमगीन बनाया और भरे गले से बोले, "साधूराम, जो हो गया सो हो गया। शादी-ब्याह पर बिजली के टैंपरेरी तारों से ऐसी दुर्घटनाएं आम हो गई हैं। अब धैर्य रखो। ईश्वर ने यही खैर की कि सब कुछ घर आकर हुआ, वरना कभी-कभी ऐसा होता है कि बारात विदा हुई और दूल्हे की कार ट्रक से टकराई। कितना प्यारा लड़का था!"

"क्या बक रहे हो!" साधूराम को सहसा करेंट मार गया और हमें निगलने के लिए दर्जनों आंखें घूरने लगीं।

"फिर आप लोगों के मुंह फूकनों-से क्यों सिकुड़े हुए हैं?"

"शादी में स्कूटर नहीं मिला, इसलिए।" साधूराम ने सच बात कह दी।

अब हम गर्म दूध-से उबल पड़े, "साधूराम, तुम जिंदगी-भर सुखी नहीं रह सकते। लड़कीवाले ने तुम्हें क्या नहीं दिया? जेवर, नकदी, दहेज और खूबसूरत पढ़ी-लिखी लड़की; और तुम भिखारी ही रहे। अरे, बिना डाका डाले और अपहरण किये इतना सब कैसे हाथ लग सकता है? साधूराम, तुमने आदमी की कदर नहीं की। ड्राॅइंगरूम में लीद करनेवाले तुम गधों को लड़कीवाले ने नंदन-वन में ठहराया। पारिजात-पुष्पों से स्वागत किया और कल्पवृक्ष से तुम्हारी खातिर की। बेचारी कन्या के भाग्य फूट गये। साधूराम, तुम इंसान नहीं, हैवान हो! अगर अभी तक नहाये नहीं हो तो चुल्लू-भर पानी में डूब मरो। मैं चला!"

"अरे, कहां चले? सुनो तो।" साधूराम चिल्लाया मगर हम टूथपेस्ट-से एकदम बाहर निकल आये।

सड़क पार की तो प्रिय छात्र मीतल मिल गया। अध्ययन को प्यार और रूढ़ियों पर वज्र प्रहार करनेवाला। गुलाबी जाड़ों की सुहानी धूप-सा खिला पड़ रहा था। पट्ठे ने परसों सर्विस ज्वाइन की और कल कोर्ट में शादी। दहेज में कुछ भी लेना अस्वीकार कर दिया तो स्वयं को अपमानित समझ जहां ससुर साहब शादी में शामिल नहीं हुए वहां लोभी बाप ने उसे घर से ही निकाल दिया।

"इस शादी से क्या मिला?" किसी ने कोर्ट में व्यंग्य किया तो मीतल मुस्कराया था, "मेरी पत्नी को नहीं देखते? जहां रहेगी, उजाला कर देगी! बिजली का सारा खर्चा बच गया!"

"कहो मीतल, प्रसन्न हो न?" हमने पूछा तो मीतल विनम्रता से झुक गया, "हां, सर! मन चंगा तो कठौती में गंगा।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्नी शरणं गच्छामि

हमने मीतल को छाती से लगा लिया। कहां साधूराम और कहां मीतल ? कहां यह आग में तपा हुआ कुंदन और कहां वह ज़ंग लगी पुरानी पीतल !

जिस प्रकार गुंडे और चोरबाजारिये शहर में दंगा होने पर निर्भर करते हैं उसी प्रकार सुख और स्वास्थ्य मन के चंगा होने पर। एक बार क्लीनिक में हमारे सामने, फैशन में डूबा, एक मरघिल्ला युवक आया। डॉक्टर ने कलम उठायी, "नाम ?"

"प्रीतम।" युवक पिल्ले की तरह मिमियाया।

"उम्र ?"

"बीस साल।"

"क्या तकलीफ है ?"

"कई दिनों से बुखार रहता है, खांसी भी है और रातभर नींद नहीं आती। पसलियों में दर्द रहता है, सिनेमा में बालकनी के लिए सीढ़ियां चढ़ता हूं तो हांफ जाता हूं।"

डॉक्टर ने उसकी जांच की, "मक्खन कौनसा लेते हो ?"

"अमूल।"

"दूध कितना पीते हो ?"

"जितना चाय में पड़ता है।"

"फल ?"

"फ्रिज में रखे सेब और संतरे बहुत पसंद हैं।"

"प्रिय लेखक कौन है, तुम्हारा ?"

"गुलशन नंदा।" युवक में जैसे जान आ गयी।

"और हीरो ?"

"अभिताभ बच्चन !" युवक उछल पड़ा।

"कभी उगते हुए सूरज के दर्शन किये हैं ?"

"जी, काफी दिनों से नहीं देखा।" युवक थर्मामीटर के पारे-सा पूर्ववत् संकुचित हो उठा।

डॉक्टर ने नुस्खा लिख दिया, "उधर से दवा ले लीजिये। चिकनाई और मिर्च-मसाले छोड़कर सब चीज खाएं, सुबह की हवा सबसे ज्यादा। तीन दिन बाद आकर बताइये कि सूरज का रंग निकलते समय कैसा होता है ?"

हम कुछ पूछना चाहते थे कि एक तंदुरुस्त ग्रामीण तरुण आया। डॉक्टर ने पुनः कलम उठाई, "नाम ?"

"जी, महावीर।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन चंगा तो कठौती में गंगा

"उम्र ?"

"अठारह बरस।"

"सुबह क्या खाते-पीते हो ?"

"जी, हवा खाता हूं और मठा पीता हूं।"

"फल कौनसा पसंद है ?"

"खीरा, ककड़ी, तरबूजा···"

"मैं फल पूछ रहा हूं।"

"जी, काशीफल।" महावीर अकारण घबड़ा गया।

"डॉक्टर ने हंसी रोकी, "किताब कौनसी पढ़ते हो ?

"रामायण और महाभारत।"

"सिनेमा देखते हो ?"

"बहुत कम।"

"तुम्हारा हीरो कौन है ?"

"सतपाल पहलवान।" महावीर ने कुर्ते की बांह ऊंची की।

"क्या तकलीफ है ?"

इस बार महावीर चौंककर हंस पड़ा, "डाक्टर साहब। मैं बीमार नहीं हूं। मां बीमार है मेरी। असल में जब से पिताजी डाकुओं की गोली से मारे गये तब से मां ढंग से खाती-पीती नहीं हैं। क्या करें डाक्टर साहब ?"

महावीर की आंखें भर आईं। डाक्टर ने गंभीर होकर कहा, "मां को लिवाकर लाओ। दवा से अधिक उसे समझाने की आवश्यकता है।"

महावीर चला गया तो डॉक्टर मेरी ओर मुखातिब हुआ, "मन चंगा नहीं तो दवाएं कुछ नहीं कर सकतीं।"

हमें ध्यान आया कि प्रीतम की कोमल कलाई से कीमती घड़ी खिसकी पड़ रही थी। उसे कोई अभाव नहीं, किंतु उसकी हंसी को कीड़ा लग चुका है। और महावीर ? मामूली खाते-पीते किसान का लड़का, हंसता है तो लगता है जैसे पहाड़ी का झरना सामने बह रहा है।

कबीरदास कहते हैं कि संतोष-धन के सामने सभी धन धूल के समान हैं। हमारा कथन है कि यह सतोष-धन 'कठौती में गंगा' ही तो है जो मन चंगा होने पर हाथ आता है। एक सेठजी जन्म से ही क्रिकेट-प्रेमी हैं। विवाह के बाद उन्होंने इसका पक्का प्रमाण दिया है। कलैंडर के सामान मुफ्त चले आने वाले अपने लड़कों के नाम क्रिकेट के खिलाड़ियों पर रखे हैं। इस प्रकार उनके आंगन में अमरनाथ, विजय मर्चेंट, उम्रीगर, हजारे आदि आठ खिलाड़ी खेलना सीख रहे हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमने एक दिन पूछा, "पूर्ण विराम कब लगेगा ?"

"देखो भैया," सेठजी हलके-से हंसे, "जब भगवान साथ दे रहा है तो मदन लाल और ब्रजेश पटेल तक पैदा करके मानूंगा।"

"संभाल लोगे पूरी टीम को ?" हमने पुनः प्रश्न किया।

"सो तो ससुरे सभी अबारा हैं, मगर जब तक एक लक्ष्मी न आए...।"

"सागर-मंथन चलता ही रहेगा।" हमने धीमे-से कहा और महेंद्र मास्टर को जाकर शाबाशी दी जिसने लगातार तीसरी लड़की होने के बाद ऑपरेशन करा लिया था। उसके विचार में लड़के और लड़की में कोई फर्क नहीं है। वह लड़कियों को ही खूब पढ़ाना और कुछ बनाना चाहता है।

कोई सूर्य के समान निष्पक्ष विचार करे तो इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि परिश्रम, कर्त्तव्य और त्याग सब 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' के ही बांके सपूत हैं। इसी से प्रेरणा पाकर भरत अयोध्या के राज्य को महतरानी का घड़ा समझते हैं और भामाशाह अपने पूर्वजों की सारी कमाई राणा प्रताप को यों सौंप देते हैं जैसे गुल्ली-डंडा वापस कर दिये हों। इसी कारण कृष्ण विदुर के घर साग खाकर डकार लेते हैं और महात्मा गांधी भंगी बस्ती में ठहरकर अंगड़ाई। शैशव की किलकारी, कैशोर्य का अल्हड़पन, यौवन की भावुकता और बुढ़ापे का ठहाका, सब चंगे मन की शाखा पर खिलनेवाले ऐसे फूल हैं जो प्रतिकूल मौसम में भी झूमना नहीं छोड़ते। चंगे मन की कठौती में गंगा निश्चय ही वंदनीय है। यदि ऐसा न होता तो अमीर और बादशाह फकीरों की चिलम न भरते।

प्राचीन काल की बात है कि एक बार एक राजा ऐसा बीमार पड़ा कि संसार-भर के वैद्य-हकीम हार मान गये और रोग में बाल बराबर अंतर नहीं आया। अंत समय समीप जान राजा ने खजाने के द्वार खुलवा दिये। भोजन, वस्त्र या स्वर्ण, जिसको जिस चीज की जितनी आवश्यकता हो, ले।

आज्ञा का पालन होने लगा। तभी एक महात्मा ने आकर राजा से कहा, "यदि कोई सुखी व्यक्ति अपने हाथ से दवा पिलाये तो आप निरोग हो जायेंगे।"

राजा की आंखों में चमक आ गई, "हमारे दरबार में किसीको क्या कमी है, एक से एक सुखी प्राणी हैं, कोई भी दवा पिला देगा।"

किंतु शीघ्र ही राजा को पता लग गया कि सुख का संबंध भौतिक सम्पदा से नहीं है। बड़े से बड़ा दरबारी किसी न किसी अभाव से दुखी है। राजा ने चारों दिशाओं में सिपाही दौड़ा दिये, "सुखी व्यक्ति की तलाश करो।"

प्रत्येक शाम सिपाही अकेले लौटते और राजा की निराशा अंधकार-सी घनी हो जाती। अब उसे अपना जीवन-दीप बुझने में कोई संदेह नहीं रहा। तभी एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाम सिपाहियों ने एक थके हुए मजदूर को देखा जो भद्दे और ऊंचे स्वर में गीत गाता, खेतों में डूबी पगडंडी पर मस्त चला जा रहा था। बड़ी मुश्किल से सिपाहियों ने उसे रोका, "अबे, खाना, कपड़ा, रुपया, क्या कुछ भी नहीं चाहिए तुझे? लोगों का तांता लगा हुआ है, बड़े-बड़े तीसमार खां वेश बदलकर पंक्तियों में खड़े हैं।"

"क्या तुमने मुझे इसीलिए रोका है ?" मजदूर नाराज हुआ।

"और क्या ? कंधे पर पोटली में क्या है ?"

"नाज है, मजदूरी के रुपयों से खरीदकर लाया हूं। घर पहुंचूंगा तो घरवाली इसे छानेगी, फटकेगी, पीसेगी, रोटी बनायेगी, तब बाल-बच्चों के साथ खाना खाऊंगा।" कहकर मजदूर ने पैर आगे बढ़ाया तो एक समझदार सिपाही ने उसे राजा के रोग के बारे में बताया और मिन्नत-खुशामद के बाद उसे राजा के पास ले गया। सारा हाल सुना तो महामात्य प्रसन्न हो उठा और उसने मजदूर से दवा पिलाने की प्रार्थना की। मजदूर ने दवा दी और राजा जी उठा।

अब हम आज की घटना लेते हैं। डी० ए० वी० बालिका विद्यालय, अलीगढ़ का चौकीदार बैंक से चार सौ रुपये निकालने गया तो क्लर्क ने किसी गलतफहमी में उसे आठ हजार रुपये थमा दिये। चौकीदार ने कुछ कहना चाहा तो क्लर्क ने उसे घर-जंवाई की तरह फटकार दिया, "अपना रुपया लेकर रास्ता नाप, वर्ना धक्के देकर निकलवा दूंगा।"

चौकीदार ने अपनी मैली कमीज उतारी, रुपये बांधे, विद्यालय पहुंचा और प्रिंसिपल के सामने रुपये फेंककर रो पड़ा, "मैं कहीं का नहीं रहा, प्रिंसीपल साहब, मैं लुट गया।"

प्रिंसिपल ने पूरी बात सुनी तो अंगीठी-सी धधक उठी, "दिमाग खराब हो गया है, क्या ? कैसे लुट गया तू ?"

"मैं लुट गया, प्रिंसीपल साहब, इन रुपयों ने मेरे चंगे मन को गहरी चोट पहुंचाई है, मेरी कठौती की गंगा गंदी कर दी है। अगर मैं इन रुपयों को लेकर घर गया तो मेरी घरवाली मुझे बेईमान कहेगी, मेरे बच्चे मुझपर तालियां बजायेंगे, मेरी रूखी रोटी बेस्वाद हो जायेगी, प्रिंसीपल साहब ! मैं इन रुपयों को हाथ नहीं लगा सकता।" और वह अपना सिर पीटकर पुनः रोने लगा।

प्रिंसिपल अवाक् देखती रह गई। वह अपनी कुर्सी से उठी और चौकीदार के कंधे पर हाथ रखा, "चौकीदार ! तेरा मन कितना चंगा है रे! मैं कसम खाकर कहती हूं कि तेरी कठौती में गंगा ही नहीं बल्कि गंगा को सिर पर धारण किये साक्षात् शिव निवास करते हैं।"

प्रिंसिपल ने अपनी आंखें पोंछ बैंक को सूचना देने के लिए फोन उठा लिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिंदी साहित्य : सामान्य ज्ञान परीक्षा, १९६२

प्रथम प्रश्न-पत्र (कवि और कविता)

समय—एक घंटा उन्तालीस मिनट संपूर्णांक—१००

नोट : सभी प्रश्न अनिवार्य हैं।

१—प्रयोगवाद की दो कविताओं की रचना कीजिये। शीर्षक देना आवश्यक नहीं है। २५

२—कवि-सम्मेलन के कवि से आप क्या समझते हैं? वह कहाँ पाया जाता है? क्या वह वीर रस को हास्य के सम्पर्क में लाता है? १५

३—असफल कवि की परिभाषा दीजिये। जीवन में उसे कौन-कौनसे कार्य करने शेष रह जाते हैं? १५

४—(क) अर्वाचीन प्रयोगवादी कविता की परिभाषा क्या किसी प्राचीन कवि ने दी है? यदि हां, तो ज्यों-की-त्यों उद्धृत कीजिये। ५

(ख) निम्नांकित दो पद्य-खंडों का अर्थ न देकर प्रसंग एवं टिप्पणी का मिश्रित रूप प्रस्तुत कीजिये। १०

अ—निकटतर धंसती हुई छत, आड़ में निर्वेद।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूत्र-सिंचित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टाँगों पर खड़ा नत-ग्रीव
धैर्य-धन गदहा।

ब—सरग था ऊपर
नीचे पताल था
अपच के मारे बहुत बुरा हाल था
दिल-दिमाग भुस का, खद्दर का खाल था।

५—(क) अतुकान्त कविता के उत्पादन के कारण बताइये। १०

(ख) कवि के लिए आज किन गुणों की अपेक्षा है ?

६—अभी-अभी किस कविता-प्रकाशन को असाधारण घटना कहा गया है ? अपने मत के साथ उस घटना का थोड़े से शब्दों में विवरण दीजिये। १५

उत्तर : प्रश्न संख्या २

कवि-सम्मेलन के कवि से एक विशेष व्यक्तित्व का भान होता है जो साधारण होते हुए भी सामने आकर भीड़ का मनोरंजन करने में असाधारण होता है। उसमें कवि की मात्रा कम, संगीतकार और अभिनेता का अंश अधिक होता है। कंठ के आसनों के ये जन विशेषज्ञ होते हैं। इनके उदर में चायश्री, मुख-कमल में पान-पराग एवं अधरों पर सिगरेट विराजती है। उन्मीलित नयनों में किसी नई कवयित्री का अभिराम चित्र या निद्रा के कारण बन्द आँखों में उसी का स्वप्न छाया रहता है। भिक्षाटन, जिसका सम्मानजनक पर्याय पारिश्रमिक रखा है, इनकी जीविका का प्रमुख साधन होता है। कुछ कवि वंश-परम्परागत भी होते हैं जिनके कई-कई कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके होते हैं किन्तु पूर्वजों के दरबारी स्वभाव के कारण पान-फूल में प्रसन्नता अनुभव करते हैं।

कवि-सम्मेलन के कवि को चार स्पष्ट विभागों में बाँटा जा सकता है—श्रृंगार, वीर और हास्य के अतिरिक्त शेष सभी मौसमी रस के कवि होते हैं। सामाजिक, राजनीतिक या साहित्यिक क्षेत्र में घटी घटना मौसमी रस के कवि को अशोका-होटल की भाँति आकर्षित करती है।

श्रृंगार-रस के कवि को दूर से ही पहचाना जा सकता है। केश बड़े होते हैं और होंठ पतले। कंठ कोयल का घोंसला होता है। लवणता लिये साँवला, नहीं तो गोरा वर्ण होता है। दाढ़ी-मूँछ की जड़ मीलों नहीं मिलती। नखरे नव-वधू के-से होते हैं, बहुत मधुर गाते हैं। नयन, अधर, केश और मखमली हाथों से गाने में दिन में भी चार चाँद लगा देते हैं। इनके पास एक नया गीत होता है, शेष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभी पुराने गीत सिनेमा की चाल के होते हैं। एक बार कवि-सम्मेलन के समाप्त होने पर, श्रृंगार-रस के सुन्दर प्रोफेसर कवि से किसी दढ़ियल गँवार व्यक्ति ने कहा था, "मैं मशहूर डल्ला-स्वांग मंडली का मैनेजर हूँ। एक रात के तीन-सौ रुपये दूँगा। अंधी दुलहिन के 'पार्ट' में आप ऐसे खिलेंगे कि देखनेवाले सीने पर हाथ मारकर तड़प उठेंगे।"

जब कभी ये श्रृंगार-रस के कोमलांग कवि श्रोता सुन्दरियों को देखकर बहकते हैं तथा स्वर विकृत कर वीर-रस की भूमि में अनधिकार प्रवेश-चेष्टा करते हैं तब मुसकराने के स्थान पर इन्हें सहम जाना पड़ता है। ऐसी दशा में ये असाड़ी के ठूँठ-से उखाड़ दिये जाते हैं।

वीर-रस के कवि की पहचान उचित वेश-भूषा के अभाव में मुश्किल है। कारण यह है कि आज के युग में धनुष केवल रामलीला में दिखाई देता है। आँखें गाँजे की चिलम में दम लगाने पर ही लाल होती हैं। तीर शहतीर में, तलवार मूँछों के कट में और वीर तसवीर में ही नामशेष रह गये हैं। वीर-रस के कवि थोड़े स्वस्थ हुए तो नुकीली मूँछें रख लेते हैं नहीं तो फूकना-से सिकुड़े रहते हैं। किन्तु कभी-कभी ये मंच पर रुग्ण भूषण के अवतार जान पड़ते हैं (स्वस्थ भूषण से प्रचण्ड कवि इस डालडा-ब्रांड युग में उत्पन्न नहीं हो सकते), स्वर फटते ही सभापति के बगलगीर हो जातें हैं।

शक्ल और अक्ल दोनों से हँसाने वाले हास्यरस के कवि स्वयं प्रकाशित होते हैं। ये प्राय: यम की तरह जम जाते हैं। संयोजक के चोले में डॉक्टर भी इन्हें प्रसन्न हो बार-बार बुलाते हैं। अच्छे-अच्छे कविराज हाथ मलते रह जाते हैं। हास्यरस के कवि कुछ अंशों में आशु होने के कारण वहीं पर दिमाग लड़ाकर तुक भिड़ा लेते हैं और चाहे जिसका नक्शा खींच देते हैं। पानी माँगने तक इनकी छीपटी-सी जीभ चटकती ही रहती है और जनता का मुख रसोई के धुमारे-सा खुला रहता है। कभी-कभी भारी जुकाम से अतिक्रमणित हो ये बीभत्स रस के कवि जान पड़ते हैं, किन्तु उस समय भी श्रोता जुगुप्सा-हीन ठहाके ही उड़ाता है।

कवि-सम्मेलन में भाग लेनेवाले कवियों के साथ-साथ कवयित्री भी होती हैं जो कवि की पत्नी नहीं कहलातीं। प्रिय-दर्शन होना आवश्यक होता है। ये कुमारी होने पर किसी मित्र को, नहीं तो पति को साथ घसीटती हैं। पति अपने घर पर ही पत्यावस्था में पहुँचता है, नहीं तो पत्नी के पर्सनल सेक्रेटरी का कार्य करता ही घुटता रहता है। प्राय: टी० बी० हो जाती है। कविता-पाठ से पूर्व ही एक परम्परागत हंगामा मच जाता है। ये बैठकर पढ़ना चाहती हैं, जनता बैठकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुनना नहीं चाहती। परिणाम यह होता है कि जब तक कवयित्री खड़ी नहीं होती, जनता खड़ा होना आरम्भ कर देती है।

खण्डकाव्य एवं महाकाव्य से प्रायः दूर रहनेवाले ये कवि-सम्मेलन के कवि साकार रूप में मंच पर तथा निराकार रूप में सूची-बद्ध संयोजकों की जेबों में पाये जाते हैं। यदा-कदा पत्रिकाओं में झलक मिल जाती है।

हाँ, कवि-सम्मेलन का कवि वीर-रस को हास्यरस के सम्पर्क में लाता है। एक बार वीर रस के एक बाँकुरे कवि ने हुँकार भर अपनी कविता का शीर्षक पढ़ा, "आग, पानी और आवाज़ !"

तुरन्त ही सामने खड़ा ग्रामीण श्रोता हाथ उठाकर चीखा, "हुक्का है !"

उत्तर : प्रश्न संख्या ३

जो दूसरों की प्रथम श्रेणी की कविताओं की निन्दा करे या मौन रहे और अपनी तृतीय श्रेणी की रचनाओं की प्रशंसा, वह असफल कवि कहलाता है। दूसरी परिभाषा के अनुसार लोकधुन के आधार पर गीत लिख, चुटकी बजाते हुए सुनानेवाले, साथ ही अंग्रेज़ी नाटकों के अनुवाद पर उतर आनेवाले कवि को भी असफल कवि कहते हैं।

जीवन में असफल कवि के लिए निम्नलिखित कार्य करने शेष रह जाते हैं :

१—क्लासिकल शैली में किसी अमर पुस्तक का अनुवाद करना, जैसे 'मानस' की दोहा-चौपाई शैली में ऋग्वेद का अनुवाद। फिर अनुवाद का जन-ऋग्वेद नाम रखना।

२—किसी विश्व-प्रसिद्ध श्रृंखला का हिन्दी-अनुवाद कर अभिनय भी करना, जैसे शेक्सपीयर के सभी नाटकों का रूपान्तर करना। फिर हिन्दी-शेक्सपीयर का विज्ञापन करना।

३—अधिक पारिश्रमिक अथवा अध्यक्ष-पद की शर्त के बहाने से कवि-सम्मेलनों में भाग लेना बन्द कर देना।

४—किसी अन्य कला की ओर रुचि प्रदर्शित करना, उदाहरण के लिए अपने घर में चित्र या मूर्तियाँ एकत्र करना।

५—प्रारम्भिक अप्रकाशित रचनाओं को प्रकाशित करना या सभी प्रकाशित संग्रहों में से बाल की खाल की भाँति नवीन-नवीन संग्रह निकलवाते रहना।

६—सामयिक प्रसिद्ध साहित्यकारों की जीवनी, संस्मरण, इण्टरव्यू तथा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कराना तथा किसी पत्रिका में 'कहीं इन्हें भूल न जाएँ'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जैसा स्तम्भ लिखना।

७—नये कवियों की कविताओं का सम्पादन करना एवं भूमिका लिखना।

८—अन्य विधाओं में हाथ की सफ़ाई दिखाना, जैसे बचपन में लिखे किसी वृहत् उपन्यास का आविष्कार करना जो प्रौढ़ उपन्यासकारों का मार्ग-प्रदर्शन कर सके।

९—सांस्कृतिक मण्डलों में सम्मिलित हो या किसी अन्य बहाने से देश के प्रतिनिधि बन विदेश जाना।

१०—राजनीति में कूद पड़ना।

११—यात्राओं का सचित्र वर्णन लिखना।

१२—दर्शन और संस्कृति पर लेख लिखना एवं राजनीतिक नेताओं की बरसियों पर प्रथम दर्शन से लेकर अन्तिम भेंट तक का वर्णन लिखना। उन्हें पत्रिका-क्रम और वर्ष-क्रम से प्रकाशित कराना।

१३—नये मुहावरे या सुभाषित लिखना।

१४—'आपका पत्र मिला' स्तम्भ में कुछ-न-कुछ देते रहना।

१५—किसी वाद-विवाद में उलझ जाना।

१६—किसी साहित्यकार की मौत पर शोक-सभा में अशोक-मन से भाग लेना।

१७—अभिनन्दन-ग्रन्थों या स्मारक-ग्रंथों का सम्पादन करना।

१८—सलाहकार-मण्डल या परामर्शदाता-समिति में नाम सम्मिलित कराना।

१९—सरकार की वैतनिक या अवैतनिक (जो वैतनिक से अधिक मूल्यवान होती है) सेवा करना आदि।

उत्तर : प्रश्न संख्या ४

(क) जी हाँ, अर्वाचीन प्रयोगवादी कविता की परिभाषा प्राचीन कवि गिरधर ने दी है; उसे ज्यों-का-त्यों उद्धृत किया जाता है—

भदेस भाषा छन्द अति मुक्त, विशृङ्खल भाव।
अभिनव अनगढ़ विषय हो, शब्द करें पथराव।
शब्द करें पथराव भूमिका अति आवश्यक।
विना धूम-संकेत न ज्यों मिल पाती पावक।
कह गिरधर कविराय कि कविता पर-युग-वादी।
स्वयं न समझे जिसे वही सब को समझा दी॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ख) भदेस भाषा के न होने के कारण बीभत्स-रस से बाल-बाल बच जाने-वाले प्रथम पद्य-खण्ड का रचयिता कोई कुम्हार या धोबी जान पड़ता है जिसको मार खाकर भाग छूटा गधा दो दिन बाद ढहते मकान के पास इस चित्र-लिखित दशा में मिला है। यह कहना संभव नहीं कि रचयिता कितना शिक्षित है, किन्तु इतना निश्चित है, कभी-न-कभी वह कृषि का विद्यार्थी रहा है और इस पद्य-खंड में सिंचाई के नवीन साधन का आविष्कार किया है।

गधा भी पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित ग्रेजुएट से कम नहीं लगता, तभी तो खड़े होकर मूत्रधार का संचालन किया है। कवि प्रगतिशील है और समाजवादी भी। इसीलिए उपेक्षित प्राणी को कविता का लक्ष्य बनाया और उसे वीतराग, सिंचनसाधक, अल्पना-विशेषज्ञ और तपस्वी कहा है (तपस्वी सदा एक टांग उठाकर शेष टांग पर खड़े होकर तपस्या करते थे), विनम्र एवं धैर्यवान् सिद्ध किया है।

दूसरे पद्य-खण्ड के रचयिता का अनुमान नहीं हो पाता। यह रचना किसी ऐसे जन्मजात नेता के विषय में जान पड़ती है जिसकी चमड़ी ही खद्दर की थी (खद्दर का खाल था), किन्तु बुद्धि नाम को भी नहीं (दिल, दिमाग भुस का), अथवा जो नेता बनने से पूर्व भुस की आढ़त करते थे। इसी कारण उनका दिल-दिमाग भुस का होकर रह गया था अर्थात् सदा भुस के चिन्तन में डूबे रहते थे। हाँ, चित्रण उस समय का है जब नेताजी जेट विमान में उड़ रहे थे। ऊपर अनन्त आकाश था, नीचे धरती का पता नहीं था। उधर पेट में कब्जियत के कारण ऐंठे का दर्द हो रहा था। लगता है कि पड़ोस में ही है जिसके वैद्य, ऐसा कवि नेता का सहयात्री था, नहीं तो 'अपच के मारे बहुत बुरा हाल' को कैसे ताड़ पाता।

उत्तर : प्रश्न संख्या ५

(क) साहित्य समाज का दर्पण है। कविता इसी दर्पण का एक साफ़ टुकड़ा है। अतः आज के बेतुके जीवन में कविता ही कैसे तुकान्त हो सकती है। फिर भी अतुकान्त कविता-उत्पादन के अनेक कारण हैं। 'प्रति दिन तो खीर भी स्वादिष्ट नहीं लगती' नियम के अनुसार तुकान्त कविता करते-करते कवि ऊब चुका है। दूसरे, तुकान्त कविता के छन्द साबुन की टिकियाओं-से रखे ज्ञात होते हैं और आज का कवि स्नान तथा कपड़े धोने से घबराता है। तीसरे, घूंघट जैसे कुरूपता को छिपा लेता है या अंग्रेज़ी जैसे मूर्खता और चरित्र को छिपा लेती है वैसे ही अतुकान्त कविता अकाव्य-प्रतिभा को प्रकाश में आने से रोकती है। चौथे, सम्प्रदाय-प्रवर्तक की भाँति जब निराले समर्थ कवि राह दिखा गए, तो बिना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

योग्यता ही सही, अनेक अनुगामी निकल आने आवश्यक थे। पाँचवाँ और प्रमुखतम कारण प्रकाशन की शीघ्रता एवं शादी के अभिनन्दन-पत्र लिखते रहने के कारण कवि के पास समय की कमी है। कवि के द्वार पर जब हठी प्रकाशक या सम्पादक अनशन कर बैठता है, तो कवि गद्य लिख, तिरछा पैमाना रख, ब्लेड के सहारे दो कविताएँ तैयार कर देता है।

और फिर अतुकान्त कवियों के कथनानुसार अतुक के कारण कविता हमारी चेतना को तरंगित करती है। अतुक की गूँज या झंकार, जीवन की गूँज या झंकार बन जाती है। अतुकों के द्वारा इस रंग-बिरंगे जीवन और संसार की अनेकता का आभास होता है। श्रृंखला-बद्ध नीरस वस्तुएँ बिखरी और सरस अनुभव होती हैं। हमारी बोली की वाणी में अतुक से वे तार जुड़ जाते हैं, जो कई हज़ार वर्ष पहले हमारी भाषा की वीणा में मौजूद थे।

(ख) किसी भी प्रकार के कवि के लिए आज किसी भी विशेष गुण की आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिए बिना सर्वहारा-वर्ग के बीच एक क्षण बिताये आप विद्युत् पंखे के नीचे, चिकनी मेज़ पर, किसी कल्चर्ड सुन्दरी के हाथों बनी चाय चखते हुए प्रगतिवादी कविताएँ लिख सकते हैं। नयी कविता के रचनाक्षेत्र में किसी भी एम० ए० या पी-एच० डी० का जीजी के घर में भाई की तरह अबाध प्रवेश-अधिकार होता है। सच तो यह है कि आज कवि को किसी भी (जिस प्रकार हाथ के पंखे को बिजली की अपेक्षा नहीं होती, उसी प्रकार) परम्परागत गुण, पिंगल-शास्त्र, देशाटन, अध्ययन, अथवा गुरु-सीख की कतई अपेक्षा नहीं होती। प्रकाशन-सुविधा ही सर्वश्रेष्ठ योग्यता है।

उत्तर : प्रश्न संख्या ६

कविता के क्षेत्र में 'तिलोत्तमा' के प्रकाशन को असाधारण घटना कहा गया है। कविता-प्रेमियों को इस असाधारण घटना का ज्ञान तब हुआ जब 'तिलोत्तमा' की तूफानी गति से नियोजित विज्ञापन के रूप में आलोचना (प्रशंसा) प्रकाशित हुई। हिन्दी एवं अंग्रेज़ी (अन्य भाषा से मैं परिचित नहीं) की अनेक पत्रिकाओं में यह विज्ञापन (किसी-किसी में सचित्र) निकला, मानो कि आलोचक क्रय, अध्ययन एवं लिखने की सामूहिक प्रतीक्षा में थे। आरती में शब्दकोश रिक्त हो गए। जिन भले आदमियों ने किसी कविता-पुस्तक का आवरणपृष्ठ नहीं छुआ, उन्होंने 'तिलोत्तमा' को 'कामायनी' के बराबर पत्तल डाल दी।

मेरे मत से 'तिलोत्तमा' उर में बस नहीं पाती। 'विन्ध्याचल के प्रति', 'इन्दौर' और 'कथाकार की मृत्यु' के कवि ने शब्दों से फ्री स्टाइल कुश्ती ही लड़ी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। जबर्दस्ती झटकों के साथ स्याही छिड़क-छिड़ककर पंक्तियों का निर्माण किया है। सच तो यह है कि 'अभारतीय सभ्यता के तीन अध्याय' के साथ ही कवि की कविता-शक्ति को राज-रोग हो गया था।

समय-सूप की फटकन में 'तिलोत्तमा' के सही स्थान का पता लगेगा।

जो भी हो, कवि के व्यक्तित्व के कारण निकट भविष्य में इसका अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित होगा, हिन्दी की परीक्षाओं में यह टैक्स्ट-बुक बनेगी और कोई बड़ा पुरस्कार प्राप्त होगा। 'भाषा' देखती रह जायेगी और 'समाज' ताकता।

उत्तर : प्रश्न संख्या १ : दो प्रयोगवादी कविताएं

(एक)

मैं
सूखा पेड़...
बहार का।
सामने
धर्मशाला
एक धर्मशाला
जिस पर अंकित है—
"प्राचीन धर्मशाला
संस्थापन-काल सन् १९६२ ई०।"
और
उधर, एक शो
एक चैरिटी शो
बाहर विज्ञापित है—
"बाढ़-पीढ़ितों की सहायतार्थ—
बरसात की रात।"
मैं
सूखा पेड़...
बहार का।

(दो)

दोस्त !
यह मक्खी है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह मक्खा है
कारण स्पष्ट है।
यह आईने पर आ बैठी है
वह सिगरेट पर जा बैठा है।
दोस्त !
यह मक्खी है
यह मक्खा है
कारण स्पष्ट है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शादी के बाद : एक पहलू

आदमी शादी से पूर्व आदमी होता है और शादी के बाद, जब लक्ष्मी घर आ जाती है तो उल्लू। रात्रि-जागरण भी होता है। दो वर्ष बाद जब पार्श्व में दोनों ओर बच्चे होते हैं, और वह करवट तक नहीं बदल सकता तो स्वयं को काठ का समझने लगता है। वास्तव में शादी के बाद कोई-न-कोई उपाधि अवश्य मिलती है। पत्नी के रससिक्त इशारों का उत्तर न दे तो वह गँवार समझती है और यदि फुर्ती से अनुकूल प्रक्रिया दिखाता है तो अनपोलिश्ड। पत्नी का साथ देने पर माँ-बाप 'जोरू का गुलाम' कहते हैं। माँ-बाप की आज्ञा में रहे तो मित्र बैकवर्ड पुकारते हैं। फिर भी कोई कुँवारा या विधुर रहना नहीं चाहता।

आइये, कुछ उदाहरणों से शादी-सरिता के दोनों किनारों (पूर्व और पश्चात्) की सैर कराते हैं—

आपसे मिलिये। आप नगर के चारों ओर लगे बीसियों भट्टों के मालिक थे। झोंपड़ी तक में आपके भट्टे की ईंटें लगती थीं। क्या आन थी, क्या शान थी ! कार से नीचे पैर नहीं रखे। शादी हुई तो पत्नी अप्सरा मिली। एक वर्ष बीता तो शयन-कक्ष और कार के बीच से भट्टे उड़ गये। तीन वर्ष बाद होश आया तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाया कि नौकर ही भट्टों के मालिक बन बैठे हैं। न कार रही है, न कोठी। जहाँ मोस्ट अप-टू-डेट रहते थे, वहाँ अब हजामत बढ़ी हुई है, कमीज़ फटी हुई है, गंदे पाजामे का नारा जमीन को छू रहा है। साल भर आगरा भी रह आये। शादी से पूर्व श्रीविलास थे तो शादी के बाद सिलबिल हो गये।

उधर देखिये, उस नाली के सहारे जो महाशय टूटी खाट पर खाँस रहे हैं, शादी से पहले महावीर पहलवान के नाम से जाने जाते थे। शरीर-श्री के लिए विख्यात थे। भारत-श्री प्रतियोगिता में उत्तरप्रदेश का आपने ही प्रतिनिधित्व किया था। जंघाएँ परस्पर टकराती थीं तो चिनगारी फूटती थीं। भुजदण्डों में मछलियाँ तैरती थीं। भरे चेहरे पर बिच्छू के डंक-सी मूँछें तनी रहती थीं। शादी हुई तो कुश्ती लड़ना छूट गया, बादाम विदा हो गये, दूध पानी में बदल गया। अब गालों में प्याला समा सकता है, हड्डियाँ नक्शों में पहाड़-सी उभर आयी हैं और चेहरे पर मूँछों की छूँछ भी नहीं रही। आखिरकार बीबी टी० बी० साबित हुई। जिस मुँह से अंडा गटका करते थे उस मुँह में थर्मामीटर अटका रहता है। म्यान से तलवार खींचकर पैंतरा बदलनेवाले हाथ अब दियासलाई से सींक नहीं निकाल सकते।

इधर ये महाशय हैं, संस्कृत के प्रतिष्ठित प्रोफेसर और भारत की प्राचीन संस्कृति के महान पुजारी। निम्न छः सिद्धान्तों का दृढ़ता के साथ प्रचार और पालन किया करते थे—

१—डॉक्टर के पास न जाना।

२—किसी के सामने हाथ न फैलाना (कर्ज न लेना)।

३—रात को दस बजे सो जाना और प्रातः पाँच बजे उठना।

४—सिनेमा से दूर रहना।

५—महिलाओं के संपर्क में न आना।

६—उपन्यास-कहानी न पढ़ना।

शादी हो गई। आजकल आपके बलात्कार (आपको और आपकी पत्नी को देखकर कोई भी सरलता से इसी परिणाम पर पहुँचेगा) से उत्पन्न छः बच्चे हैं। सिद्धान्त एक भी नहीं रहा।

लो, ये आये सींकिया बादशाह। शादी से पूर्व भयानक मोटे थे। दन्तकथाओं का एक नमूना पर्याप्त होगा। एक बार ट्रक में लदकर एक गाँव गये तो गन्तव्य स्थान पर उतरकर सुस्ताने खड़े हो गये। बच्चों में शोर मच गया—"जि कौन है ? जि कौन्ने बनायौ ?" एक लड़के ने उन्हें गौर से देखा तो आपने पैर चला दिये। वह एकदम चीखा, "अरे, जि तौ चलतुऐ।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शादी के बाद : एक पहलू

शादी हुई तो पत्नी स्वेटर बुनने की सलाई-सी पतली। मगर ईश्वर की मर्जी। मोटापे का स्थानान्तर आरम्भ हुआ तो श्रीमतीजी फुटबाल हो गईं और श्रीमानजी रह गये हवा भरने के पम्प मात्र।

अध्यापक क को एक बार प्रिंसिपल ने गधा कह दिया तो आपने भी पलटकर कहा था, "आप मुझसे बड़े हैं, कुछ भी कह सकते हैं। वैसे जो लक्षण मुझमें हैं वे आप में भी हैं।" बड़ा हंगामा मचा। बात प्रबन्ध समिति तक गई किन्तु क ने क्षमा-याचना नहीं की और जब प्रिंसिपल ने अपनी प्रतिष्ठा ही दाव पर लगा दी तो आपने त्याग-पत्र दे दिया तथा दूसरे कॉलेज में नौकरी कर ली।

इसी बीच क की शादी हो गई। तुरन्त बच्चा भी हुआ। अब प्रिंसिपल दिन में दस बार गधा कहता है तो भी आप अपने में गधे का कोई भी लक्षण न पाते हुए 'यस्सर' कहकर रह जाते हैं। नौकरी छोड़ने की 'रिस्क' अब नहीं ली जा सकती।

शादी से पूर्व अध्यापक क घोड़े पर चढ़े थे और शादी के बाद उन्हें गधा कहा जाता है।

श्रीयुत ख विवाह से पूर्व ग्रेजुएट पत्नी को अपनी सेक्रेटरी के रूप में देखना चाहते थे। शादी के बाद पत्नी ने पढ़ना बन्द नहीं किया और न सामाजिक कार्यक्रम छोड़े। कालक्रमानुसार वे पी-एच० डी० भी हुईं और प्रान्त की मंत्राणी भी।

अब आप अपनी पत्नी के सेक्रेटरी हैं।

ग महोदय पढ़ते थे तो बड़े सैलानी थे। घर से बाहर रहना बड़ा प्रिय था। लड़की देखने गये तो उसे लक्ष्मी पाया और उसके हाथ से बने भोजन की बड़ी प्रशंसा की। शादी के बाद उन्हें कोई काम नहीं मिला। परिणाम यह हुआ कि बाप ने घर से निकाल दिया।

अब श्रीमतीजी सर्विस करती हैं और आप भोजन बनाने में पटु हो चुके हैं। जब श्रीमतीजी हारी-थकी आफिस से शाम को आती हैं तो आप सेवकारिणी पत्नी की भाँति चाय पेश करते हुए किंचित् मुसकराते मिठियाते पूछते हैं, "खाना कितनी देर में खायेंगी ?"

घ महाशय अपने कर्म में नींद अधिक मात्रा में लिखाकर लाये थे। आँखें खोले किसी ने उन्हें लेटा नहीं देखा। आफिस में भी साहब बाहर तो नींद आँखों के अन्दर। कुछ लोगों का कहना है कि आप चलते-चलते भी सो लेते हैं। जो भी हो, इतना तो सच है कि दिन ढलने के बाद घ को किसी ने घर से बाहर नहीं देखा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शादी हुई तो श्रीमतीजी संगीत-विशारदा निकलीं। उनका घर अब तबला और तानपूरों की दुकान दिखने लगी। महोदय घ अब जितना संभव होता घर से बाहर रहते। एक बार पुलिस आवारगी में पकड़ ले गई तो घर जल्दी से आने लगे। देर रात तक दरवाज़े पर पड़ोसियों से अपने दुर्भाग्य का रोना रोते और बैठे-बैठे सो जाते।

अभ्यास समाप्त होने पर श्रीमती अन्दर घसीट ले जातीं।

इस विषम परिस्थिति में कभी-कभी घ की आँखों से आँसू ढुलक पड़ता। श्रीमतीजी का संगीत उनकी आँख की किरकिरी बन गया था।

वास्तव में संसार में शादी के कारण अज्ञात रूप से भयंकर परिवर्तन होते रहते हैं। शादी के कारण किसी का पढ़ना छूटता है तो किसी का लिखना, किसी का खाना हराम हो जाता है तो किसी का सोना, किसी के लिए घर जेल बन जाता है तो किसी के लिए नरक। अनेक कवि और लेखक शादी के बाद अपनी कलम को नया मोड़ प्रदान करते हैं और वे साहित्य-सर्जन के स्थान पर बजट-निर्माण में दत्तचित्त हो जाते हैं। प्रायः शादी के बाद चित्रकार कूची छोड़कर कुची धारण कर लेता है।

स्वयं हमने जब साहस कर अपनी मंगेतर को प्रेम-भरा पत्र लिखा तो उत्तर आया, "प्राणनाथ ! विश्वास कीजिये, मैं आपके जीवन-मरण में साथ रहूँगी।"

हमने लौटती डाक से श्रीमतीजी की गलतफहमी दूर की, "ईश्वर की कृपा से मुझे कोई दुःख नहीं है, जीवन प्रिय है।"

"लेकिन मैं तो शादी के बाद की बात कर रही थी।" मंगेतर के उत्तर का सारांश था।

संक्षेप में सार यही कि शादी जीवन की अनिवार्य दुर्घटना है। लोग पाणि-ग्रहण संस्कार कहते हैं। हमारा निश्चित अभिमत है कि दो पहलवान जीवन-अखाड़े में उतरते ही हाथ मिलाते हैं और प्रायः पति महोदय ही चारों खाने चित आते हैं। पत्नी केवल एक बार (विवाह पर विदा होते समय) रोती है किन्तु पति जीवन भर टसुये बहाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिलम्भरा प्रज्ञा : अभीष्ट-प्राप्ति का अमोघ साधन

ऋतम्भरा प्रज्ञा का जो स्थान आध्यात्मिक क्षेत्र में है, व्यावहारिक जगत् में वही स्थान चिलम्भरा-प्रज्ञा का है। वास्तव में चिलम्भरा प्रज्ञा प्राचीन भृत्तिवाद का अनुनय, विनय एवं दैन्य भरा वह अर्वाचीन रूप है जो अधिकारी को, उसकी अनिच्छानुसार या इच्छानुकूल विवश कर देता है कि प्रार्थी को उसका अभीष्ट प्रदान करे। रिश्वत और चिलम्भरा प्रज्ञा में वही अन्तर है जो साधारण लिफाफे और रजिस्टर्ड लैटर में होता है। मुख्य रूप से अन्तर निम्न है—

१—रिश्वत देनेवाला अधिकारी से अपरिचित भी रह सकता है किन्तु चिलम्भरा प्रज्ञा-प्रयोगी अधिकारी के निकट सम्पर्क में एक निश्चित अवधि तक रहता है। यह निश्चित अवधि धोती धोने से लेकर डॉक्टरेट प्राप्त करने तक बिखरी हुई है। यों चिलम्भरा प्रज्ञा-विशेषज्ञ इस अवधि को लक्ष्यानुसार जीवन भर खींच सकते हैं। यहाँ तक कि पदच्युत होने पर भी चिलम्भरा प्रज्ञा जारी रह सकती है, क्योंकि—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इहै आस अटक्यौ रहै, अलि गुलाब के मूल।[1]
अइहै बहुरि बसन्त ऋतु इन डारिन वे फूल ॥

२—रिश्वत देनेवाले का गर्वीला होना सम्भव है परन्तु चिलम्भरा प्रज्ञा-प्रयोगी गर्दन झुकाकर 'हें हें', 'जी साहब', 'यस्सर' कहकर खीसें निपोरा करता है। निम्न से निम्न (छोटे से छोटा) कार्य करने को उसके कर-यंत्र आतुर रहते हैं।

३—रिश्वतदाता को अधिकारी के घर या घरवालों से वास्ता रहे, आवश्यक नहीं है। परन्तु चिलम्भरा प्रज्ञा का दृढ़ आधार ही परिवार-सेवा है।

४—रिश्वत का प्रभाव दिमाग से प्रवेश करता है और दिमाग में ही सीमित रहता है जबकि चिलम्भरा प्रज्ञा का प्रवेश पैर के अँगूठे से होता है और हृदय तक निश्चित रूप से पहुँचता है। दिमाग तक पहुँचना अनिवार्य या आवश्यक नहीं है।

५—रिश्वत का परिणाम अनिश्चित होता है जबकि चिलम्भरा प्रज्ञा का अचूक फल होता है।

सारांश यह कि रिश्वत और चिलम्भरा प्रज्ञा में आधार, साधन, प्रेरणा और परिणाम सभी दृष्टि से अन्तर हैं। दो उदाहरणों से यह अन्तर स्पष्ट हो जायेगा।

मान लो अधिकारी सिनेमा जाता है तो रिश्वतदाता जहाँ कार, टिकट और चायपान की व्यवस्था करेगा वहाँ चिलम्भरा प्रज्ञा-प्रयोगी अधिकारी के पैसों से ही हॉल में प्रवेश करेगा किन्तु बीच में यदि बच्चा रोयेगा तो वही उसे बाहर ले जाकर बहलायेगा। अधिकारी को चित्र देखने में कष्ट न हो, यह दोनों ही कोशिश करेंगे किन्तु रिश्वतदाता जहाँ मैनेजर या आर्गनाइजर का काम करेगा वहाँ चिलम्भरा प्रज्ञा-प्रयोगी—'योर मोस्ट ओबीडियेन्ट सर्वेन्ट' का।

दूसरा उदाहरण लो। अधिकारी की वर्षगाँठ पर जहाँ रिश्वतदाता कोई बहुमूल्य वस्तु भेंट करेगा वहाँ चिलम्भरा प्रज्ञा-प्रयोगी उसी वस्तु को ले जाकर अधिकारी को पेश करेगा। रिश्वतदाता जहाँ अधिकारी से हाथ मिलायेगा वहाँ चिलम्भरा-प्रज्ञा-प्रयोगी खीसें निपोरता हुआ हाथ जोड़े—'और कोई आज्ञा, सरकार!' की मुद्रा में खड़ा रहेगा। रिश्वतदाता जहाँ अतिथि समझा जायेगा वहाँ चिलम्भरा प्रज्ञा-प्रयोगी इस कोशिश में रहेगा कि अतिथि उसे परिवार का ही महत्त्वपूर्ण सदस्य समझे और अधिकारी उसे परिवार का जरूरी सेवक।

---

१. चरणों में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिलम्भरा प्रज्ञा : अभीष्ट-प्राप्ति का अमोघ साधन

चिलम्भरा प्रज्ञा वह नुस्खा है जिसे प्रयोग करने वाला यदि धैर्यवान है तो अवश्य लाभप्रद होगा। जिस प्रकार प्रत्येक रोग में अमृतधारा प्रयोग की जा सकती है उसी प्रकार हर लक्ष्य-प्राप्ति में चिलम्भरा प्रज्ञा का प्रयोग किया जा सकता है।

चिलम्भरा प्रज्ञा एक लम्बी किन्तु सफल साधना है। चिलम भरने का यह अर्थ नहीं है कि चिलम उलटी, ताजा पानी किया, चिलम में चुगल लगाई, तम्बाकू भरा और तवा लगाकर आँच भर दी। चिलम भरना हुक्का भरने का प्रतीक है और हुक्का भरना सरल काम नहीं है। आँच, पानी, तम्बाकू, सफाई, समय आदि का ज्ञान आवश्यक है। संक्षेप में हुक्का भरनेवाला खानदानी होता है या जाति विशेष हुक्का भरने में निपुण होती है। गाँवों में नाई को यह सम्मान प्राप्त है। हमारा तात्पर्य यह है कि अधिकारी की समस्त दिनचर्या और पसन्द से परिचित होना चाहिए। चिलम्भरा प्रज्ञा प्रयोग का स्थल घर होता है। हर स्थान पर चिलम में दम नहीं लगाया जा सकता, न सिगरेट की भाँति हर स्थान पर सुलभ ही होती है। सिगरेट का व्यक्तित्व चिलम के सामने उसी प्रकार हल्का और कमजोर है जिस प्रकार छुईमुई आधुनिका का जाटनी के सामने।

चिलम्भरा प्रज्ञा क्रमशः तीन पद्धतियों में पूर्ण होती है। चरण-स्पर्श, गृह-सेवा और यस्सर पद्धति। अधिकारी से नजर मिलते ही मुसकराहट के साथ दोनों हाथ जुड़ते हैं और अधिकारी के चरणों की दिशा में चल पड़ते हैं। आगे की क्रिया तीन धाराओं में विभक्त है। हाथों का अधिकारी के चरणों से स्पर्श करना, चरण-स्पर्श कर अपने मस्तक तक जाना या अपने पूर्व स्थान पर आकर पुनः जुड़ जाना एवं अधिकारी द्वारा बाधा (कमर से पकड़ 'बस-बस' करते हुए रोकना और कभी-कभी वक्ष से लगाने का अभिनय करना) उपस्थित करना।

चरण-स्पर्श पद्धति का प्रभाव बाज़ार यानी भीड़ के सामने प्रयोग करने पर अधिक पड़ता है। एकान्त में अधिकारी इस पद्धति की अधिक परवाह नहीं करता किन्तु अन्य प्रतिष्ठित लोगों के सामने इस पद्धति को प्रयोग करने के लिए अवसर प्रदान करता है।

चरण-स्पर्श पद्धति सम्पूर्ण लक्ष्य-मार्ग पर सफलतापूर्वक प्रयोग की जाती है। लक्ष्य-प्राप्ति के आरंभ और अन्त में इसका प्रयोग अनिवार्य होता है। जैसे अधिकारी से परिचय, थीसिस का विषय, सिनॉप्सिस आदि स्वीकृत कराने से पूर्व, बिना इस पद्धति के काम नहीं चल सकता। मंजिल से एक कदम पहले भी यह पद्धति सफलतापूर्वक प्रयोग की जानी चाहिए। जैसे पी-एच० डी० के वाइवा में विशेषज्ञ ने पूछा, "आपका नाम ?"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"(मेज के नीचे से प्रश्नकर्ता के चरण स्पर्श कर मस्तक से लगाते हुए) जी, मंगाराम।"

"अलीगढ़ से आये हैं।"

"(उसी प्रकार चरण स्पर्श कर मस्तक से लगाते हुए) जी !"

"थीसिस का क्या विषय है ?"

"(उसी प्रकार चरण स्पर्श कर मस्तक से लगाते हुए) जी, आचार्य चतुरसेन का कथा-साहित्य।"

"जा सकते हो।"

"(इस बार उठकर अधिकारी के पार्श्व में आ चरण स्पर्श कर मस्तक से लगाते हुए) जी, जो आज्ञा।"

और इस प्रकार मंगाराम का बिना बुद्धि-परीक्षा दिये सफल वाइवा रहा और पी-एच० डी० भी मिली।

गृहसेवा पद्धति चिलम्भरा प्रज्ञा का सर्वाधिक प्रभविष्णु मध्य भाग है। इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। अधिकारी के समूचे परिवार, रिश्तेदार और पालतू तथा फालतू जानवरों तक की सेवा इस पद्धति की परिधि में आ जाती है। जैसे पी-एच० डी० मिलने की तिथि-घोषणा तक इस पद्धति का अपनाना।

'यस्सर पद्धति' लक्ष्य-प्राप्ति के पश्चात् अधिकारी से संबंध निर्वाह किये जाने के प्रमुख काम आती है। 'कभी काम पड़ेगा' इस संभावना से ही इस पद्धति का अधिक प्रयोग होता है। जैसे कन्फर्म कराना या डॉक्टरेट के बाद अच्छा स्थान दिलवाने की आशा में। यस्सर पद्धति का व्यावहारिक उदाहरण निम्न है—

अधिकारी—आज सरदी अधिक है।

साधक—जी हाँ, बहुत। इतनी सर्दी पहले कभी नहीं पड़ी।

अधिकारी—वैसे कल से कम है।

साधक—जी हाँ, आज तो धूप भी निकली है।

अथवा

"आज के छात्र बड़े शैतान होते हैं।"

"यस्सर, गुरु को तो खरीदा हुआ गुलाम समझते हैं। पहली-सी गुरुभक्ति तो सपने की वस्तु रह गई है।"

"वैसे यह उमर शैतानी की ही होती है।"

"यस्सर, फिर तो जीवन-संग्राम में गंभीर उत्तरदायित्व आ पड़ते हैं। इस वक्त जो कर लें थोड़ा। हम भी कम नहीं थे, सर !"

यह स्मरण रखना चाहिए कि चरण-स्पर्श पद्धति एवं यस्सर पद्धति, हर रोग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में गर्म पानी और उपवास की भाँति, लक्ष्य-प्राप्ति में सहायक होते हैं। कहना चाहिए कि गृह-सेवा-पद्धति चिलम्भरा प्रज्ञा-वृक्ष का तना है तो चरण-स्पर्श पद्धति एवं यस्सर पद्धति उस वृक्ष की मूल और शाखा-प्रशाखाएँ हैं, जो चारों ओर से उस तने को घेरे रहती हैं।

अब थोड़े से दृष्टान्तों से सम्पूर्ण चिलम्भरा प्रज्ञा का प्रयोग-चातुर्य तथा अचूक परिणाम स्पष्ट हो जायेगा।

क महोदय एक इण्टर कॉलेज में क्लर्क थे। उनका सिद्धान्त यह था कि वे प्रिंसिपल के घर को ऑफिस समझते और बजाय फाइल ठीक करने या फीस लेने के प्रिंसिपल के घर का आटा पिसाते, कोयला लाते या खाट की मरम्मत कराते थे। गेहूँ कितने लाने हैं, लकड़ी कितने दिनों चल जायेगी, बच्चों की कॉपियाँ भर गई हैं, सुबह पालक का साग बनेगा और शाम को आलू का रायता, धनिया और मिर्चें माँगकर ही लानी हैं, प्रिंसिपल के श्वसुर की दवा के लिए गाय का ताजा मूत्र लाना है, आदि चिन्ताएँ उन्हें अपने घर भी घेरे रहतीं और वे खुशी-खुशी उन चिन्ताओं को दूर करते।

यह नुस्खा इतना सफल रहा कि प्रिंसिपलों की कृपा से वे कॉलेज बदलते गये और आज एक पोस्टग्रेजुएट कॉलेज में प्रवक्ता-पद पर सुशोभित हैं। भगवान ही जाने वे क्लास किस समय लेते हैं, क्योंकि उनकी उपस्थिति या अनुपस्थिति का किसी को पता नहीं चलता। हाँ, प्रिंसिपल के घर उनके आने के पूर्व जो घरेलू नौकर था, वह अब नहीं है।

ख महाशय तनिक लेट आये तो नये बॉस ने एक्सप्लेनेशन काल किया। ख ने तुरन्त कहा, "सर, जरा स्नान-भजन-ध्यान में देर हो गई।"

"इन चिल्ला जाड़ों में भी भजन-ध्यान करते हो ?"

"यस्सर, भजन-ध्यान मेरे प्राण हैं। कल से देर नहीं होगी।"

"डॉन्ट वरी, डॉन्ट वरी, भजन-ध्यान मत छोड़ना।"

और ख महाशय का तीर निशाने पर लगा। नये साहब कोट-पैंट पर भी सीधा तिलक लगाते थे। वे बड़े भजनानंदी और कीर्तनबाज थे। आये दिन उनकी कोठी पर कीर्तन होता रहता। अब ख को ऑफिस में कोई काम न था। साहब के घर कब कीर्तन होगा, कब सत्यनारायण की कथा होगी, कौन पंडित आयेगा, हिंडोला कैसे सजेगा, अखण्ड कीर्तन में रात के बारह बजे से तीन बजे तक किस की ड्यूटी रहेगी, अमुक साधु के आज दर्शन करने जाना है आदि उसकी ऑफिस ड्यूटी के अन्तर्गत आ गये।

इस कार्यक्रम से ख तो खुश थे ही, साहब भी प्रसन्न थे और कर्तव्य-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परायणता के लिए ख का उदाहरण दिया करते।

ग महोदय अपने बॉस की सुकन्याओं के भिन्न-भिन्न पोजों में चित्र खींचते रहते। जब कोई असाधारण चित्र उतारकर देते तो सुकन्याएँ किसी-न-किसी लाभ की सूचना देतीं।

एक दिन हमने एक विचित्र दृश्य देखा। हमारे एक प्रवक्ता मित्र बीच बाज़ार भैंस के पड्डे को खींचे ला रहे हैं। हमें हंसी आ गई, "यह किसी नाटक के दृश्य का रिहर्सल है क्या ?"

"यार, भाग्य ने साथ दे दिया है। घर चलो, मिठाई खिलाऊँगा।" रस्सी कसते हुए मित्र मुसकराया।

घर पर हमें उसने समझाया, "पी-एच० डी० करनेवाले हम चार हैं। हमारे एकमात्र गाइड ने भैंस पाली। हम चारों भैंस की सेवा में सपूतों की भाँति लगे रहते। भैंस ने पड्डा दिया और कुछ दिनों बाद मर गई। गाइड साहब बड़े दुखी हुए। यूनिवर्सिटी भी नहीं गये।..."

"शोक-प्रस्ताव पास कर, दिवंगता की आत्मा की शांति के लिए दो मिनट का मौन नहीं रखा ?"

"टोको मत, सुनते जाओ। हम चारों के चेहरे ऐसे लटक गये जैसे हमारी माँ मर गई हो। कोशिश करने पर भी जब किसी की आँख में आँसू नहीं आये तो मैंने सच ही अपनी माँ की याद की जो मुझे बचपन में छोड़कर चल बसी थी। आखिर मेरी हिचकियाँ बँध गईं और आँसू बह निकले।

पड्डे को पालने के लिए अब लॉटरी डालने की आवश्यकता नहीं थी। पड्डे के प्रति मेरे साथियों के भ्रातृ-प्रेम पर भैंस के प्रति मेरा मातृ-प्रेम विजयी हुआ, गाइड बड़े खुश हुए और पड्डे को मेरे हवाले कर दिया। तीनों साथी पहले ही मेरी अश्रुधार को देख आश्चर्य में डूबे थे। अब ऐसे उदास और निराश हो गये जैसे मैं उनके मूर्त सौभाग्य का अपहरण कर लाया हूँ।"

"लाभ ?"

"एकदम लक्ष्मी के वाहन हो। पी-एच० डी० मिलने की गारण्टी है यह पड्डा। सेवा करूँगा तो मेवा मिलेगी।"

"मेवा नहीं, गोबर मिलेगा। व्यय नहीं होगा क्या ?"

"यार, इस सेवा में खर्चा तो बैठता नहीं। इस घटना को अपवाद ही समझो। इसे बेच दूँगा और कहता रहूँगा कि खूब खाता है और पट्ठा हो रहा है। जब माँगेंगे, खरीदकर दे आऊँगा।"

"ताकि उसे बेचा जा सके। काश कि यह पड्डा की जगह पड़िया होती !"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हमने पड्डे के सिर पर हाथ फेरा।

"उससे क्या होता ?" मित्र ने जिज्ञासा प्रकट की।

"एक दिन गाइड को अपने भानजे या भानजी पैदा होने की खबर भी देते।" हमने कहा तो मित्र हँसे, "जरा-सी देर में तैराक हो गये।"

"तैराक नहीं हैं, वैसे ही कह दिया। कुछ गुर हमें भी बताओ।"

"गुर क्या ? जिससे काम निकालना हो उसके घर पहुँचो और यथाशीघ्र सेवा में लग जाओ। सेवा न मिले तो तलाश कर लो। गाइड की श्रीमतीजी के पैर में मोच आ गई तो सिकाई-मालिश का एक्सपर्ट बन दो सप्ताह सेवा की मैंने।" मित्र ने सगर्व बताया, "कितने ही प्रोफेसर इन्हीं गाइड के बच्चों को झुंझना बजाना सिखाते पी-एच० डी० हो गये।"

और उन्होने श्रीमान क के जैसे कारनामे सुना दिये।

चिलम्भरा प्रज्ञा में अधिकारी की रुचि का बड़ा ध्यान रखना पड़ता है। यदि अधिकारी किसी वाद या पार्टी से संबंधित है तो आप भी उसी वाद या पार्टी के आदमी बन जाइये। उनके मित्रों को अपना मित्र और उनके दुश्मनों को अपना दुश्मन समझो; कोई चिन्ता नहीं यदि इस सिद्धान्त से अपने ही सुहृद दुश्मन समझे जाएँ। अधिकारी की रुचि की ही ड्रेस पहनिये। मूंछों का कट भी वही होना चाहिए जो अधिकारी की मूँछों का है। अपने साथियों के सामने भी यदि आप स्वाभिमान को छोड़, अधिकारी के आगे दुम हिला सके तो लक्ष्य पाने में विलम्ब न होगा। साहब कोट उतार रहे हों तो थाम लीजिये। कार पर सवार हो रहे हों, तो दरवाज़ा खोल दीजिये।

सच बात तो यह है कि चिलम्भरा प्रज्ञा चिरकाल से लक्ष्य-प्राप्ति का साधन रहा है। संभव है रूप कुछ और हो। भविष्य में भी स्वरूप बदल सकता है किन्तु चिलम्भरा प्रज्ञा का प्रयोग वसन्तकुसुमाकर की भाँति प्राणपद रहता है, इसमें सन्देह नहीं।

चिलम्भरा प्रज्ञा-विशेषज्ञ एक मित्र ने हमें उपदेश दिया, "वर्माजी के अंडर में पी-एच० डी० कर रहे हो ? ड्राइंग-रूम में उनका एक चित्र लगाकर ताजी माला पहना दो और उन्हें किसी बहाने से घर ले जाकर दिखा दो। जब भी अवसर आये वर्माजी का भयंकर प्रशंसात्मक परिचय दो। उनका भाषण हो तो अनेक श्रोताओं को ले जाकर प्रशंसा में तालियाँ बजवाओ। जो भी पुस्तक लिखो, उन्हें समर्पित करो। उन्हीं से भूमिका लिखवाओ। अच्छा हो एकाध पुस्तक पर उन्हीं का नाम डाल दो। मैंने अनेक लेख उन्हीं के नाम से लिखे थे। जिस पुस्तक पर उन्हें सरकारी पुरस्कार मिला, मेरी ही लिखी हुई थी। मैंने ही उसकी विभिन्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नामों से कई पत्रों में प्रशंसात्मक आलोचना लिखी। खेद तो यह रहा कि न तो उस पुस्तक की पुरस्कार राशि ही मुझे मिली और न रायल्टी ही मुझे मिलती है। खैर, इतना याद रखो—

चिलम भर गाइड की ऐ अकबर !
इलम से पी-एच० डी० नहीं मिलती।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवताओं को पत्र

दीपावली आ गई और हम लक्ष्मी की मूर्ति लेने बाजार चल दिये। आजकल भारत में लक्ष्मी-पूजन के अतिरिक्त और हो भी क्या रहा है? आप उल्लू बन जाइये और दिन में भी देखना बन्द कर दीजिये यानी देश की गरीब जनता भूखी मर रही है या प्यासी, अथवा बाढ़, सूखा या मिलावट से दम तोड़ रही है, यह मत देखिये, लीजिये लक्ष्मी आपके घर का रास्ता लेगी। रात में ही लक्ष्मी आती है, यह रहस्य की बात है क्योंकि दिन के उजाले में तो पेट भरने लायक ही कमाया जा सकता है। अस्तु, हमें आदेश मिला था कि लक्ष्मी की मूर्ति के साथ कृष्ण, महादेव, हनुमान और गणेशजी की मूर्तियां भी लायें। चंचला लक्ष्मी के साथ इन भारी-भरकम देवताओं की घुसपैठ हमारी समझ में नहीं आयी। जो भी हो, हम मिर्चें तो ले आये मगर उधेड़बुन में मूर्तियां भूल आये। श्रीमतीजी नाराज हुई। हमने मिर्चें पलटीं और ताव में थैला फाड़ डाला। थैला समतल हुआ तो इन्हीं घुसपैठिये देवताओं के नाम किन्हीं भक्तों के कुछ पत्र थे। भक्तों के नाम हटाकर हम पत्र ज्यों-के-त्यों रख रहे हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्र नं० १

किशन भैया,

उस दिन गली के नुक्कड़ पर खड़े हम सोच रहे थे कि तीन महीने से हम 'गोकुल छाप' मक्खन खा रहे हैं, बाबा नन्द की दुकान का दूध पी रहे हैं और गोपी घी का सेवन कर रहे हैं। हमें लगा कि हम तुम्हारे निकट आ गये हैं, तभी बगल के मकान की ऊपरी खिड़की से किसी सुन्दरी ने झांका।

"रुक्मिणी, किसी भले आदमी को देखकर कूड़ा फेंकना!" की आवाज़ सुनकर हमें बिजली का करेंट मार गया। सहसा लगा कि तुम्हारी आत्मा ने हमारे शरीर में प्रवेश कर लिया है। हमने ऊपर देखकर खांसा, तो रुक्मिणी ने मठारा। हम ऐंठते आगे बढ़े तो हमारे सिर पर कूढे का ढेर। सिर से कागज़ हटाते हुए जो खिड़की की ओर देखा तो रुक्मिणी खील-सी खिली पड़ रही थी। उस कागज़ पर निगाह गई तो रुक्मिणी की बाईसवीं वर्षगांठ पर शाम का निमन्त्रण-पत्र था। रहा-सहा शक भी जाता रहा और हमारे मन में कुछ बताशा-सा घुल गया।

शाम को रुक्मिणी को हमने एक बांसुरी भेंट की। लौटते समय बरामदे में बगल के कमरे से हमने सुना, कोई जोर से कह रहा था, "हम रुक्मिणी की यह शादी कैसे कर सकते हैं ? हमारे पास बीस हजार कैश कहां है ?"

इसी समय झुंझलाती रुक्मिणी उस कमरे से बाहर निकली तो हमने शान्त गम्भीर स्वर में कहा, "हम तुम्हारा अपहरण करने को तैयार हैं।"

"क्या बक रहे हैं आप ?"

"हम बक नहीं रहे रुक्मिणी, दहेज में हमें एक पैसा नहीं चाहिए। बारात एक आदमी की भी नहीं। बोलो, क्या कहती हो ?"

"मैं तो आपको एक गप्पी ही समझती थी और थोड़ा ऊधमी भी। क्या सच कह रहे हैं आप ?"

"कृष्ण को तुमने पहले जन्म में भी तो यही समझा था। हम इसी क्षण तुम्हें रिक्शा में ले जाने को तैयार हैं। तुम्हारा भाई या शिशुपाल तो बाधा नहीं है ?"

"मैं ग्रेजुएट हूं, बालिग हूं। शिशुपाल की फर्म में मेरा भाई मैनेजर है, इसीलिए वह मेरी शादी शिशुपाल से करना चाहता है।"

"शिशुपाल को हम बाद में देख लेंगे।"

"मैं अभी आयी एक मिनट में।"

और किशन भैया, हमने रुक्मिणी के साथ कोर्ट में शादी कर ली। रुक्मिणी का बाप बड़ा खुश था। उसके भाई को किसी प्रकार समझा लिया। मगर शिशुपाल से एक दिन हमारा मुकाबला हो गया। लगा गालियों पर गालियां बकने और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बोला, "मुझे मालूम होता तो मैं दहेज न लेकर और रुपये दे देता। मगर मैं तुम्हें अभी देखता हूं।"

"देखो शिशुपाल, केवल सौ गालियां माफ करूंगा, इसके बाद तुम्हारी गर्दन होगी और हमारा…"

किशन भैया, हम बात पूरी भी न कर पाये थे कि शिशुपाल ने अपना सीधा हाथ बढ़ाया। हमने भी इतमीनान से अपना सीधा हाथ आगे कर दिया। किन्तु आश्चर्य कि उस कमबख्त ने एक सेकंड में हमारा पंजा धोती-सा निचोड़ दिया। हमारे मुख से चीख निकल गई।

हम सीधे 'गोकुल छाप मक्खन' की डेरी पर गये तो डेरी का घेरा पड़ा हुआ था। हमें बताया गया कि भारी मिलावट पकड़ी गई है। हम बाबा नन्द की दुकान की ओर भागे जो डेढ़ इंच मोटी मलाई का दूध हमें पिलाता था। देखा तो वहां भी नमूना भरा जा रहा था। पता लगा कि गर्म दूध में सेरों सोख्ता घुसेड़ दिया करता था। गोपी घी के बारे में मालूम हुआ कि थर्ड क्लास वनस्पति है।

किशन भैया, तुम्हारे नाम से इन चीज़ों का सम्बन्ध क्यों जोड़ लिया गया है? डर है कि कुछ समय के बाद लोग तुम्हें सबसे बड़ा मिलावटी कहने लगेंगे। फिलहाल तो मैं पंजे पर आइडैक्स मलवाकर रुक्मिणी से सिकाई कराता हूं।

पत्र नं० २

महादेव बाबा,

आपसे क्या कहूं? आप तो बाबा हैं, मैं नाती हूं। फिर भी एकाध प्रश्न आपसे पूछता हूं। आपके एक सुपुत्र कार्तिकेय छः मुख वाले हैं और दूसरे चिरंजीव गणेश का मुख हाथी का है, भला आपके राशन कार्ड में कितने यूनिट हैं? मुंह के हिसाब से हैं या शरीर के हिसाब से? एक प्रश्न और, बाबा! गणेशजी की सवारी चूहा है, उसे आपके गले का सर्प नहीं खाता, सर्प को श्री कार्तिकेय की सवारी मोर नहीं खाती। आपके कैलाश में, जहां बर्फ के सिवा कुछ पैदा नहीं होता, यह कैसे संभव है? हमारे भारत में तो आदमी आदमी को खाये जा रहा है बाबा, आपको महादेव ठीक ही कहा जाता है क्योंकि भक्तों को सब कुछ देते हो और स्वयं नंग-धड़ंग रहते हो। हमारे यहां भी ऐसा ही नंग-धड़ंग बाबा महात्मा गांधी हुआ है, जिसने भक्तों को सब कुछ दिया और स्वयं बेचारे को गोली खानी पड़ी। आपने तो ज़हर को कण्ठ में ही रोक लिया। लेकिन आदर-सम्मान बाबा आपका भी है और महात्मा गांधी का भी। खैर बाबा, मुझे तो कुछ और ही कहना है। आपकी पत्नी हिमालय-पुत्री है। बाबा! मज़ाक-सा लगेगा, मगर है सच। मैं भी एक अदद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शैलकुमारी का पति हूं, मगर जहां पहाड़ों पर भी पार्वती आप नंग-धड़ंग से कुछ नहीं कहतीं और भांग घोट-घोटकर पिलाती हैं, वहां मेरी पर्वत-पुत्री मुझे अण्डर-वीयर और बनियान पहनकर चबूतरे पर भी नहीं जाने देती और मात्र होली पर भांग की जरा-सी छूट देती है। अस्तु, अपनी-अपनी किस्मत है, बाबा ! और क्या ?

पत्र नं० ३

हनुमान बाबा,

बजरंगबली ! आपकी महिमा अपार है। अखण्ड बाल ब्रह्मचारी हो, शायद इसीलिए महिलाओं का अपार समूह निश्शंक हो आपके दर्शनों को आता है। मगर आपके दर्शन-आंगन में आज के कुछ बाल ब्रह्मचारी आपके स्वामी राम की फूल तोड़ने वाली कथा बड़े चाव से दुहराते हैं। अन्तर इतना ही है कि राम ने शिव-धनुष बाद में तोड़ा था मगर आपके ये छात्र-भक्त शिव-अशिव का बन्धन स्वीकार नहीं करते। हां, परीक्षा के समय धुएं से मुक्त कर सिगरेट छिपा आपको बड़ी श्रद्धा से जरा-सा सिर इस तरह झुकाते हैं जैसे आपकी नमस्ते का उत्तर दे रहे हों।

जो भी हो, बाबा, आपके पुजारी भी दम लगाने और सट्टा बताने के अलावा कोई काम नहीं करते। मेरे ऊपर तो आप कृपा बनाये रखें। मैं आपका पूरा भक्त हूं। आज भी हनुमान चालीसा श्रीमतीजी के बक्स में, जिसे वे अपने मायके से गौने में लायी थीं, बन्द है।

पत्र नं० ४

गणेशजी,

जब मेरी सोलहों फूट जाती हैं तब मैं आपकी शरण में आता हूं और हर बार आप मुझे उबारते हैं। आशा है इस बार भी सहायता करेंगे। बात यह है कि कमाते-कमाते तेईस वर्ष हो गये मगर पांच हज़ार रुपये का कर्ज आज भी है। अगर आपकी सूंड जरा-सी हिल जाए तो मेरी सारी परेशानियां दूर हो जाएं। हे विघ्नहरण ! आपने महाभारत की पाण्डुलिपि तैयार की थी और व्यास के निकट सम्पर्क में भी रहे हो। अतः किसी प्रकाशक को प्रेरणा देकर मेरी दो-चार पुस्तकें प्रकाशित करा दो और अग्रिम रायल्टी दिला दो। बस, मेरा बेड़ा पार है। भैया श्यामसुन्दर ने मुझे अच्छा प्रकाशक नहीं दिलवाया। हाय! कितना लुभावना नाम था प्रकाशक का ! त्याग, उदारता और कर्तव्य सिखानेवाला था उसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दू धर्म, चन्द हसीनों की तरह मुसकराता था और संत की तरह लेखक को बातों में उलझाता था। उसने सन् १९६१ में मेरा उपन्यास छापा। जनवरी १९६८ में मैंने उसके उसकी मांद में ही जाकर दर्शन किये और मौखिक ठहरी रायल्टी की याद दिलाई तो उसने कितने सत्य वचन बोले, "पचास हज़ार का मैंने मकान बनवाया है, बीस हज़ार की कार खरीदी है, तुम्हारे सौ-डेढ़ सौ रुपये कहां से दूं ?"

सो हे दयालु भाई, ईमानदारी से जो मेरे पैसे दे दिया करे ऐसा प्रकाशक दिलवाना। यदि इस प्रकार मेरा ऋण समाप्त हो गया तो मारे खुशी के मैं एक बार बिना तय किये ही रिक्शा में सवार हो जाऊंगा, बजाजे की सबसे बड़ी दुकान से अण्डरवियर का कपड़ा खरीदूंगा, टायर के सैंडिल छोड़ चर्रमर्र के जूते लूंगा और आपको लड्डुओं का प्रसाद चढ़ाकर स्वयं खा दूसरों को बांटने की सोचूंगा।

हे गणेश भाई ! अगर इस बार भी मेरी सहायता पहले की तरह की तो आपकी बहुत बड़ी मूर्ति लाऊंगा।

इसमें आखिरी पत्र तो हमारे काम का भी है। भला कौन-सा प्रकाशक अग्रिम रायल्टी देता है। ऐसा प्रकाशक तो वास्तव में 'देवता' होगा, क्योंकि हमने तो सभी प्रकाशक आज तक 'लेवता' ही देखे।

हां तो, हम पुनः बाज़ार की ओर चले। श्रीमतीजी ने दरवाज़े पर आकर आवाज़ लगाई, "रामचन्द्रजी मत ले आना, उन्होंने तो धोबी के कहने से गर्भिणी गृहलक्ष्मी को घर से बाहर निकाल दिया था।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर उपदेश कुशल

भारतीय संस्कृति का यह कमाल है कि भारतीय पूत पालने में आने से पूर्व ही आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत् और ब्रह्म, इहलोक-परलोक, स्वर्ग-नरक, हिंसा-अहिंसा, सत्य-असत्य एवं धर्म-अधर्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है अत: उसे किसी भी विषय पर कुछ भी पढ़ना शेष नहीं रहता और वह हर विषय पर भाषण या उपदेश देने में सर्वथा समर्थ होता है। बात-बात में वह आकाश और ब्रह्म की ओर संकेत करता है, रह-रहकर वह भाग्य का नाम लेकर कन्धें उचकाता है। परिणाम यह निकलता है कि किसी भी भारतीय को आप किसी भी पद पर बैठाल दीजिये, वह उस पद के कर्तव्य भली प्रकार निबाह लेता है क्योंकि भाषण या उपदेश देने और हाथ उठाने से कौन-सा काम हल नहीं होता ? शोक और सहानुभूति प्रकट करना, बधाई और धन्यवाद के सन्देश भेजना, कड़े विरोध-पत्र लिखना, संकल्प और प्रतिज्ञाएं लेना, किसी भी उद्घाटन या समापन पर कुछ कह देना, किसी भी भारतीय के लिए सहज स्वाभाविक है। भाषण या उपदेश देने में कुछ गांठ का तो खर्च होता नहीं, जुबान तक नहीं घिसती और आनन्द बहुत आता है। स्वयं को महान् और दूसरों को मूर्ख समझने का इससे सुन्दर अवसर अन्य नहीं होता,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अत: भारत में हर स्थान पर गन्दगी के समान भाषण और उपदेश भी पाये जाते हैं।

भारतीय संस्कृति का दूसरा कमाल यह है कि उपदेशक को स्वयं अपने उपदेश पर चलने की आवश्यकता नहीं होती। कथनी और करनी में भेद रहना अनिवार्य है। वास्तविकता तो यह है कि मंच पर चढ़कर तो सभी राजा विक्रमादित्य हो जाते हैं किन्तु मंच से उतरे नहीं कि पुन: गड़रिये के गड़रिये।

अधिक दिन नहीं हुए। मद्रास में निवास करनेवाले भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन के दर्शनार्थ कुछ छात्र गये तो उन्होंने छात्रों को सन्देश दिया, "जिस प्रान्त में रहो, वहां की भाषा सीखो।"

सभी जानते हैं कि राधाकृष्णन ने पचीसों वर्ष उत्तरी भारत में गुजारे। वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में वर्षों प्रोफेसर रहे, फिर उप-कुलपति रहे, उपराष्ट्र-पति रहे, फिर राष्ट्रपति भी, किन्तु उत्तर भारतीय नागरिक उनके मुख-कमल से हिन्दी का एक शब्द सुनने के लिए तरसता रह गया। संस्कृत के श्लोकों को छोड़ वे अंग्रेज़ी के अतिरिक्त शायद ही कभी राष्ट्र की भाषा में बोले हों। ऐसी दशा में छात्र उनके मुंह पर नहीं हंसे, इतना ही क्या कम है।

२१ अक्टूबर शनिवार को सुबह देहरादून स्कूल के स्थापना-दिवस पर आयोजित सभा में उपप्रधान मन्त्री श्री मुरारजी देसाई ने कहा कि लोगों को पश्चिम का अनुकरण करना छोड़ देना चाहिए। केवल बन्दर अनुकरण करता है अत: किसी से मिलने पर आप उनसे हाथ नहीं मिलाइये, हाथ जोड़कर नमस्कार कीजिये और अपनी शक्ति बचाइये।

उसी शनिवार के दिन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी अपनी विदेश यात्रा से नई दिल्ली लौटीं तो पालम हवाई अड्डे पर श्री मुरारजी देसाई ने उनसे हाथ मिलाकर स्वागत किया। हिन्दुस्तान २३ अक्तूबर, १९६७ से दोनों समाचारों की पुष्टि की जा सकती है।

१६ दिसम्बर के 'अमर उजाला' का प्रथम पृष्ठ का प्रथम कॉलम पढ़ने पर ज्ञात होगा कि जो लोग आज हिन्दी के लिए 'अंग्रेज़ी साइनबोर्ड पोत आन्दोलन' चलवा रहे हैं, उनके बच्चे अंग्रेज़ी के कॉन्वेंट स्कूलों में पढ़ रहे हैं।

भारत की रेड़ इसी उपदेश प्रथा ने मार दी है। गेरुए वस्त्र पहनकर कोई भी बदमाश उपदेशक बन जाता है और असूर्यम्पश्या वधुओं से चरण-स्पर्श कराता है और आशीर्वाद देता है। ब्राह्मण तो जन्मत: उपदेशक होता है। इन दोनों वर्गों को हर प्राणी यहां तक कि अपना बाप भी 'बच्चा' ही नज़र आता है।

'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' भारतीय परम्परा रही है जो आज सर्वाधिक चरितार्थ हो रही है। हर नेता और शासक देश को सुधारने को व्याकुल है, फिर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी देश सत्यानाश की ओर बढ़ रहा है। कारण यही है कि हर सुधारक के हाथ में गन्दा तौलिया है, फिर देश कैसे साफ हो ! वे दिन गये जब गांधी नाम का फकीर जो कहता था वही करता भी था।

समाज के प्रतिष्ठित कर्णधारों को देखिये। दहेज के विरोध में सुई की नोक की तरह सबसे आगे रहेंगे मगर यही वे व्यक्ति हैं जो नकद मिले रुपये को प्रतिष्ठा का मापदण्ड मानते हैं। आश्चर्य तो उन महिलाओं पर आता है जो कन्या के रूप में दहेज के कारण आत्महत्या करने की सोचती हैं मगर मां बनकर सब भूल जाती हैं और दहेज मांगने में खसम से भी अधिक मुंह फाड़ती हैं।

अभी उस दिन की बात है। एक परिवार नियोजन अधिकारी ने परिवार-नियोजन पर बड़ा सुन्दर और प्रभावशाली भाषण दिया और नसबन्दी के लाभ इस मनोहर ढंग से समझाये कि उनके गले में माल्यार्पण करनेवाले बालक ने अपना नेकर उतार दिया। तभी उन अधिकारी को सूचना दी गई कि तुरन्त घर जाएं, आठवें प्रसव के लिए श्रीमतीजी को प्रसूतिका-गृह ले जाना है।

रोज़मर्रा के जीवन में भी 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' के अनेक उदाहरण देखने को मिल जाते हैं। एक हमारे पड़ौसी हैं। वे जानते हैं कि हमारे ऊपर काफी उधार है। प्रति मास एक इतवार को वे हमें उधार लेने के दुर्गुण अवश्य समझाते हैं, 'उधार तो कभी न ले। इज्जत तो धूल में मिलती ही है, आदत बिगड़ जाने से पैर हमेशा रजाई से बाहर रहते हैं। जरा दस रुपये देना, अगली पहली को दूंगा।'

जी तो करता है कि उनका उपदेश उन्हें ही दे मारा करें।

एम० ए० में हमारे एक गुरुजी थे। संस्कृत और संस्कृति के प्रकाण्ड विद्वान्। भयंकर शास्त्री थे अतः कक्षा में उनका बड़ा आदर और आतंक था। एक बार उन्होंने समाज पर सिनेमा के दुष्प्रभाव पर उपदेश दिया। अन्त में बोले, 'चलचित्र बहुत सोच-समझकर देखना चाहिए। हमने अभी तक केवल दो-तीन चित्र ही देखे हैं—रामराज्य, कादम्बरी और स्वयंसिद्धा।'

तभी छात्रा कुमारी मनोरमा ने बड़े मीठे स्वर में कहा, 'मगर गुरुजी, कल ही हमने आपको अनारकली देखते हुए देखा था।'

अब गुरुजी हुल-हुल कर हंसे और छात्रों ने तालियां बजाईं।

हमें अपनी कक्षा तीन की बात भी अभी तक याद है। पं० चन्दनसिंह शर्मा ने छात्रों को इबारत बोली, 'लिखो, तम्बाकू पीने से अनेक हानियां होती हैं।' साथ ही उन्होंने हमें आदेश दिया, 'चल बे ! चिलम भर के ला।'

बस, एक उदाहरण और। एक कवि हैं, बहुत ही भावुक और मधुर-भाषी। यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं। फूल चौराहे पर मिले तो लम्बी सांस ली, 'भाई, शादी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं करनी चाहिए साहित्यकार को। शर्माजी को देख लो, शादी के बाद सब लिखना भूल गये।'

'सभी ऐसा कहते हैं,' हमने सांस छोड़ी 'मगर मौका लगते ही शादी करते हैं। हम भी शादी के खिलाफ थे किन्तु शादी की। पत्नी मर गई तो खूब रोये मगर दूसरी भी की। इसी प्रकार आपने भी शादी की है और अवसर आने पर दूसरी कर लेंगे।'

'नमस्ते !' वे बोले और एक ओर चल दिये।

संयोग की बात, उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। हम मातमपुर्सी को गये तो रोने लगे, 'मेरा तन टूट गया, मेरा मन टूट गया।'

'मेरा भी तन-मन टूट गया था, प्रोफेसर साहब ! आप भी दूसरी शादी कर लें, यही उचित होगा।' हमने कहा। साथ गया दोस्त बहुत नाराज हुआ।

उन्होंने दूसरी शादी कर ली। बस, इतना हुआ कि वे अब हमें नहीं बुलाते और कई बार जोर से नमस्कार करने पर जरा-सा सिर झुकाते हैं।

यह किसी से छिपा नहीं है कि सादा जीवन बिताने का उपदेश देनेवाले स्वयं ऐश की ज़िन्दगी बिताते हैं; 'आराम हराम है' कहनेवाले स्वयं हाथ नहीं हिलाते; 'जय जवान' का नारा का बुलन्द करने वाले सुरक्षा कोष का चन्दा खा जाते हैं; 'जय किसान' कहने वाले सिंचाई का प्रवन्ध नहीं कर पाते, 'जयहिन्द' के पोषक चीन के एटम बम के प्रश्न पर मौन धारण कर लेते हैं, 'दुश्मन को एक इंच भी नहीं देंगे' का बार-बार संकल्प लेनेवाले हर बार दुश्मन को सैकड़ों वर्ग मील भूमि देते जाते हैं; समाजवाद का नारा लगाया जाता है और दो प्रतिशत बोली जानेवाली विदेशी भाषा का सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयोग होता है; धर्म निरपेक्षता की विजय के लिए राष्ट्रपति पद के प्रत्याशी डॉ० जाकिर हुसैन को वोट देनेवाले उपराष्ट्रपति पद के प्रत्याशी प्रोफेसर हबीब को वोट नहीं देते।

सारांश यह है कि हमारी समझ से तो तुलसी बाबा का यह कथन 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' अमर वाक्य है जो सदा चरितार्थ होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिन एक : उद्‌घाटन-भाषण दो

१

भाइयो और बहनो !

आज मैं अपने आपको, आप लोगों के बीच पाकर बहुत खुश हूं। प्रसूतिका-गृह का उद्‌घाटन कर तो मैं और भी अधिक खुश हूं। यों हम अपने मां-बाप के ग्यारह भाई-बहन थे अतः जिससे जो चाहते, जबर्दस्ती करा लेते थे। मोहल्लेवाले या पड़ोसी हमसे आंख नहीं मिला सकते थे, फिर भी मैं भुला नहीं पाता कि मुझसे बड़े एक भाई और दो बहन जन्म लेते ही इस संसार से चल बसे थे। अतः बचपन से ही लालसा थी कि किसी प्रसूतिका-गृह का उद्‌घाटन करूं और लोगों को उसका महत्त्व समझाऊं। दरअसल बात यह है कि बहुत-से काम होते हैं कि जिन्हें पूर्वज करते हैं और लाभ उनकी संतान उठाती है। माली बुढ़ापे में भी इस आशा से पेड़ लगाता है कि वह न सही, उसके बच्चे फल खायेंगे। प्रसूतिका-गृह भी हमारे द्वारा रोपा ऐसा ही पेड़ है। हमें और आपको संतोष होना चाहिए कि प्रसूतिका-गृह में उत्पन्न होने की हमारी इच्छा परिपूर्ण न हुई तो हमारे बच्चों की होगी।

आप सब जानते हैं कि कल के दोस्त किन्तु आज के दुश्मन चीन से हमारा युद्ध चल रहा है और यह युद्ध लम्बा चलेगा। यह बात भी छिपी नहीं है कि चीन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की आबादी हमारी आबादी से ड्योढ़ी है। ऐसी दशा में प्रसूतिका-गृह का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। जितने अधिक प्रसूतिका-गृह होंगे उतने ही अधिक बच्चे होंगे। जितने अधिक बच्चे होंगे उतने ही अधिक युवक होंगे और तब हम चीन से दीर्घकाल तक करारी टक्कर ले सकेंगे। मेरी दिली तमन्ना है कि हर घर में नहीं तो हर मुहल्ले में एक प्रसूतिका-गृह हो। मैं पहले ही कह चुका हूं कि प्रसूतिका-गृह की संख्या पर बच्चों की संख्या निर्भर है और इस समय हमें बच्चों की बहुत आवश्यकता है। कितने मूर्ख हैं वे लोग जो परिवार-नियोजन की बात करते हैं। परिवार-नियोजन से तो प्रसूतिका-गृह ही बन्द हो जायेंगे।

लोग कहते हैं कि हमारा देश पिछड़ा हुआ है। असल बात यह है कि जब से विदेशी भारत आये, हम अपने आपको, अपनी प्रगति को भूल गये। स्मरण रखना चाहिए कि कभी भारत विश्व का गुरु था। जब सारा संसार अज्ञान के अंधकार में भटक रहा था, हमारे देश में वेद की रचना हो रही थी। प्राचीन भारत में क्या नहीं था ! प्रसूतिका-गृह के मामले में भी हम पिछड़े नहीं थे। आप सभी जानते हैं कि राजा सगर की एक रानी के साठ हज़ार पुत्र हुए थे। मैं समझता हूं भारत का यह विश्व-रिकार्ड है और अभी तक कायम है। भला किसी घर में इतने अधिक बच्चे पैदा होने का प्रबन्ध हो सकता है ? अतः किसी न किसी रूप में प्रसूतिका-गृह का समुचित प्रबन्ध अवश्य था। आज हम चतुर्मुखी प्रगति कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि हम प्राचीन आदर्श को पुनः प्राप्त करेंगे।

मुझे विश्वास है कि यहां जो भी मरीजा आयेगी, छोटी या बड़ी, गरीब या अमीर—सब को एक-सा विनम्र व्यवहार मिलेगा। हमें याद रखना चाहिए कि भावना से कर्तव्य बड़ा होता है। ऐसी दशा में, समाज में हर प्रकार के प्राणी रहते हैं। किसी परिस्थिति से विवश होकर हमें अवांछित कार्य भी करने पड़ते हैं अतः यहां कभी यदि कुंवारी या विधवा महिला भी आये तो भी उसका स्वागत ही होना चाहिए। हमें भूलना न चाहिए कि कुंवारी कुन्ती से ही दानवीर योद्धा कर्ण पैदा हुआ था। जहां सधवा स्त्रियां हमारी बहुएं हैं, वहां विधवा या कुंवारी लड़कियां भी आप लोगों की मां-बहनें हैं।

समय कम है अतः अधिक नहीं कहूंगा। अन्त में मैं आप सबका आभारी हूं कि प्रसूतिका-गृह में मुझे बुलाकर मेरी बचपन की इच्छा-पूर्ति की। मैं आप सब श्रोताओं से प्रार्थना करूंगा कि आप अभी से इस प्रसूतिका-गृह को तन-मन-धन से सहयोग प्रदान करेंगे और लोगों को इसका अर्थ समझायेंगे। जलपान-गृह की तरह यहां प्रसूतिका नहीं बिकती।

सब से अन्त में इस प्रसूतिका-गृह के कर्मचारियों के भाग्य से मुझे ईर्ष्या होती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि वे पैदा होते ही महापुरुषों के दर्शन नहीं करेंगे बल्कि उनके जनक भी कहलायेंगे। क्योंकि सब जानते हैं कि कोई नहीं जानता कि कौन बच्चा गांधी बनेगा और कौन जवाहर। मैं एक बार पुनः यहां के डॉक्टरों और नर्सों को उनके कर्तव्य और उत्तरदायित्व की याद दिलाता हूं और यह कामना प्रकट करता हूं कि वे आपस में मिलकर कुछ ऐसी मुस्तैदी से काम करेंगे कि एक बार मरीजा न भी आये तो भी प्रसूतिका-गृह का काम वन्द न हो।

जयहिन्द !

२

भाइयो और वहनो !

आज मैं अपने आपको आप लोगों के वीच पाकर बहुत खुश हूं। परिवार-नियोजन-केन्द्र का उद्घाटन कर तो मेरी खुशी और भी बढ़ जाती है। मुझे यह बताने में शर्म नहीं है कि मैं अपने मां-वाप की ग्यारहवीं सन्तान हूं। बड़ी मुश्किल से गुजारा हुआ। खाने, पहनने, पढ़ने आदि सभी आवश्यकताओं में इस संख्या ने गड़बड़ी पैदा की। अतः वचपन से ही मेरी तमन्ना थी कि किसी परिवार-नियोजन-केन्द्र का उद्घाटन करूं और उसका सामयिक महत्त्व लोगों को समझाऊं। असल में बात यह है कि कुछ काम ऐसे होते हैं कि जिन्हें जो सम्पन्न करते हैं, वे उसका लाभ नहीं उठा पाते। परिवार-नियोजन-केन्द्र भी एक ऐसा ही काम है जिसका लाभ हम न उठाकर हमारे वच्चे उठायेंगे। आखिर माली उन सभी पेड़ों के फल नहीं खाता जिन्हें वह अपने जीवनकाल में लगाता है। इस केन्द्र का लाभ भी हम न उठाकर हमारे बच्चे उठायेंगे। आखिर बच्चों की खुशी ही हमारी खुशी है।

आप जानते हैं कि कल तक जो चीन हमारा मित्र था आज हमारा दुश्मन है और उससे युद्ध चल रहा है। चीन की आवादी हमारी आबादी से ड्योढ़ी है, ऐसी दशा में परिवार-नियोजन-केन्द्र का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। हमें कमज़ोर और अधिक बच्चे नहीं चाहिए। हमें चाहिए स्वस्थ, शिक्षित और मजवूत इरादों वाले नौजवान। आज के युद्ध में जनसंख्या का निर्णायक महत्त्व नहीं है। महत्त्व है स्वास्थ्य और संयम का, अनुशासन का। जरा-से जापान ने द्वितीय विश्वयुद्ध में तहलका मचा दिया था और आज चीन न हांगकांग ले सकता है, न ताइवान। अतः हमें कमज़ोर और अधिक बच्चे नहीं चाहिए। हमें चाहिए स्वस्थ, शिक्षित और मजवूत इरादों वाले नौजवान, और यह तभी संभव है जब बच्चे कम पैदा हों। और बच्चे परिवार-नियोजन-केन्द्र द्वारा ही कम हो सकते हैं। अक्ल के दुश्मन हैं वे लोग जो अधिक बच्चे पैदा करने में देश का हित देखते हैं।

हमारे ही देश में ऐसे महानुभावों की कमी नहीं है, जो हमें सारी दुनिया से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पिछड़ा मानते हैं। छोटे-छोटे देशों को भी आगे बताने में उन्हें शर्म नहीं आती। वे अपने देश के प्राचीन गौरव, संस्कृति और सभ्यता को भूल जाते हैं। वे यह नहीं जानते कि किसी समय भारत सबका गुरु था। जब सारा संसार अज्ञान के अंधकार में भटक रहा था तब हम वेद की रचना कर रहे थे। क्या नहीं था प्राचीन भारत में ? परिवार-नियोजन को ही लें; सब जानते हैं कि राजा सगर की एक रानी से ६०,००० पुत्र थे और दूसरी रानी से मात्र एक। क्या अर्थ है इसका ? यही कि समझदार राजा ने परिवार-नियोजन के साधन अपनाये। परिवार-नियोजन का यह एक अनुपम उदाहरण है। मेरा विश्वास है कि कोशिश करने पर हम अपने प्राचीन आदर्शों को अवश्य प्राप्त कर सकते हैं।

मैं आशा करता हूं कि यहां जो भी आयेगा, छोटा या बड़ा, अमीर या गरीब, सभी से समान प्रेम-व्यवहार किया जायेगा। हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि भावना से कर्तव्य बड़ा होता है। अतः यहां जो भी आये वही लाभ उठाने का अधिकारी है। मैं तो यहां तक कहूंगा कि परिवार-नियोजन की शिक्षा विद्यालयों में अनिवार्य कर दी जानी चाहिए।

मैं आपका अधिक समय नहीं लूंगा। आप सौभाग्यशाली हैं कि आपके नगर में परिवार-नियोजन-केन्द्र खुला है। आप सब नर, नारी, बाल, युवा, वृद्ध से प्रार्थना है कि इस केन्द्र का पूरा लाभ उठाएं और तन-मन-धन से इस परिवार-नियोजन-केन्द्र को सहयोग दें। मुझे विश्वास है कि बच्चे उत्पन्न होने के भय से किसी कारण-वश जो हत्या या आत्महत्याएं होती हैं, वे न होंगी और समाज अपने को अधिक सुरक्षित अनुभव करेगा। अन्त में मैं आपका कृतज्ञ हूं और धन्यवाद देता हूं कि मुझे यहां बुलाकर मेरे बचपन की इच्छा पूर्ति की।

इस केन्द्र के कर्मचारियों से भी दो शब्द कहने हैं। उन्हें लज्जा और झूठे आडम्बर का परित्याग कर नियोजन साधनों का प्रचार करना चाहिए और लोगों को उसका लाभ समझाना चाहिए। मुझे पता लगा है कि कुछ कर्मचारी अविवाहित हैं। अधिक न कहकर इतना कहूंगा कि प्रत्येक कर्मचारी का अनुभवी होना आवश्यक है। उन्हें मैं उनके कर्तव्य और उत्तरदायित्व को एक बार पुनः याद दिलाना चाहूंगा। वे आपस में मिलकर ऐसी मुस्तैदी से काम करें कि एक बार नागरिकों का सहयोग न मिलने पर भी नियोजन-केन्द्र बन्द न होने दें और देश की प्रगति में अपना भाग अदा करें।

जयहिन्द !

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

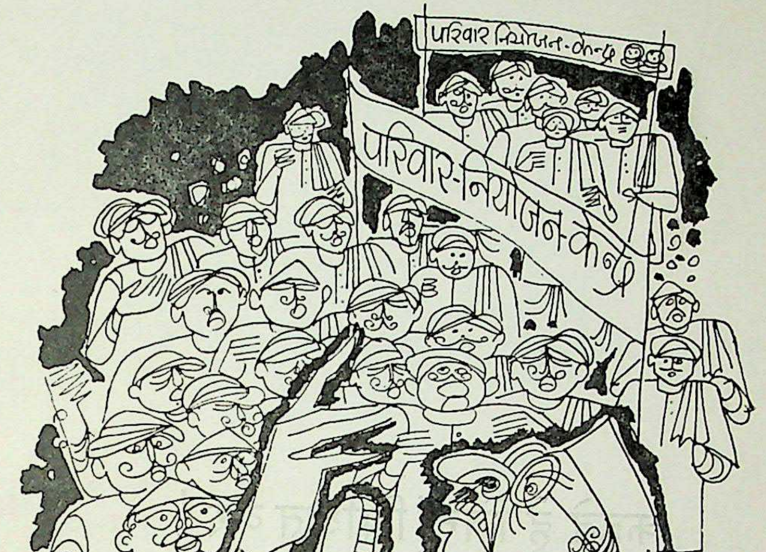

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहते हैं जिन्हें शिक्षित वर !

शीघ्र ही विभाग के युवक-अध्यक्ष की विद्वत्ता की चर्चा चारों ओर होने लगी। युवक बड़ी तैयारी के बाद विवाद-गोष्ठियों में भाग लेता। आत्म-विश्वास की यह सीमा थी कि करुण रस की व्याख्या करते समय भी वह कुर्सी फेंक देता और मेज़ गिरा देता। स्वाभाविक ही युवक समाज में चढ़ गया। एक कन्या-जनक के सामने समस्या आ खड़ी हुई। उन्हें युवक से बात करने का साहस ही न पड़े, कहीं शादी-ब्याह की बातों में बहादुरी न दिखा बैठे। आखिर युवक के एक मित्र का सहारा लिया गया। मित्र ने उस युवक को चाय पर अपने घर बुलाया और कन्या-जनक छिपकर वार्तालाप सुनने लगे। मित्र ने कहना आरम्भ किया, "दहेज के विरुद्ध तो तुम होगे ही।"

"निःसन्देह, इसमें पूछने की क्या आवश्यकता थी ?"

"तब तो तुम अपनी शादी में कैश कुछ नहीं लोगे ?"

"क्यों नहीं लूंगा, यही समय तो होता है जब बिना परिश्रम रुपया हाथ लगता है।" उस आदर्श युवक ने मेज़ पर घूंसा मारा। प्याला और प्लेट उछल-कर नीचे गिरे और टूक-टूक हो गये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युवक के चले जाने पर कन्या-जनक बोले, "अब हमारे काम को कौन रोकने वाला है ? आपके प्लेट-प्याले के लिए अफसोस है।"

"कोई बात नहीं।" मुसकराकर मित्र बोला, "रोटी गई...नहीं-नहीं, प्लेट-प्याला गया मगर जाति पहचान ली।"

इस घटना को दस वर्ष हो गये। कोई एक मास पूर्व हमसे एक गौर वर्ण सुन्दर नौजवान का परिचय कराया गया। शक नहीं कि नौजवान मुसकराता तो फूल झड़ते थे और बातों से भीनी सुगन्ध आती थी। हमने तुरन्त कहा, "यदि आप रुपये न लें तो एक निहायत सुन्दर लड़की की शादी का प्रस्ताव आपके सामने रखता हूं। लड़की एम० ए० पास है।"

"भाई साहब, तीस-तीस हज़ार के आफर आ चुके हैं।"

हमें फूल में कीड़ा नजर आया, "बीस हज़ार तो उस लड़की का बाप भी लगा सकता है।"

"तब आप बात कराइये।"

"मगर उस दशा में वह आपको पसन्द नहीं करेगा।"

"यह मेरा अपमान है।"

"नहीं, बिना रुपये के प्रस्ताव अब भी सामने है। आप तो पांच सौ रुपया मासिक भी नहीं कमाते, अतः इतनीसुन्दर पोस्ट-ग्रेजुएट कन्या के साथ बीस हज़ार खर्च कर आपको वरीयता नहीं दी जा सकती।"

और हम उस दिन समझे कि 'विष से भरा कनकघट' क्या होता है।

रात के बारह बजे भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म हमारे घर भी होने वाला था और हम सुबह से ही परेशान हो उठे। कारण, सड़े हुए खीरे और गले हुए अमरूद एक रुपये किलो बिक रहे थे और माहात्म्य लूटने के लिए प्रसाद इन्हीं चीज़ों का अनिवार्य था। बेचनेवाले निगाह न डालने देते थे, "बाबूजी, किशन भगवान् की किरपा से आज तो सब माल निकल जायेगा। कल किनारा काटते थे, बीमारी बेचने वाला कहते थे, अब परसाद में तो खाना ही पड़ेगा।"

इसी उलझन में थे कि क्या करें, तभी एक युवक आया और छूटते ही बोला, "क्या आप ही सम्पादकजी हैं ?"

"कहिये, आप कौन हैं ?"

"मैं नहीं बताऊंगा।" वह खाट पर बैठते हुए बोला, "मगर मान लीजिए कि आप किसी पत्र के सम्पादक हैं।"

अजीब आदमी था। हमसे मनवा रहा था और स्वयं नाम भी नहीं बता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहा था। हमने उसके शरीर को देखा, हमसे काफी उन्नीस था। अत: हमने भी खाट पर बैठते हुए कहा, "मान लिया कि हम पागल हैं और एक पागल से बातें कर रहे हैं।"

"नहीं-नहीं, यह नहीं माना जा सकता।"

"फिर मैं स्वयं को सम्पादक कैसे मान लूं ?"

"लेकिन मैं फिर बात नहीं कर सकता।"

"मत कीजिये।"

"लेकिन मैं बात करने आया हूं।"

"तो बिना सम्पादक बने कोई चारा नहीं ?"

"नहीं।"

"चलो, मान लिया कि मैं सम्पादक हूं। फिर ?"

उस युवक ने एक ठंडी सांस ली और बोला, "अब मैं असली बात पर आता हूं। एक इंग्लैंड-रिटर्न नवयुवक के पास विवाह के कई प्रस्ताव आते हैं।"

"अवश्य आयेंगे जब वह 'सर्वगुण संपन्न पति' का डिप्लोमा करके आयेगा।"

"लेकिन वह केवल एक के साथ विवाह कर सकता है।"

"च···च बेचारा !"

"आप मेरी बात तो सुनिये। जो सज्जन असफल हो जाते हैं वे नमक-मिर्च मिलाकर आपके पत्र में तरह-तरह के आक्षेप लड़के वालों के प्रति लगाते हैं। आप ऐसी हवा से प्रभावित हैं कि लड़की वाले बेचारे सीधे-सादे तथा गरीब होते हैं और लड़के वाले ही बदमाश होते हैं। लड़की वाले भी कम बदमाश नहीं होते।"

"आपका आशय है कि दोनों बदमाश होते हैं।"

"ऐं" ! जी हां, मगर समझा लड़के वालों को ही जाता है।"

"इसका अर्थ तो यह हुआ कि कुछ तो डबल बदमाश हुए, जिसके लड़का भी है और लड़की भी, जैसे हम। आपके पिताजी सिंगल हैं या डबल ?"

"जी ?"

"जी।"

"जी, मेरा मतलब था···"

"चलो, मान लिया। लड़के वालों के साथ ज्यादती की जाती है।"

"जी, बिलकुल। मैं कुछ नमूने आपके सामने रखता हूं। लड़की देखने वाले एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सज्जन से पूछा गया कि लड़की कैसी है ? बेचारे ने कहा, 'लड़की तो सब अच्छी ही होती हैं। आपकी लड़की भी अच्छी है। लेकिन अभी मैंने कोई निर्णय नहीं किया। मुझे अभी और भी लड़कियां देखनी हैं।' तो बस लाल तोते हो गये और अन्दाजा लगा लिया कि जहां ज्यादा दहेज मिलेगा वहां शादी होगी और आपने भी छाप दिया कि तीन-तीन बार लड़कियां देखते हैं। श्रीमान्‌जी, क्या आसमान टूट पड़ा ? लड़की सौ बार दिखानी होगी और शायद आपका काम फिर भी न बने ?"

"अजी, आप सौ बार कह रहे हैं, मैं कहता हूं हज़ार बार और लाख बार दिखानी होगी। अरे, लड़की ही तो है, कोई मूली या शलजम की गड्डी थोड़े ही है जो कुंजड़िन हाथ न लगाने दे। आगे चलिये।"

"एक सज्जन की लड़की जरा गौर वर्ण थी और जब लड़के वालों ने विवाह के खर्च के बारे में हिसाब लगाया तो क्रोधित होकर बोले, 'आपने लड़की की तरफ नहीं देखा। मैं अपने कलेजे का टुकड़ा तुम्हें दे रहा हूं। आपको लड़की बहुत तो मुझे लड़के बहुत।' श्रीमान्‌जी, लड़का क्या किसी के कलेजे का टुकड़ा नहीं ? क्या वह ऐसे ही रास्ते में से उठाकर लाया गया है ? लड़की का हाथ लड़के को सौंप देने से विवाह नहीं होता। कुछ खर्च होता है और उस खर्च को आप दहेज बतलाते हैं, यह ठीक नहीं।"

"आप सच कह रहे हैं। विवाह के खर्च के बारे में लड़की वाले को हिसाब लगाने का क्या हक है ? जब उसने एक बार लड़की पैदा कर ली तो उसके सारे अधिकार तभी छिन गये। वह क्या खर्च करेगा और कैसे करेगा, इसका अधिकार सिर्फ लड़के वाले को प्राप्त है। लड़की वाले का जिम्मा तो दामाद के लिए गौने, छोछक, सादें, भात आदि में कमा-कमाकर देने का है।

"यह भी आप सच कहते हैं कि लड़का भी अपने बाप के कलेजे का एक अदद टुकड़ा होता है। बल्कि वह जितना अधिक कमाता है अपने बाप के कलेजे का उतना ही बड़ा टुकड़ा होता है। और इंग्लैंड या अमेरिका-रिटर्न लड़के के कलेजे में तो खुद बाप घुस जाता है। अन्तर इतना ही है कि लड़की नाम का कलेजे का टुकड़ा अपने बाप से अलग हो जाता है और लड़का नाम का कलेजे का टुकड़ा अपने बाप से चिपका रहता है। यह कोई खास अन्तर नहीं है।

यह भी आप सच कहते हैं कि लड़का ऐसे ही रास्ते में से नहीं उठाकर लाया जाता। अरे! बाकायदा दर्द होता है और जान जोखिम में डाली जाती है। ज्यादा-से-ज्यादा उसे प्रसूतिका-गृह से उठाकर लाया जाता है, नहीं तो आमतौर से लड़के की फसल घर में ही पैदा की जाती है। यह अलग बात है कि कोई गरीब

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राहगीर या रिश्तेदार ही लड़का घर में डाल जाए, अथवा संयोग से गाड़ी या बस में प्रकट हो।

"सच, आपने यह भी कहा कि लड़की का हाथ लड़के को सौंप देने से विवाह नहीं होता। जब तक कि लड़की का कमाऊ भाई या पिता अपनी गर्दन वर या वर-पिता के पंजे में न फंसादे, जब तक कि वे कर्जदार न हों या मकान न बेचें, लड़की का विवाह संपन्न माना ही नहीं जाना चाहिए।

"और लड़की के विवाह में कुछ 'खर्च' होने को दहेज कहना घोर अवैधानिक और अनैतिकता है। आगे चलिए।"

"आपको ऐसी लड़की वाले बहुत मिलेंगे जो असफल होकर उसी लड़के को बदनाम करते हैं जिसके साथ सम्बन्ध करना चाहते थे। एक तो लड़की वाले अनीति से पैसा पैदा करते हैं और जब उनकी लड़की का रिश्ता पक्का नहीं हुआ तो लगे बुराई करने लड़के वाले की—'अच्छा ही हुआ जो मेरी लड़की ऐसे के घर नहीं गई, उसके घर में रखा क्या है ?' श्रीमान्‌जी ! जब अंगूर नहीं मिले तो कहते हैं कि अंगूर खट्टे हैं।"

"क्या मुहावरा तोड़कर उतारा है आपने। बस, इतना सुधार कर लीजिये कि वजाय 'अंगूर खट्टे हैं' की जगह कहा जाए 'लड़का खट्टा है'।"

"आप तो हमें बनाने लगे !"

"मैं क्यों आपको बनाने लगा। भला आपके पिताजी क्या काम करते हैं ?"

"अजी, पिताजी को छोड़िये। मैं कह रहा था कि जब लड़के वाले की बुराई दूसरे लड़के वाले के सामने करोगे तो वह कह सकता है कि 'यदि मैंने आपसे रिश्ता पक्का नहीं किया तो मुझे आप बुरा बतायेंगे।' यह बेवकूफ लड़की वाला नहीं समझता कि लड़के वालों की बुराई करके मैं अपना रिश्ता नहीं कर सकता।"

"बिलकुल, जी ! लड़की वाले को बजाय अनीति से पैसा पैदा करने के नीति-पूर्वक लड़का पैदा करना चाहिए। एकदम बेवकूफ हैं लड़की वाले जो लड़के वालों की बुराई करते हैं। यदि वे अपनी बुराई करें तो रिश्ता तुरन्त पक्का हो।"

"देखिये, आप फिर मुझे बनाने लगे, मैं चला।" युवक खड़ा हो गया।

वह इंग्लैंड-रिटर्न की बात करने वाला एबाउटर्न हो गया और हम प्रसाद-पचड़े को भूल सोचने लगे कि समाज के प्राण युवक होते हैं और इन प्राणों में रक्त-संचार करने वाला शिक्षित वर्ग ही होता है। किन्तु यही शिक्षित युवक वर्ग कायर और निरभिमानी है। उसे नये युग की चीज़ें तो सभी चाहिए मगर रूढ़ियों को, अनुचित और असामयिक रीति-रिवाजों और संस्कारों को मिटाने की उसमें रुचि नहीं है। उसे साइकिल, घड़ी, सोफासेट, सूट, पंखा, रेडियो आदि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभी कुछ चाहिए क्योंकि उसे अपनी भुजाओं में विश्वास नहीं है। उसे शादी के समय इन चीज़ों की भीख मांगने में अपमान दिखाई नहीं देता। ऐसे शिक्षित युवकों से किसी भी समाज और देश का पतन ही संभव है। ये किसी भी लोभ से कैसे लड़ सकते हैं? रिश्वत लेने और अपना ईमान बेचने में इन्हें कितनी देर लगेगी? इनके गृहस्थ धर्म का आरम्भ ही लूट-पाट (भयंकर दहेज) से होता है। किसी संघर्ष का सामना ये कैसे करेंगे? नैतिकता और ईमानदारी की प्रेरणा तो यह वर्ग देगा ही किसको?

और हमें याद आया एक सगाई का वह दृश्य जब एक अजनबी हमसे बोला, "सबके सामने इस तरह कर्जा क्यों उतारा जा रहा है?"

"यह कर्जा नहीं है।"

"तो इतनी रकम क्यों दी जा रही है? क्या लूट का माल बांटा जा रहा है?"

"नहीं।"

"या किसी अपराध का दण्ड वसूल किया जा रहा है?"

"हां, लड़की क्यों पैदा की?"

"यह तो खुली लूट है।"

"तो क्या हुआ?"

"लेकिन जनाब, इस रकम को देकर भी आप यह कैसे कह सकते हैं कि लड़की खुश रहेगी। ये लोभी लोग लड़की को क्या सुख देंगे? यह तो नारी जाति का अपमान है।"

"यह तो रकम देने वाले जानें।"

"जनाब, ये रकम देने वाले तो वही कर रहे हैं जो कभी बीमा कम्पनी किया करती थी। अब सहज ही ज्वाइंट बीमा नहीं होता।" वह अजनबी कह रहा था और हम सोच रहे थे कि देश और समाज को पतन के गर्त की ओर पहुंचाने में दहेज लेने वाला शिक्षित युवक वर्ग क्या अपनी पापी और अपराधपूर्ण भूमिका नहीं निभा रहा? और तभी हमारी निगाहों में 'विष-भरे कनक-घट' घूमने लगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्वान्सः मूर्खाः भवन्ति

जिस प्रकार स्वतन्त्र भारत का यह अर्थ नहीं है कि भारन ने अंग्रेज़ों के साथ-साथ अंग्रेज़ी की दासता से भी मुक्ति पा ली है, उसी प्रकार विद्वान का अर्थ भी अज्ञान के साथ-साथ मूर्खता से छुटकारा पाना कदापि नहीं है। कभी-कभी दिग्गज पी-एच० डियों और डी० लिटों के साथ सटकर खड़ा होने पर गर्दभराज की शोभा दुगुनी हो जाती है। ये विद्वान मूर्ख यों विचार-गोष्ठियों से लेकर संसद-भवन तक पाये जाते हैं किन्तु नेता-निकुंजों को छोड़कर इनकी घनी आवादी शिक्षा-संस्थाओं तथा सरकारी मंत्रालयों में होती है। सूरज की भांति ज्यों-ज्यों पद ऊंचा होता जाता है, मूर्खता की गर्मी से त्यों-त्यों जनता का पसीना निकलता जाता है। आइये, इस पुरातत्व-संग्रहालय (भविष्य में विद्वान मूर्ख-मण्डली का यही नाम पड़ेगा) के कुछ नमूने देखें।

इंग्लैण्ड से एक पानी का जहाज बम्बई आ रहा था। मार्ग में एक करोड़पति रईस की लड़की सागर में गिर पड़ी। रईस ने बहुत शोर मचाया किन्तु गरजते समुद्र में कूदने का साहस किसी को न हुआ। सहसा एक वृद्ध, जो राजनीतिशास्त्र का प्रकाण्ड विद्वान तथा विख्यात कूटनीतिज्ञ था, कूद पड़ा, और उस लड़की को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पकड़े-पकड़े डूबने लगा। कप्तान ने जाल डाला और बेहोश अवस्था में दोनों को निकाला। होश आने पर रईस ने सभी यात्रियों को एकत्र किया और घोषणा की, "आपने देखा कि जब मेरी इकलौती बच्ची गहरे सागर में गोते खा रही थी और मैं वर्बाद होने जा रहा था, इन वृद्ध महोदय ने हिम्मत की और मेरी बच्ची को बचा लिया। मैं अपनी आधी सम्पत्ति जो लगभग तीन करोड़ की होती है, इन्हें पुरस्कार-स्वरूप देता हूं। अब ये महाशय आपको बतायेंगे कि इन्होंने मेरी बच्ची को कैसे बचाया ?"

तालियों की गड़गड़ाहट के बीच उस वृद्ध विद्वान ने रुआंसे स्वर में कहना आरम्भ किया, "यह तो मैं बाद में बताऊंगा कि मैंने इस लड़की को कैसे बचाया, पहले मैं यह पूछना चाहता हूं कि मुझे धक्का किस उल्लू के पट्ठे ने दिया था ?"

कृषि-विशेषज्ञ, अनेक विदेशी पदवियों ने आभूषित डॉ० क्षेत्रपाल जब गांव में 'अधिक अन्न उगाओ' भाषणमाला में अणुशक्ति चालित औजारों का प्रयोग और लाभ समझा रहे थे तो किसी ग्रामीण ने दो हरी बालें रख दीं, "खाद-बीज-पानी का बढ़िया प्रबन्ध करते नहीं, सूखा भाषण दिये चले जा रहे हैं। बताओ इनमें से कौन-सी बाल जौ की है और कौन-सी गेहूं की।"

विशेषज्ञ महाशय चौंके, जैसे बीच जंगल में डाकुओं ने जंजीर खींच दी हो। संभलकर चुनौती स्वीकार की, "मामूली बात है, मेरा सेक्रेटरी ही बता देगा।"

सेक्रेटरी झिझका किन्तु विशेषज्ञ ने धक्का देकर आगे कर दिया। सेक्रेटरी ने राम का नाम ले एक बाल सीधे हाथ में उठा दी, "यह बाल गेहूं की है" और बाएं हाथ से दूसरी बाल हिलायी, "यह जौ की।"

किसान मण्डली धूप-सी खिली तो खांसते-मठारते विशेषज्ञ उठे। उनकी चाल काम कर गई थी। उन्होंने सेक्रेटरी को नालायक कहा और असीम विश्वास से बायां हाथ हिलाया, "ये बाल गेहूं की" और सीधे हाथ को ऊंचा उठाकर "यह जौ की है" कह ज्ञान-गर्व से किसानों की ओर देखा।

किसान मण्डली फूट-सी फिर फट पड़ी, "हमने कहा न कि पानी, खाद और बीज का प्रबन्ध कीजिये, दोनों बालें जौ की हैं।"

कभी-कभी विद्वानों का सम्पूर्ण समूह ही मूर्ख तत्त्व से बना हुआ होता है। एक बार अंग्रेज़ी भाषा के चोटी के विद्वान गोलमेज के चारों ओर आसीन हुए और एकमत से यह राय निश्चित की कि अंग्रेज़ी शब्दों के समानार्थी हिन्दी में नहीं हैं जब कि हिन्दी का कोई भी साहित्यिक या लौकिक भाव अंग्रेज़ी में उसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खूबसूरती के साथ अनुवादित हो जाता है।

ठीक उसी समय दरवाज़े पर जामुन वाले ने अत्यन्त मधुर स्वर में आवाज़ लगायी, "नमक में हिला दिये काले बताशे !"

तब एक चुपचाप बैठे व्यक्ति ने कहा, "यह वाक्य आप लोगों के सामने है। आप सब विद्वान् मिलकर इस वाक्य का अनुवाद इस समय कर दें या साल-छः महीने बाद। इच्छा हो तो लन्दन को फोन कर लें। वाक्य मैं फिर दुहराता हूं, 'नमक में हिला दिये काले बताशे।"

और उस समय अंग्रेज़ी भाषा की स्मृति में दो मिनट का मौन छा गया।

वाइस-चांसलर निर्णय दे रहे थे, "क्योंकि सर्वाधिक मत पानेवाले व्यक्ति का खड़ा होना ही अवैध था अतः उनकी जीत रद्द की जाती है और उनसे क्रमशः कम मत पानेवाले तीन व्यक्ति चुने जाते हैं।"

"ठीक है।" वरिष्ठ प्रोफेसरों ने पुष्टि की।

"लेकिन," एक छोटे अध्यापक ने कहा, "चुनाव पुनः होने चाहिए। क्योंकि यदि प्रथम व्यक्ति खड़ा ही नहीं होता तो उसे मिलनेवाले मत किसी भी अन्य प्रत्याशी को, जिसे आप समिति में नहीं ले रहे, विजयी बना सकते हैं।"

उपकुलपति तथा अन्य विद्वानों ने चौंककर स्वीकार कर लिया।

"आपके ज्येष्ठ पुत्र की आयु ?" प्रसिद्ध दार्शनिक से इण्टरव्यू-कर्ता ने प्रश्न किया।

"ठहरो !" और दार्शनिक ने अपनी श्रीमती को बुलाया, "हमारी शादी को कितने वर्ष हो गये ?"

"पचीस वर्ष।"

"बस, शादी के एकाध वर्ष इधर या उधर ही हमारे सोमेश का जन्म हुआ था।" बिना सिर उठाये उन्होंने उत्तर दिया।

क्लर्क ने एजेण्डा घुमाया। सभी विद्वान् सदस्यों ने समय-स्थान पूछकर हस्ताक्षर कर दिये। एजेण्डा की कुछ पंक्तियां इस प्रकार थीं—

"···ता० को···स्थान पर···के सभापतित्व में सभी गधों की एक आवश्यक मीटिंग होगी। आपकी उपस्थिति प्रार्थनीय है।"

शौकीन प्रोफेसर ने सलाह दी, "आप पैंट सिलवाना चाहते हैं तो गुप्ता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एण्ड को० से सिलवाइये, फर्स्ट क्लास शेरवानी सीता है।"

सम्पादकीय टिप्पणी में एक वाक्य का आरम्भ यों था —
"···देवी बाल ब्रह्मचारिणी हैं, हम सब की मां हैं···"

लेखक—"क्या आपने मेरा नया सामाजिक उपन्यास पढ़ा है ?"

आलोचक—"क्यों नहीं ! आपने सामाजिक समस्याएं अच्छी उभारी हैं। नायक का चरित्र आरम्भ में दुर्बल है किन्तु अन्त में प्राणवान हो उठा है। नायिका का चरित्र अस्वाभाविक हो गया है। कुछ घटनाएं मुख्य कथा से सम्बन्ध नहीं रखतीं। यों उपन्यास रोचक है, भाषा कहीं-कहीं दुरुह हो गई है। गेटअप, छपाई, सफाई अच्छी है। कहीं-कहीं प्रूफ की गलतियां रह गई हैं जो अगले संस्करण में दूर हो जानी चाहिए। मूल्य कुछ अधिक लगता है। मिलने का पता ··"

लेखक—"लेकिन अभी प्रकाशित ही कहां हुआ है ?"

" 'उर्वशी' अत्यधिक सुन्दर पुस्तक है। मेरे अनुमान से इधर अनेक वर्षों में ऐसी उच्चकोटि की काव्य-पुस्तक नहीं निकली है।"

"आप अनुमान की बात करते हैं, ध्रुव मत है कि वह कवि को कालिदास और प्रसाद की परम्परा में बैठाती है। किन्तु खेद है कि मैंने 'उर्वशी' अभी तक नहीं पढ़ी। आपने ?"

"मैंने भी नहीं पढ़ी।"

विदुषी महिलाएं भी कम मूर्ख नहीं होतीं। एक बार बस में हाफ टिकट बचाने के लिए कंडक्टर को अपने बच्चों की उम्र यों बताई, "डेढ़ वर्ष, दो वर्ष, ढाई वर्ष···"

कंडक्टर ने विदुषी महिला से कहा, "आपके लड़के का टिकट पूरा लगेगा, चौदह वर्ष से कम उम्र नहीं है।"

"मगर मेरी शादी को तो दस वर्ष भी नहीं हुए।"

"मुझे आपके व्यक्तिगत जीवन से क्या वास्ता ?" कंडक्टर ने कंधे उचका दिये।

एकदम आधुनिक महिलाएं क्लब में चर्चा कर रही थीं। बात राजनीति,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सिनेमा और कॉलेज लाइफ से हटकर इस विषय पर आ गई कि उपस्थित महिलाओं में से सर्वाधिक सौभाग्यशालिनी कौन है ? संपत्ति और बैंक-बेलैंस को गोली मारकर, सर्व-सम्मति से मापदण्ड यह निश्चय हुआ कि जिसके पति की बीमा-पालिसी सबसे अधिक हो वही सर्वाधिक सौभाग्यशालिनी होगी। तब मिसेज चड्ढा चहकीं, ''मेरे हस्बैंड का बीमा १५००० का है !''

''मेरे हस्बैंड का इन्स्योरेन्स २५००० का है।'' मिसेज तिलैया निकल पड़ीं।

''और मेरे लाइफ-पार्टनर का ५०,००० का।'' मिसैज गुडबू ने झंडा गाड़ा, ''मैं सबसे अधिक फार्चुनेट वाइफ हूं।''

अन्त में मिसेज चटाई चीख पड़ीं, ''माईसैल्फ मोस्ट फार्चुनेट वाइफ हूं बिकाज माई हस्बैंड इज पायलट आफिसर, ऐनी मोमेन्ट डैथ हो सकता है।''

शेष सभी महिलाएं अपने-अपने दुर्भाग्य को कोसकर उदासीन हो गईं।

एक विदुषी महिला ने भूगोल के किसी विषय पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया। नक्शे निःसन्देह अत्यधिक सुन्दर थे तथा समान आकार के थे। नक्शों की प्रशंसा वह फेफड़े फुलाकर कर रही थी, ''कोई भी ऐसे नक्शों का निर्माण तो करे। मेरे बनाये हुए मौलिक नक्शे हैं।''

उसकी गर्व-घोषणा उचित थी, अतः सभी चुप थे। थीसिस पलटते समय एक नक्शे के स्केल पर निगाह गई तो शंका हुई। स्केल को उस महिला को दिखाया तो पहले उसे पसीने आए, फिर बेहोश हो गई।

वास्तविक बात यह थी कि स्वयं तो उन्होंने कुछ किया नहीं था, बड़े-बड़े नक्शों का फोटो खिंचवाकर एनलार्ज करवाया था और तब उनकी ज्यों की त्यों नकल करवा दी थी। परिणामतः उन छोटे नक्शों में भी स्केल का अनुपात (आर-ऐफ) वही था, जो बड़े-बड़े नक्शों में था।

अन्तिम उदाहरण।

रेल के डिब्बे में नीलामी हो रही थी। यूनिवर्सिटी के डीन फैकल्टी ऑफ आर्ट्स, जो विवशता में फर्स्ट क्लास की टिकट लेकर थर्ड क्लास में आ बैठे थे, सपरिवार दिलचस्पी ले रहे थे। नीलामी बाटा के जूतों की हो रही थी। प्रोफेसर साहब के सामने ही बैठे गंवार ने कहा, ''साहब, नीलामी में हमेशा धोखा रहता है, अकसर खराब चीज़ भेड़ दी जाती है। हम जैसे गंवार चंगुल में फंस जाते हैं, आप जैसे पढ़े-लिखे शहरी लोगों को झांसे में नहीं आना चाहिए।''

प्रोफेसर ने उस जूते को देखा-परखा। एकदम नया था। पहनकर भी देखा,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फिट था। बाज़ार में दाम पांच रुपये थे। १६ वर्ष के वाय, १७ वर्ष की बेबी तथा अप-टु-डेट मम्मी ने भी निरखा-परखा।

"दूसरा जूता दिखाना।"

नीलामी वाले ने वह जूता लेकर अन्य यात्रियों को दे दिया तथा अन्य यात्रियों से दूसरा जूता लेकर प्रोफेसर साहब को दे दिया। पहनकर देखा, ठीक था। अब डैडी, मम्मी, सन, बेबी—सभी की नीलामी लगाने पर सहमति हो गई। टेनिस खेलने में काम आयेगा।

गंवार ने फिर टोका, किन्तु प्रोफेसर ने बोली लगानी आरम्भ कर दी। १।।-) में जूता प्रोफेसर के सिर रहा। एक बार फिर एक-एक जूते को प्रत्येक सदस्य ने देखा और खुशी-खुशी डिब्बे में बन्द कर लिये।

उतरते समय गंवार ने फिर कहा, "हो सकता है कि इन जूतों में कोई खराबी न हो, किन्तु ५) का जूता १।।-) में क्यों वेचा जायेगा, यह बात समझ में नहीं आती।"

अगले स्टेशन पर प्रोफेसर साहब उतरे तो उनकी चप्पलें गायब थीं।

"कोई बात नहीं।" सारा शिक्षित परिवार लगभग एक साथ बोल उठा, "बक्स आदि खोलने की आवश्यकता नहीं है। नीलामी वाले जूते ही इस समय पहन लिये जाएं।"

चप्पलों के खोने पर तनिक भी दु:खी हुए बिना जूते निकाले और मुसकराकर एक के बाद दूसरा जूता पहना तो सहसा दर्द से चीख उठे, जैसे कांटा चुभ गया हो, "अरे, मर गये!"

"क्या हुआ?"

"दोनों जूते एक ही पैर के हैं।" प्रोफेसर साहब ने आह भरी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

4730

(एक) भारतीय मन्त्री का भौगोलिक वर्णन

स्थिति

चुनाव का टिकट मिलने से पूर्व इनकी स्थिति डांवाडोल थी किन्तु टिकट मिलते ही स्थिति पुख्ता और पायदार हो चली। अब तो इनकी स्थिति एकदम स्पाती है। मन्त्री होने से पहले इनके पूर्व में सट्टे लगाने वाले, पश्चिम में पनवाड़ी, मुंह के सामने एक लंबी वीरान सड़क एवं पीठ पीछे मुहल्ले के आवारा बालक लगे रहते थे। इनके नीचे उधार की चप्पल तथा चप्पलों के नीचे नंगी ज़मीन रहा करती थी। इनके ऊपर खुला आसमान तथा आसमान के नीचे बढ़ी हुई हज़ामत पायी जाती थी। किन्तु अब इनके पूर्व की ओर खुशामदी और प्रशंसक प्रदेश तथा पश्चिम में कोटा परमिट चाहने वाला घना जंगल पाया जाता है। इनके सामने माइक और जन-समुद्र लहराता है तो पीठ पीछे गुण्डों और पुलिस वाला पठार साथ चलता है। इनके नीचे विदेशी काठ से बनी कुर्सी अथवा भारतीय गरीबों के भाग्य की गद्दी बिछी होती है। इनके ऊपर गुटबाजी का वरद हस्त पाया जाता है। मूर्ख होने के कारण सभी लोग (जनता को छोड़) इनसे प्रसन्न रहते हैं। जब समझदारों और सिद्धान्तवादियों में भिड़न्त होती है तो निर्णय मूर्खों के 'हाथ' में होता है, परिणामस्वरूप इनकी स्थिति ऐसी है कि किसी भी स्थिति में नहीं घबराते।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इनकी और देश की अक्षांश तथा देशान्तर रेखाओं में कोई अन्तर नहीं है, अतः इनका क्षेत्रफल भी वही है जो देश का। यों देश का क्षेत्रफल भले कम हो जाए किन्तु इनके शरीर का क्षेत्रफल बढ़ता ही जाता है। एक बार वज़न लेने की मशीन पर चढ़ गये तो टिकट पर साफ़ लिखा आया, "एक बार में चार न चढ़ें।" एक बार हाथी पर बैठे तो बच्चों ने शोर मचाया, "अरे, हाथी के ऊपर हाथी !"

यदि मन्त्री-पद पर मरे तो सड़-सड़कर मरेंगे (सरकारी डॉक्टर सहज ही स्वर्ग नहीं जाने देते) और लाश को ढोने के लिए ट्रक की नहीं तो ढकेल की आवश्यकता अवश्य पड़ेगी।

प्राकृतिक दशा

मन्त्री होने से पूर्व इनकी प्राकृतिक दशा उत्तम थी। समूचा शरीर एक अदद में शुमार था। चाहे जिस समय सोकर उठते थे। किसी की कृपा हो जाने पर ही साबुन-स्नान करते थे। जो भी खाते थे, पचा लेते थे। पत्थर-हज़म चूरन के शौकीन थे। अब शरीर के पांच भाग हो गए हैं—हाथ, पैर, पेट, मुंह और सिर। केन्द्र (पेट) ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। वैसे देखभाल के लिए पांचों भागों के पांच सेक्रेटरी हैं। तोंद ने मर्यादा भंग कर दी है और चुंगी की ज़मीन पर चबूतरे-सी निकल आयी है। वक्त पर नौकर जगा देते हैं और गुसल करा देते हैं। देशी खाना खाते हैं, विदेशी शराब पीते हैं। समाचार-पत्रों के कथनानुसार आप प्रायः व्रत रखते हैं किन्तु सिविल सर्जन की जांच को सही मानें तो सदा अपच बना रहता है। देह की तोल आवश्यकता से बहुत अधिक है और बढ़वार के दिन होने के कारण कीमती कपड़े प्रति सप्ताह छोटे हो जाते हैं।

मंत्री होने से पूर्व आपके घर में सावन-भादों भी भयंकर 'सूखा' रहता था। अब देश के अनेक स्थानों पर सूखा है मगर आपकी कोठी में 'तरी' है।

जलवायु

मंत्री होने से पूर्व आपके पास छतरी न थी अतः चाहे जब वर्षा-जल का आनन्द उठाते थे। दिनचर्या में चौराहे के नल का प्रयोग करते थे और प्राकृतिक वायु का डटकर सेवन करते थे। लू की कोई चिन्ता न थी। ठंड से बचने के लिए आग और पैबन्द लगी रजाई का उपयोग करते थे। समस्त देश की जलवायु इनकी जलवायु थी। अब जलवायु आपकी कोठी में बन्दिनी है। एअर-कंडीशन्ड वातावरण में रहने को विवश हैं अतः देश की जलवायु का कोई ज्ञान नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किन्तु 'देश की हवा किधर बह रही है' विषय पर खूब बहस करते हैं। 'जैसी बहै बयार पीठ पुनि तैसी कीजै' के परम पुजारी हैं। जब सेवकगण खबर लाते हैं कि गर्मी बहुत पड़ रही है तो पहाड़ों पर चल जाते हैं।

प्राकृतिक वनस्पति एवं जीव-जन्तु

प्राकृतिक वनस्पति इनके शरीर पर उगने वाले बाल हैं। कभी-कभी जनता आन्दोलन करती है या विरोधी पक्ष इनके हलक में उंगली डालकर सत्य उगलवाता है तो इनके रोंगटे खड़े हो जाते हैं और पसीना उपजने लगता है।

यों कहने को आप आदमी कहलाते हैं किन्तु अनेक जीव-जन्तुओं के गुण आप में भरपूर पाये जाते हैं। हाथी की तरह मोटे हैं और झूमकर चलते हैं तथा कम देखते हैं। सिंह की तरह दहाड़ते हैं और भेड़िये की भांति भागते हैं। गिरगिट की तरह रंग बदलते हैं और बगुले के समान भक्त नजर आते हैं। कौवे की तरह मैला खाने वाले और गधे के समान मूर्ख तथा अड़ियल हैं। अवसर पर कुत्ते की तरह दुम हिलाते हैं। गम्भीर विषयों पर संसद में उल्लू सिद्ध होते हैं। गाय के समान सीधी जनता अपनी गाढ़ी कमाई का दूध इन्हें पिलाती है मगर ये जनता को सर्प की भांति काटे बिना नहीं मानते।

मिट्टी

निहायत बेशरम किस्म के हैं। अत: मालूम नहीं देता कि किस मिट्टी के बने हैं, किन्तु इतना निश्चित है कि एक दिन मिट्टी खराब जरूर होगी।

पैदावार

अपनी मूर्खता और मौर्ख्य-बहुमत के कारण देश के लिए अनेक मुसीबतें पैदा करते हैं।

खनिज पदार्थ

यदि टिकट न मिलता तो शायद कोयले की दुकान भी न कर पाते किन्तु मंत्री बनने के बाद इनकी चांदी ही चांदी है। संसद में सोना इन्हें बहुत भाता है। इनके (मत के) महत्त्व का लोहा पक्ष-विपक्ष दोनों ही मानते हैं। इनके पसीने में विदेशी नमक की बहुतायत पायी जाती है। अपना काम न बनते देख जवाहरलाल की दुहाई देने से नहीं चूकते।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीविका के साधन

उद्योग-धन्धे

संसदीय वेतन और भत्ते के अतिरिक्त चन्दा करना इनकी जीविका का प्रमुख साधन है। कोटा-परमिट देकर या ठेकेदारी दिलाकर भी अपना धन्धा चलाते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से इनके अनेक मित्र और रिश्तेदार अनेक तरीकों से इनकी जीविका का साधन बने हुए हैं। पूंजीपतियों से सम्बन्ध बढ़ाना और गरीबों को समाजवाद का आश्वासन देना भी इनका एक उद्योग है। सुपर बाज़ार खोलने में सहयोग करना तथा दल-बदल करना इनके नवीनतम उद्योग-धन्धे हैं। संक्षेप में, देश में हाथ उठाना और विदेश में पैर जमाना इनका प्रमुख उद्योग तथा देश के भविष्य को कन्धा देना इनका प्रमुख धन्धा है।

कृषि

मेज़ पर खेती करने के विशेषज्ञ हैं। ये प्रतिज्ञाओं और संकल्पों के बीज बोते हैं, आशा और विश्वासों की सिंचाई करते हैं, योजनाओं के ट्रैक्टर चलाते हैं और फाइलों की फसल काटकर रख देते हैं। सिंचाई के सारे साधन विदेशी हैं। अमेरिकी और रूसी नहरें विशेष रूप से तैयार की गई हैं।

अभी-अभी इन्होंने अपनी कोठी के गमले में एक बीज बोते समय कई चित्र खिचवाये थे और सम्वाददाता-सम्मेलन के समक्ष गमलों में काम आने वाले ट्रैक्टरों का निर्माण करने के लिए देश के वैज्ञानिकों को चुनौती दी थी। ऐसे दस हज़ार ट्रैक्टरों का आर्डर उसी समय अमेरिका भेज दिया गया और ताकीद कर दी गई कि अमरिका ऐसे ट्रैक्टर सप्लाई न करे तो रूस से मंगवाये जाएं। किसी भी देश से समाचार आने पर इन ट्रैक्टरों का सौदा तय करने के लिए प्रतिनिधि-मण्डल भेजा जायेगा। इस हेतु प्रभावशाली योजना बनाने के लिए पन्द्रह सदस्यीय आयोग भी तत्क्षण नियुक्त कर दिया गया जो यथाशीघ्र अपनी रिपोर्ट देगा। आयोग के सदस्य परामर्श के लिए विदेश भी जा सकते हैं। इसी सम्बन्ध में विदेश से किसानों की अदला-बदली करने का निश्चय भी किया गया।

यातायात के साधन

मन्त्री होने से पूर्व आप खरामा चलने पर विश्वास रखते थे। बहुत किया तो किसी यार की साइकिल के डंडे पर बैठ लिये। कभी पैसे हो गए तो रिक्शा पर सवारी कस ली। हर साल धूल के दिन आप बेलगाम गधे पर कूदकर जा चढ़ते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। मार्ग के आदि और अन्त अपने ही शहर की सड़कों और गलियों में समाये हुए थे। किन्तु मंत्री होते ही मार्ग विस्तार पाता गया। फलतः आप रेल को भी पीछे छोड़ वायुयान का प्रयोग करने लगे। इस प्रकार आपने पानी से डरने पर भी कई नदियां और सागर पार किये। यों आपकी आम सवारी विदेशी कार है।

जनसंख्या एवं प्रमुख नगर

अपने घर की जनसंख्या से आप कोई सम्बन्ध नहीं रखते किन्तु देश की जनसंख्या से रात-दिन चिन्तित रहते हैं। लूप के आप बड़े हिमायती हैं और कभी-कभी जोश में पुरुषों को भी प्रयोग करने का परामर्श दे बैठते हैं। आप भाषण किसी भी विषय पर दें, घुमा-फिराकर यह इच्छा अवश्य व्यक्त कर देते हैं कि भारत के प्रत्येक घर में लूप का कारखाना होना चाहिए। परिचितों को पान की जगह आप निरोध पेश किया करते हैं।

आपके निवास के प्रमुख नगर दिल्ली और बम्बई हैं। यों बैठकों और अधिवेशनों आदि के कारण आप लखनऊ, श्रीनगर, कलकत्ता, बंगलौर, जयपुर, मद्रास और पटना आदि देश के प्रसिद्ध नगरों का भ्रमण करते रहते हैं। किन्तु आपके दिमाग में मास्को, वाशिंगटन, पैरिस, बौन, टोक्यो और रंगून आदि भ्रमण करते रहते हैं।

मंत्री होने पर आपके पास सत्यानाश (बाढ़, आग, सूखा, भूकम्प) के स्वर्णिम अवसरों के अतिरिक्त गांवों से सम्पर्क रखने का कोई सूत्र नहीं रहा है।

रहन-सहन

मंत्री होने से पूर्व पत्थरों पर अर्राटे की नींद आती थी किन्तु अब रेशमी रजाई का बिनौला चुभता है। एक-एक मील की दूरी पर कोई छींकता है तो इन्हें जुकाम हो जाता है। स्वयं को गरीबों का सेवक और महात्मा गांधी का कट्टर अनुयायी कहते हैं किन्तु आपका जीवन-स्तर कंचनचंगा की चोटी से कम ऊंचा नहीं है। बिजली का मासिक व्यय हज़ारों रुपया बैठता है। टेलीफोन और फर्नीचर का खर्चा सुनकर बड़े-बड़े रईसों को पसीना आ जाता है।

व्यस्त बहुत रहते हैं। उद्घाटन, वन-महोत्सव, विदेश-भ्रमण, सभापतित्व, श्रद्धांजलि-समर्पण, बधाई-प्रेषण, वर्षगांठ और अभिनन्दन-समारोहों से ही समय नहीं मिलता। अतः इन्हें स्वयं पता नहीं रहता कि कब कौन-सी प्रतिज्ञा की और कहां कौन-सा आश्वासन दिया। अपने आमरण-अनशन की सूचना भी समाचार-पत्रों से ही जान पाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोकप्रिय होने के लटके आप खूब जानते हैं। देश की कितनी ही भूमि दुश्मन के कब्जे में रही आये मगर आप पड़ोसी प्रदेश से एक गांव या नदी-जल पर रार ठान प्रान्तीय लोकप्रियता बनाये रखते हैं। नागरिक लोकप्रियता के लिए कभी-कभी आप बस या राशन की दुकान पर क्यू में खड़े हो जाते हैं। फोटो खिंचते ही खिसक देते हैं। यदा-कदा विदेशी कार की जगह देशी कार का प्रयोग कर 'स्वदेशी' का नारा लगा देते हैं। विदेशों में एकाध बार शराब पीने या नाचने से इनकार कर भारतीय संस्कृति का मुख उज्ज्वल कर देते हैं। कहीं बाढ़ आयी तो लोगों को बचाने वाली एकमात्र नाव पर बैठकर सैर कर लेते हैं। वैसे बाढ़ग्रस्त इलाके का जायजा आप वायुयान या हैलीकोप्टर से लेते हैं। सूखाग्रस्त स्थानों पर आप स्वयं एक-दो बच्चों को कपड़े पहनाते और दूध पिलाते हैं। वितरण होने वाले अनाज की जांच करते हैं और हाथ जोड़ कंकालों की श्रद्धांजलि स्वीकार करते हैं (जैसे अपने बाप की कमाई बांट रहे हों)। सरकारी न्यूज रील तैयार होती रहती है।

आप यह समझने में असमर्थ हैं कि जब बिना हाथ-पैर हिलाये वे और उनके सैकड़ों आदमी कोठी में पलते और फलते-फूलते हैं तो कठिन परिश्रम करने पर देश में लोग भूखों कैसे मर सकते हैं ? आपकी राय में, जिस प्रकार भी हो, देश के रहन-सहन का स्तर अवश्य उठना चाहिए। किन्तु लोकतन्त्र के नाते स्तर उठाने का उत्तरदायित्व जनता पर ही है।

आपके इस नाजुक रहन-सहन का यह परिणाम निकला है कि जहां पहले आप चलचित्र-भवन में अभिनेत्रियों पर मुग्ध होकर हृदय पर हाथ मारकर शोर मचाया करते थे वहां अब एकान्त में हार्ट फेल होने का भय बना रहता है। अतः फोटो-ग्राफर के साथ एक डॉक्टर भी नत्थी रहता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टेलीफोन की मुसीबत

जब भेड़िये की मौत आती है तो वह गांव की ओर भागता है और यदि किसी के सुख-चैन की हत्या होने को होती है तो वह टेलीफोन लगवाता है। जिस प्रकार चुम्बक लोहे को और सरकारी कुर्सी भ्रष्टाचार को खींचती है उसी प्रकार टेलीफोन अनेक आपदाओं को निमंत्रण देता है। एक मछली सारा तालाब गन्दा कर देती है और एक टेलीफोन घर-भर की दिनचर्या को अस्त-व्यस्त करके रख देता है। अनेक समस्याओं को जन्म देने में टेलीफोन किसी भी मूर्ख मंत्री से बाजी मार ले जा सकता है।

हुआ यह कि हमारे ग्रह खराब थे जो टेलीफोन लगवा लिया। टेलीफोन का लगना था कि मुहल्ले भर में हल्ला हो गया और ऐसा लगा कि बुढ़ापे में हमें पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई हो। लोगों ने हनुमानजी का प्रसाद बांटने को कहा मगर टेलीफोन का बजरंगबली से कोई सम्बन्ध न होने के कारण हम इस प्रस्ताव से कन्नी काट गये। हम आपके सामने टेलीफोनजन्य आपदाओं के नमूने पेश करते हैं।

आज तक तो हम यही समझते थे कि भिखारी और चन्दा वाले ही वक्त नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखते और चाहे जब द्वार पर बांग लगा देते हैं मगर टेलीफोन वाले तो अपने बाप का घर समझकर घुसे ही चले आते हैं। आरम्भ में तो हमने घर-घुसरों का स्वागत भी किया। चाय-पान कराने लगे और दाल-सेव खिलाने लगे। पैसे लेने का तो प्रश्न ही नहीं था। इससे विचित्र दशा हुई। हमें भ्रम हो गया कि हमारा घर टी-स्टाल है, श्रीमतीजी चाय बनाने वाली और हम चाय परोसने वाले बेयरे हैं। हम समझ नहीं सके कि बिना टेलीफोन के अब तक लोग जीवित कैसे थे ? आदमी सफर करने से पहले हमारे घर अवश्य आता। पहला बिल आया तो दम निकल गया। चाय आदि के खर्चे से पहले ही परेशान थे। और लोगों से पता लगाया तो मालूम हुआ कि सब पैसे लेते हैं और न चाय-पान कराते हैं और न दाल-सेव खिलाते हैं। रातभर श्रीमतीजी से परामर्श कर हमने भी यही नियम निश्चित किया। दूसरे दिन सूरज निकलने से पहले ही पड़ोसी आये और हमने पैसे मांगे। पड़ोसी ने हमें ऐसे घूरा जैसे हम रक्षा-कोष का चन्दा मांग रहे हों। बोले, "मुझे नहीं मालूम था कि आपने यह धन्धा भी चालू कर दिया है, इस वार तो कर लेने दीजिये। आइन्दा से या तो पैसे लाऊंगा या कहीं और से कर लिया करूंगा।"

अब एक नई मुसीबत आयी रेजगारी की। लोग फोन करें और पांच-दस रुपये का नोट दिखाकर चलते बनें। टेलीफोन बिरादरी वालों से इसका उपयोग भी पूछा और शुरू कर दिया। फूटे पैसे हों तो फोन करो।

पहले जब लोग पैसे नहीं देते थे, उनमें लज्जा और संकोच भी था मगर अब पैसे फेंक ऐसा व्यवहार करते मानो दुकानदार से बातें करते हों। दुकानदार फिर भी आठ बजे दुकान बन्द कर देता है मगर टेलीफोन के ग्राहक को रात-बिरात का कोई खयाल नहीं। एक बार अखबार में पढ़ा कि रात को टेलीफोन करने के बहाने कुछ लोग घर में घुस गये और मारपीट कर कबाड़ा कर गए। हमने निश्चय किया कि रात को दस बजे के बाद ऊपर छत से झांको, तब दरवाज़ा खोलो। अब हालत यह कि बाहर किसी ने आवाज़ दी, हम ऊपर गये, जीने का ताला खोला, झांका और नीचे आकर द्वार खोला। द्वार बन्द किया कि फिर कोई महाशय आये। हम फिर ऊपर गये, जीने का ताला खोला, झांका और नीचे आकर द्वार खोला। द्वार बन्द किया कि पुनः किसी ने आवाज़ दी। दो दिन में पैर जवाब दे गये।

रात को एक बात और चुभी। जरा अन्दाज लगाइये। रात को किसी का द्वार पर आवाज़ देना, हमारा जांचना और द्वार खोलना। और इस क्रम को दुहराया जाना। बड़ा विचित्र लगा। बस, इस अनुभूति के बाद रात को द्वार खोलना बन्द कर दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

4730

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फोन ड्राइंग-रूम में था। लोग आते और फोन कर चले जाते। एक बार एक महाशय फोन करने के बाद टेबिल फैन ही उठा ले गये। हम इधर-उधर भागे और टेलीफोन करने वाले की आवाज़ को पड़ोसियों की आवाज़ों में ढूंढ़ा, मगर सब बेकार। छोटी-मोटी चीज़ों की तो हमने चिन्ता ही नहीं की थी मगर अब हमारा ड्राइंग-रूम में मौजूद रहना आवश्यक हो गया। यह चौकीदारी बड़ी कठिन थी। श्रीमतीजी का भोजन पकाना, नहाना, रामायण का पाठ करना, पूरे-पूरे सुनहरे सपने देखना, सब दूभर हो गया। कोई भी प्राइवेट काम निरापद नहीं रहा। कुछ तो बड़े विचित्र आते। आये और सामने बैठ गये। हमने लिखना बन्द कर दिया। वे बोले, "बड़ी गर्मी है।"

"जी हां, बड़ी गर्मी है।" हम कहते।

"कल कम थी।"

"जी हां, कल कम थी।"

"आज बहुत है।"

"जी हां, आज बहुत है।"

"कल इतनी नहीं थी।"

"जी हां, कल इतनी नहीं थी।"

वे मौन हो गये, हम लिखने लगे।

"ट्रकों की हड़ताल चल रही है।"

"जी हां।" हमने लिखना फिर बन्द कर दिया।

"बड़ा नुकसान हो रहा है।"

"ज़ी, बिलकुल।"

"वैसे इस हड़ताल के कारण टिण्डे दो आने सेर और लौकी ढाई आने सेर हो गया है।"

"आप सच कह रहे हैं।"

"वैसे हड़ताल से कोई लाभ नहीं।"

"जी हां, कोई लाभ नहीं है।"

वे फिर मौन हो गये। हमने फिर लिखने की सोची।

"इन्दिरा गांधी काहिरा गईं।"

"जी हां, गयीं।"

"युगोस्लाविया भी जायेंगी।"

"सुना तो है।"

"मास्को में वजाय दो दिन के पांच दिन रुकेंगी।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"जी हां, आपको सही मालूम है।"

"सब बेकार है।"

"जी !"

"मगर कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा।"

"जी, बिलकुल।" हम बिना सोचे-समझे 'जी हां पर जी हां' चिनते जा रहे थे, जम्हाइयां और अंगड़ाइयां ले रहे थे, मगर उनके मुख का नासूर रिसता ही जा रहा था। आखिर हमने कहा, "कहिये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं ?"

"जी, असल में जरा टेलीफोन करना था।" वे अति विनम्रता से बोले।

कभी-कभी ट्रंककाल आता है, "आपको कष्ट तो होगा मगर क्या करूं, मजबूरी है। सराय रहमान में पुल के ओर पास फलां के मकान पर अमुक साहब आज ही पहुंचे होंगे। उनके पिताजी का देहान्त हो गया है। कृपया सूचना दे दें। बिना उनके आये अर्थी नहीं उठेगी।"

और हम हैं कि सराय रहमान में पुल के ओर पास फलां के मकान का पता लगाने को कुत्तों से डरते डाकिये की तरह चक्कर काट रहे हैं। अनजाने में अमुक साहब से मुठभेड़ न हो जाए अतः सूचना के मुताबिक शक्ल मुहर्रमी बनी हुई है।

ऐसे फोन तो रोज़ आते हैं, "कृपया उनको बुला दीजिये।"

अब तनिक सोचने की बात है कि घर में तो हम अण्डरवियर पहने पड़े हैं, बुलाने कैसे जाएं ? मगर 'प्लीज' और 'कृपया' हमें विवश करते हैं कि हम कपड़े पहनें, पड़ोस तक जाएं, उन्हें समाचार दें और आकर पुनः कपड़े उतारें। न जाने कहां से फोन आता और एक 'कुमार' को बुलवाया जाता। धीमे-धीमे हमारी समझ में आ गया कि मामला प्रेम के इधर-उधर का है। कुमार तो प्रतीक्षा में रहते ही थे। मुसकराते आते और पन्द्रह पैसे में 'प्रेम की बतियां' खरीद लेते। पर्याप्त दिनों के बाद जब हम घर में घुस रहे थे तो सफ़ेद चेहरा लिये 'कुमार' साहब हमारे घर से निकल रहे थे। हमने ड्राइंग-रूम में जाकर फोन उठाया तो उधर से दर्द और रोष भरी आवाज़ आ रही थी, "अब चुप क्यों हो, जवाब दो! दो दिन आकर तुम यहां रहे और मेरा सत्यानाश कर गये। अब वायदे क्या हुए, मैं क्या करूं, मेरा क्या बनेगा ?"

सारा माजरा समझ में आ गया और शरीफ लोगों का प्रेम करने का सिद्धांत भी।

एक बहुत बड़े शरीफ की बात और सुनिये। भयंकर जाड़ों के दिन थे। हमारे दूर पड़ोस में एक फॉरेन-रिटर्न प्रिंसिपल रहते हैं। एक रात उनके पिता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जी, जो बहुत दिनों से बीमार थे, मर गये। प्रिंसिपल साहब रोते हुए आये और बोले, "रिश्तेदार तो घर पर काफी एकत्र हैं मगर फिर भी कुछ ट्रंक-काल करने हैं, हमारा टेलीफोन खराब पड़ा है।"

रात का एक बजा था। श्रीमतीजी को जगाया। प्रिंसिपल साहब से दो सहानुभूति के शब्द कह चाय सामने रखी और बच्चों वाले दो बिस्कुट भी। थोड़ी देर बाद उनके छोटे भाई आये और खाली प्लेट-प्याले पर ललचाई निगाह डाली। लाचार हो उन्हें भी चाय देनी पड़ी। धीमे-धीमे उनके सभी रिश्तेदार हमारे घर आ गये। सारा बीछन लगा दूध समाप्त हो गया, बच्चों के बिस्कुट बराबर हो गये। जिन लोगों को चाय न मिली वे हमें घूर-घूरकर देख रहे थे। किन्तु न हम हलवाई हैं, न घर में भैंस बंधी थी जिसे दुहते, निदान अपराधी बने चुप रहे आये। हालत यह कि हम सो भी न सकते थे। टेलीफोन के चारों ओर भीड़ जमा थी जिसने हमारे सभी गर्मी पहुंचाने वाले सामान—कंबल, रजाई, हीटर समेट लिये थे। श्रीमतीजी हमारी ओर ताक रही थीं और हम उनकी ओर। बहरहाल सुबह तक हमें रोनी सूरत बनाये जागना पड़ा। जाते समय एक साहब से कई बार कहा तब वे हमारा कंबल दे पाये।

लुफ्त तो तब आया जब उन ट्रंक-कालों का बिल भी हमें चुकाना पड़ा। क्योंकि प्रिंसिपल साहब ने पहले तो हमारे संकोच के साथ मांगने पर ध्यान ही नहीं दिया, फिर हमने जोर दिया तो बोले, "दे दूंगा अगले महीने, पर आप बड़े अशिष्ट हैं।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि अगला महीना अभी नहीं आया है। और हम सोचते हैं कि अब कोई मरे और टेलीफोन खराब हो तब देखेंगे।

खैर, हमने तो इन आफतों को किसी प्रकार झेला किन्तु श्रीमतीजी का स्नेह टेलीफोन के प्रति कम होता गया। पड़ोसियों और अजनबियों का वक्त-बेवक्त आना उन्हें पसन्द नहीं आया। लोग उन्हें जब पांच या दस का नोट दिखाते तो उन्हें (हमें भी) अजीब-सा लगता। लोग ट्रंक-काल बुक कराकर नौकरों की तरह ('प्लीज' और 'कृपया' शब्दों को छोड़कर) देखते रहने का आदेश दे जाते। ताला खुलवाकर भी लोग पसर जाते और हमारे कार्यक्रम रद्द हो जाते। एक बार ताला लगाया ही था कि घंटी जोर से बजी। ताला खोला, फोन उठाया तो आवाज़ आयी, "माफ कीजिये, रोंग नम्बर था।"

एक बार तो रात के तीन बजे फोन खड़खड़ाया। हमने नींद में किसी प्रकार रजाई से बाहर हाथ निकाला। कोई बोल रहा था, "मैं, भाई साहब, जनार्दन प्रसाद हूं, अजमेर से बोल रहा हूं। यहां टेलीफोन एक्सचेंज में काम करता हूं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खाली बैठा था। सोचा, आपसे ही बातें करूं, पहचाना आपने ?"

हम भला क्या कहते ? 'कृपा के लिए धन्यवाद' कह टेलीफोन रख दिया।

सम्प्रति श्रीमतीजी का क्रोध बढ़ता ही जा रहा है। लगता है कि मनुष्य जाति का यह श्यामल कर्णफूल हमारे यहां से उखड़ जायेगा।

4730

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वसूली किताबों की

हमने यह बात समझदारों को समझाने की बहुत कोशिश की है कि हम लाइब्रेरियन हैं, लाइब्रेरी नहीं। किन्तु लोग यह समझने से साफ इनकार करते हैं और हर विषय की पुस्तकें इस ढंग से मांगते हैं कि उन्होंने कहा नहीं कि हमने जेब में हाथ डाल पुस्तक निकाली नहीं। वे समझते हैं कि हमारे आंगन, ड्राइंग-रूम और रसोईघर में ऐसे सदाबहार वृक्ष लगे हैं जिन पर पहाड़े की पुस्तक से लेकर विश्वकोश तक विभिन्न विषयों की पुस्तकें फलती हैं।

कहते हैं कि गई किताब वापस नहीं आती चाहे तलाक देकर पत्नी घर लौट आये। विद्वानों का कथन तो यहां तक है कि राम ने रावण से सीता वसूल कर ली, अगर रावण राम की पुस्तक हरण कर ले जाता तो राम, हनुमान और सुग्रीव दर्जनों भयंकर युद्ध करने पर भी वसूल न कर पाते। अस्तु, किताब लेना या मांगना एक रिवाज है और उसे न लौटाना एक सिद्धान्त। किताब मांगनेवाले की विनम्रता और शालीनता के सामने शादी तय करने वाले कन्या-जनक की विनम्रता और शालीनता भी कुछ मायने नहीं रखती और किताब-मंगता के वायदों के सामने प्रेमिका से 'हां' कराने से पूर्व प्रेमी के वायदे भी फीके पड़ जाते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। यदि किताबें वसूल हो जाएं तो इसे सत्रह जन्मों का पुण्य ही समझना चाहिए। कभी-कभी किताबें वसूल करने वाला ईश्वर पर आस्था रख केसरिया बाना धारण कर निकलता है, फिर भी उसे निराशा हाथ लगती है। किन्तु आवश्यकता आविष्कार की अम्मा है अत: तैराने वाले जहां पानी पर पत्थर तैराते हैं, वहां लगाने वाले पानी में आग भी लगा देते हैं। वस्तुत: किताबें वसूल करना एक अद्‌भुत कला है। मुकदमेबाज़ी और जोर-जबर्दस्ती इस कला का कलंक है।

हमारे पड़ोसी ने ठेला उतारा और हमें डाक से सात पॉकेट बुक्स मिलीं। पड़ोसी ने चिकने और चमकीले आवरणों पर ललचाई निगाह डाली और होंठों पर जीभ फिराई। हमने एक किताब उनके सामने कर दी। तुरन्त उनकी श्रीमती जी सामने आयीं, हमने दूसरी किताब उनके सामने रख दी। फिर क्या था, पड़ोसी के फैशनेबुल लड़के-लड़कियां भी जैसे कूं-कूं करते घिर आये। हमने जल्दी से सारी किताबें उनके सामने डाल दीं और हाथ-पैर बचा, कपड़े समेट अपने घर में शरण ली।

अब हाल यह कि नये पड़ोसी हाथ न रखने दें। बिल्ली पहली बार में ही मारी जाती है, अत: हम सतर्क हुए कि कहीं नये पड़ोसी न निकलने वाली फांस सिद्ध न हों।

दफ्तर से लौटे तो श्रीमतीजी खल्लड़ में धनिया कूट रही थीं। खल्लड़ नया था। हमने पूछा, "किसका मांग लायीं ?"

"नये पड़ोसी का है।"

"वही जो किताबें डकार बैठा है ?"

"हां, वही।"

"जब तक हम न कहें, वापस न करना।" और हमने अपनी योजना श्रीमती-जी को समझा दी। श्रीमतीजी को भी वे पुस्तक पढ़ने को न मिली थीं अत: तुरन्त राजी हो गईं।

अब पड़ोसिन खल्लड़-मूसली मांगे और श्रीमतीजी इनकार कर दें। आखिर पड़ोसी ने एक दिन हमें पकड़ा, "आपके यहां हमारा खल्लड़-मूसली है।"

"तो ?"

"हमें उसकी जरूरत है। और न भी हो तो भी वह हमारा है।"

"फिर ?"

"फिर क्या, आपकी घरवाली वापस ही नहीं करती।"

"सुनिये।"

"जी।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"आपके पास हमारी सात किताबें हैं।"

"हैं, तो।"

"हमें उनकी जरूरत है। और न भी हो तो भी वे हमारी हैं।"

पड़ोसी तुरन्त अपने घर के अन्दर गये और हमें चार किताबें लाकर दीं।

हम भी तुरन्त अपने घर के अन्दर गये और उनका खल्लड़ उन्हें थमा दिया।

"और मूसली ?" उन्होंने प्रश्न किया।

"और तीन किताबें ?" हमने उत्तर दिया।

और किताबें वसूल हो गईं।

अब एक वकील मित्र की सुनिये। रोज़ बांग देते कि प्रेमचन्द के मानसरोवर के आठों भाग चाहिए। हम सार्वजनिक पुस्तकालय का रास्ता दिखाते या बाज़ार का नाम लेते। मगर एक दिन वे हमारे घर पर आ गये और आते ही बरस पड़े, "बड़े रद्दी आदमी हो !"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"कल मालूम हुआ कि आठ साल पहले तुम्हें तुम्हारी शादी पर ही किसी मित्र ने मानसरोवर का पूरा सेट भेंट किया था। मैं रोज़ कहता था मगर तुम बताते तक न थे !"

हमें रंगे हाथ पकड़े जाने वाले चोर की तरह बड़ी शरम चढ़ी और उन्हें आठों जिल्दें सौंप दीं। चाय पीने और आलू के बरक खाने पर भी हमारे मित्र का क्रोध कम न हुआ।

किन्तु अब बांग देने की हमारी बारी थी। तीन महीने बाद तो हमने मांगने की हिम्मत की, पर अब वकील साहब क्यों सुनने लगे ! हमने खुशामद भी की मगर उनके कान पर जूं न रेंगी। हम मन मार कर बैठ गये। किन्तु एक दिन रद्दी वाला जब हमसे रद्दी लेने आया तो उसकी बोरी से एक सुन्दर उपन्यास, जिसकी हालत अवश्य खस्ता थी, निकल पड़ा। हम एकदम फड़क उठे। उस रद्दी वाले को हम वकील मित्र के द्वार पर ले गये और योजना के मुताबिक उसने आवाज़ लगाई। हम जानते थे कि वकील साहब तो इस समय कचहरी में होंगे। जैसे ही वकीलनी निकलकर आयी, हम रामचन्द्रजी की भांति ओट में हो गये। रद्दी वाला अन्दर चला गया।

आधा घंटे बाद रद्दी वाला पीठ पर बोरी लादे बाहर निकला।

"कितनी है ?" हमने पूछा।

"बाबूजी, पूरी दस किलो।" रद्दी वाले ने साश्चर्य उत्तर दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

4730

एक सौ निन्यानबे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

असल में हमने रद्दी वाले से एक रुपये किलो में किताबों की रद्दी खरीदने को कहा था और उसे रुपये दे दिये थे। तय यह हुआ कि यदि वकीलनी किताबें न बेचे तो आवाज़ लगाने भर के आठ आना, और बेचे तो दो रुपया पारिश्रमिक-स्वरूप इनाम।

हमने रद्दी वाले को दो रुपये दिये और अपनी बोरी रिक्शा में रखकर भागे। घर आकर किवाड़ें बन्द कीं और बोरी उल्टी तो उपन्यास पर उपन्यास ! मानसरोवर के आठों भाग भी मौजूद! कई किताबों पर कई लोगों के नाम लिखे थे, जैसे मानसरोवर पर हमारा नाम लिखा था। शक नहीं कि कइयों पर वकील साहब का नाम भी था।

हमने मानसरोवर निकालकर अलग की और बाजार से पांच किलो रद्दी किताबें लाकर वकील साहब की किताबों के साथ अलमारी में सामने ही लगा दीं। कुछ घर में से अपने ज़माने की आठवीं-नवीं कक्षा की किताबें लीं और ठीक पन्द्रह किलो वजन वकील साहब के दर्शन की प्रतीक्षा करने लगा।

वकील साहब उदास तो दूसरे ही दिन से लगने लगे थे किन्तु एक सप्ताह उनसे रुका न गया। बोले, "बेपढ़ी घरवाली तो कभी न लाये।"

"भारी दहेज और पन्द्रह हज़ार कैश हो, तब भी ?"

हमें याद था कि वकील साहब की शादी में सगाई पर पन्द्रह हज़ार नकद आये थे।

"हां, यार, चाहे कुबेर की नातिनी हो या उर्वशी की बेटी, मगर सरस्वती की दुश्मन न हो।" वकील साहब को सच ही घाव गहरा लगा था।

"हुआ क्या, हम समझे नहीं।"

और वकील मित्र ने सारा किस्सा ऐसे सुनाया मानो उनकी श्रीमतीजी की बेवकूफी से उनके घर दिन दहाड़े डाका पड़ गया हो। आखिर में बोले, "मानसरोवर के आठों भाग भी गये।"

"ऐं ?"

"मगर मैं तो मर गया। हिसाब लगाना ही मुश्किल है।"

"तो कौन-सी सारी किताबें तुम्हारी खरीदी हुई थीं ?" हम कहना चाहते थे मगर उनकी रोनी सूरत पर दया आ गई और हमारे मुंह से निकला, "हमारा मानसरोवर तो हमें मिल गया। एक रद्दी वाले से दो रुपये किलो में खरीदा था।"

"क्या कहा ? तब तो और भी किताबें होंगी ?"

"बिलकुल, पन्द्रह किलो रद्दी ली थी मैंने।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"रद्दी न कहो, मैं तुरन्त रुपये देने को तैयार हूं।"

परेशान और उत्सुक वकील मित्र को हम अपने घर लिवा लाये। वकील साहब किताबों पर झपटे, लेकिन थोड़ी देर बाद बोले, "इनमें काफी किताबें रद्दी हैं जो मेरी नहीं हैं।"

"मैं बेच थोड़े ही रहा हूं। छः आने किलो वाली रद्दी के दाम दो रुपये किलो क्या यों ही दिये थे ?"

"किन्तु इसमें कुछ आठवीं-नवीं कक्षा की पुरानी किताबें हैं और तुम्हारा नाम भी है ?"

"रहने दो भाई, मुझे बेचनी नहीं हैं।" हमने शरारत से भरा तीर छोड़ा।

वकील साहब ने चुपचाप तीस रुपये हमारे हाथ पर रख दिये और रिक्शा को पुकारा। हमने चाय को बहुत कहा, आलू के बरकों की याद दिलाई, मगर अब वकील साहब मुड़कर देखने वाले न थे।

एक हमारे प्रोफेसर मित्र हैं। डॉ० रघुवीर का कोश ले गए और छः महीने बीत जाने पर भी लौटाने का नाम न लें। हमने भी धैर्य नहीं छोड़ा और मांगना ही बन्द कर दिया। प्रोफेसर साहब बड़े खुश हुए और भूल गए कि कभी उन्होंने हमसे कुछ लिया था। पहले जैसी ही बेतकुल्लफी बरती जाने लगी। किन्तु हम राख के अन्दर अंगारे की तरह धधक रहे थे।

एक दिन प्रोफेसर साहब कॉलेज गए और हमें अपनी घड़ी दे गए, "तुम नफीस की दुकान पर घड़ी लेने जाओगे ही, मेरी घड़ी डालते आना। शीशा बदलना है और सफ़ाई होनी है।"

हमने घड़ी ली और सीधे उनके घर पहुंचे। घड़ी वापस की, चाय पी और बोले, "रघुवीर का कोश मंगवाया है।"

"बड़े भुलक्कड़ हैं।" ग्रेजुएट प्रोफेसरनी ने हमें कोश तुरन्त दिया और हम घर आ गए। शाम को ही प्रोफेसर साहब हमारे घर आये। आते ही उनके माथे पर बल पड़े, हमने त्यौरियां चढ़ाईं। उन्होंने घूरा, हम घुर्राये। वे वापस हो गए।

किताब वसूल करने का एक ही उदाहरण हम और रखेंगे। हमारे एक बुजुर्ग हैं, बड़े अध्ययनशील और ज्ञानवान। बजाजे का ऊंचा काम करते हैं। साढ़े बाईस रुपये की एक किताब हम देखने मात्र को दुकानदार से लाये थे कि वज्रपात हो गया। हुआ यह कि किताब हाथ में लिये हम उनकी दुकान पर रजाइयों के खोल का कपड़ा देखने चले गए। हमें यह ध्यान नहीं रहा कि उन बुजुर्ग को दूसरों की नई-नई किताबें पढ़ने की बीमारी है। कपड़ा लिया और किताब दे आये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तीन दिन बाद किताब वापस करने को कहा। हमसे कपड़े के दाम उसी वक्त ले लिये।

बात यह थी कि वे बुजुर्ग उम्र और ज्ञान में हमसे बहुत बड़े हैं। हम उनका आदर भी बहुत करते हैं। इतना कि अगर वे चपत भी मारें तो हम अपना सौभाग्य समझें। मगर हम उस किताब के कारण चक्रव्यूह में फंस गए। दुकानदार को तो हमें दाम देने ही पड़े। हमें तो ऐसा लग रहा था कि बिना किताब लिये ही दाम देने पड़े, जैसे कि मात्र चाल दिखाकर आधुनिक सुन्दरी द्वारा नौजवानों को ठग लिया जाता है। बुजुर्ग हमेशा यही कहें कि किताब घर पर है। हो यह कि हम उनकी दुकान पर जाएं, वे ग्राहकों से निबटकर एक मीठा पान खिलाएं और कहें, "बेटा, किताब घर पर है, घर ही आओ।"

जिस दिन बाज़ार बन्द हो, हम उनके घर जाएं, मगर शायद उस दिन वे घर न रहने का खास खयाल रखते थे। दिनचर्या का क्रम ऐसा कि उनके घर महीनों न जा सके और न किताब ला सके।

एक दिन हमने उन्हें रात के नौ बजे घेरा, "हम पर कृपा कीजिए।"

"हां-हां, घर आओ न !"

"चलिये।"

"मगर मैं इस समय सीधा घर नहीं जा रहा, पता नहीं किस समय पहुंचूं। तुम किसी वक्त घर आओ न !"

साल भर से लगभग यही क्रम चल रहा था। हम निराश हो गए। रोज़ाना की भांति सोकर उठे तो घनघोर वर्षा हो रही थी। घटाटोप अंधेरा छाया हुआ था।

"क्या अभी रात शेष है ?"

"जी नहीं, सात बज चुके हैं।"

"सात ? बरसात कब से हो रही है ?"

"रात के बारह बजे से।"

"क्या ?"

"हां, रात के बारह बजे से। सुन नहीं रहे ?" श्रीमतीजी गरम हो गईं। हमने लपककर कपड़े पहने और छाता ताना।

"कहां चले ? शौचादि से निवृत्त तो हो लो।"

"टोको मत। दही-पेड़ा घर में हो तो खिला दो, मैं चला।"

"मगर कहां और क्यों ? नंगे पैर ही ? क्या हो गया आज तुम्हें ?"

किन्तु हमने एक न सुनी और हम बुजुर्ग के घर की ओर चले। सड़कों के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सात समन्दर पार कर जब हम उनके घर पहुंचे तो वे छतों की चलती धाराओं से बचने की असफल कोशिश कर रहे थे।

"तुम ?"

"मैं आसमान से नहीं उतरा, घर से चलकर आया हूं। आपकी गली में आते ही मैंने कीचड़ के मोजे घुटनों तक पहन लिये हैं। कल रात के नौ बजे का संदेश तो आपको याद है ?"

"मगर किताब का सत्यानाश हो जायेगा। तुम भी भीग रहे हो, छतरी इस बरसात में क्या कर सकती है ?"

"मैं थैला लाया हूं।" हम बोले, "उसमें रखकर लपेटूंगा, फिर बनियान के अन्दर उरसूंगा। अब तो कृपा कर ही दीजिये।"

"मगर चाय-पान···"

"पान बहुत खा लिये। चाय भी रहने दीजिये। अब तो कृपा-मात्र चाहिए।" हमने उनके बरामदे में चढ़कर पैर झाड़े। कीचड़ बरामदे के फर्श पर बिखर गई।

बचने का कोई मार्ग शेष नहीं था, अतः हम इस योजना में भी सफल हो गए।

इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अपनी सभी किताबें वसूल कर सके हैं, फिर भी हम छोड़ेंगे किसी पर भी नहीं, क्योंकि हम लाइब्रेरियन हैं, लाइब्रेरी नहीं और हमारे आंगन, ड्राइंगरूम या रसोईघर में ऐसा एक भी वृक्ष नहीं है जिस पर किसी भी प्रकार की पुस्तक फलती हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह मुंह आपका ही है

हमारा दावा है कि यह मुंह, जो ठोड़ी के ऊपर और नाक के नीचे, कभी अस्पष्ट कभी स्पष्ट छिद्र के रूप में स्थापित है, आपका ही है। आप इसे अपनी पत्नी और पड़ौसी के रेडियो की भांति इच्छानुसार प्रयोग कर सकते हैं। बहुमुखी, चतुर्मुखी एवं अन्तर्मुखी शब्द नये वकील या प्रवक्ता की भांति निरन्तर चीख रहे हैं कि शरीर चाहे आपके बाप का हो, इस मुंह के आप ही मालिक हैं। 'अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना' से प्रमाणित है कि युगों-युगों से यह मुंह आपका ही रहता आया है। हो सकता है कि बुढ़ापे में दांत पराये हो जायें किन्तु यह मुंह शतप्रतिशत आपका ही रहेगा।

वास्तविक बात यह है कि कुछ लोग उंगली चाटने, दांत दिखाने, गाल बजाने, कुल्ला करने, कराहने, जँभाई लेने एवं जीभ दिखाने या चलाने में ही मुंह का प्रयोग समझते हैं, किन्तु हंसते समय वह किराये का हो जाता है। संभवतः यही कारण है कि टूट-फूट के भय से हंस कर प्रयोग करने से कतराते हैं। हमारा अभिमत है कि हंसते समय ही मुंह एक सौ एक नये पैसे (सवा सोलह आने) अपना होता है। यदि आदमी हंसता नहीं है तो उसके और जानवर के मुंह में क्या अन्तर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है ? जिस प्रकार छींक से नाक के अस्तित्व का बोध होता है उसी प्रकार हंसी से मुंह का पता चलता है।

एक बार मित्र-मण्डली में एक विद्वान चूड़ीदार पाजामा और शेरवानी पहने जंच रहे थे। सहसा हमें पाजामे के एक वचन में से कोई चीज झांकती दिखाई दी। हमने हर दृष्टिकोण से निश्चित हो उस चीज को पकड़ा और खींचते हुए पूछताछ की, ''शायद आप नारा बांध नहीं पाये।''

सभी ने ठहाका मारा किन्तु डी० लिट० महोदय मुंह की पालथी लगाये बैठे रहे। हमसे नहीं रहा गया, ''श्रीमान् वह तरकीब हमें भी बताइये।''

''क्या''

''बिना मुंह खोले रोटी खाने की।''

डी० लिट० महोदय बिगड़ उठे, ''क्या अशिष्टता है ? हंस लो, यह विदित नहीं है कि सब कुछ मिथ्या है।''

''लेकिन हमारा विश्वास है कि आपकी विद्वत्ता मिथ्या नहीं है। यदि यह भी मान लिया जाये तो कम से कम अन्डरवीयर का नारा मिथ्या नहीं है।'' हम पुनः ठहाका लगा उठे।

दार्शनिक महोदय दांत भींचकर चीखे, ''देह के साथ तुम्हारी अक्ल भी मोटी है।''

हमें उन्हें चिढ़ाने में आनन्द आ रहा था। अतः हमने उन्हें और भी ताव पर रखा, ''किन्तु इसे आप हमारी भाभी (विद्वान महोदय की पत्नी) के सामने नहीं कह सकते। वर्ना आपके ऊपर अचानक गिर कर चटनी बना देंगी। फिर भी मोटी देह का सटीक कारण है। अधिकांश पत्नियां अपने-अपने पति से बारीक अक्ल के मुकाबले मोटी देह की अधिक अपेक्षा रखती हैं।''

मित्र मण्डली फिर से चना-सी खिल पड़ी और दार्शनिक महोदय क्रोध-पूर्वक ओठों से स्टेट बैंक के सेफ का ताला डाले खिसक दिये।

इन बुद्धि-बली महाशय पर तरस खाकर हम सिद्ध कर सकते हैं कि संसार के सभी विद्वान और महापुरुष मुंह का खूब इस्तेमाल करते हैं। वे समझते हैं कि बिना घास गधा और बिना हास आदमी निष्प्राण रहता है अतः भयंकर ठट्टे मारते हैं। कैसे बज्रमूर्ख हैं वे लोग जो हास्य की वैज्ञानिक उपादेयता को नहीं समझते और कहते हैं कि हंसने में अक्ल मुंह की राह बाहर निकल जाती है। प्रथम तो यह मान्यता ही गलत है। हमने दिल्ली की विश्व-उद्योग-प्रदर्शनी में स्वयं देखा है कि हर देश के मंडप में आने का मार्ग और है तो जाने का मार्ग और है। यदि मुंह से अक्ल बाहर जाती है तो प्रवेश किधर से करती है ? पुराने मकान की तरह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यदि शरीर की बनावट दोषपूर्ण मान भी ली जाए तो भी अधरों की चहारदीवारी पर दांतों के नुकीले शीशे जड़े हुए हैं। अतएव कुलीन वधू की भांति अक्ल बाहर जाने का साहस नहीं कर सकती। जब बुढ़ापे में दांत उखड़ जाते हैं तभी आदमी सठियाता है, अत: जब तक मुंह में दांत हैं, निर्भय होकर हंसना चाहिये।

कुछ ऐसे होते हैं कि सुसराल भी जाएंगे तो इस प्रकार कि कब्रिस्तान की ओर ले जाये जा रहे हैं। चंचल साली और मदरिम सलहजें रसभरी घटाओं-सी घिर रही हैं मगर आप हैं कि दुहरी बखिया किये ओठों की छतरी लगाए पार्क की पटिया से मुर्दा पड़े हैं। ईश्वर ही जाने ऐसे लोगों की संतान का मुंह होगा भी या नहीं। यदि हुआ भी तो इतना सिद्ध है कि इनसे छोटा होगा और यदि दस पांच पीढ़ी ऐसी ही 'हंसो मत' योजना चली तो सम्भव है हमारी शंका सही बैठे और औलाद बिना मुंह की होने लगे। जिस मनुष्य के प्रयोग न करने से दुम ही नहीं रही तो मुंह ही क्या खाकर रहेगा। जो भी हो, इतना तय है कि औलाद हंसना भूल जाएगी और जब-जब हंसने का अवसर आया करेगा, वह जन्म से ही अभ्यास होने के कारण रो दिया करेगी।

आदमी की एक किस्म वह होती है जो मुस्लिम महिलाओं के बटुओं की तरह मुंह का प्रयोग करती है, मानो सुपाड़ी के एक-दो दाने निकालने को जरा-सा दोनों ओर खींचा और बंद कर दिया। ऐसे लोग हंसना चाहकर भी हंसना नहीं जानते। हंसते समय मुंह में हवा भर जाती है, कपोल और नासिका-रन्ध्र फूलने और पटकने लगते हैं, ओंठ बार-बार ऊपर नीचे होते रहते हैं, दाँतों की मिलन-पंक्ति चमक चमक जाती है। लगता है कि बिना दाना-पानी लिये टूटे इक्के का मरियल घोड़ा हांफ रहा है।

हंसने का अभ्यास प्रारम्भ से ही आरम्भ करना चाहिए वर्ना मुंह सिकुड़कर जाम हो जाता हैं, और तब एक सीमा तक ही मुंह का व्यास बढ़ाया जा सकता है। ऐसी दशा में कभी हंसे भी तो ऐसा लगेगा कि पंक्चर से हवा निकल रही है।

बिना हंसने वाले लोग मानुस नहीं मनहूस हुआ करते हैं। ये गेहूँ के बराबर भी नहीं मुस्करा पाते किन्तु मनहूसी को भूसी की भांति लपेटे रहते हैं। जहां जाएंगे मनहूसियत आगे-आगे चलेगी। ये पिकनिक को शवयात्रा में तथा स्वागत-समारोह को शोक-सभा में बदल देते हैं। किसी को विदा करते समय, किसी बीमार को देखते समय या मातमपुरसी के समय ऐसे लोगों को ही सबसे आगे रखना चाहिए। शोक-वृत्त के ये लोग केन्द्र बिन्दु होते हैं।

पूर्व परिचित डॉ० (डी० लिट०) एक बार अपनी किसी रिश्तेदारी में मातमपुरसी को गए तो मातमपुरसी को आनेवाले अन्य लोग डॉ० साहब से ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहानुभूति प्रकट करने लगे । तब उनका रिश्तेदार गम में भी मुस्कराए बिना न रहा ।

इसी प्रकार एक बार डॉ० साहब को वेतन-इंक्रीमेंट मिले। खुशी-खुशी घर आए तो पता लगा लड़का हुआ है। हर्ष पुलकित हो थोड़ी हँसी आई तो श्रीमुख को निहार साली साहिबा पूछ बैठी," जीजाजी, शादी से पूर्व जब पिताजी आपको देखने आए थे तब आपसे एक प्रश्न किया था कि चिरंजीव ! क्या पेट में दर्द रहता है। शादी पर भी पलकाचारे के बीच मैंने आपसे यही प्रश्न किया था और आज फिर दुहरा रही हूं । सच-सच बताइए, क्या वास्तव में आपके पेट में सूखे ऐंठों का या वायुगोले का दर्द उमड़ता रहता है ?"

साली साहिबा डॉ० साहब की ओर एकटक देख रही थीं। डॉ० साहब ने प्रश्न का उत्तर न देकर थोड़ा और हंसने की चेष्टा की तो साली साहिबा की कलमी आंखों से समवेदना के दो आंसू ढुलक पड़े ।

अंत में, हम उच्चस्तरीय शरीफ, सुसंस्कृत महानुभावों को विश्वस्त सूत्रों के आधार पर पुनः सूचित करते हैं कि आपका जो मुंह है वह आपका ही है। यदि शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य चाहते हैं तो इस मुंह से खूब हंसिये, निरंतर हंसते रहिए, और ध्यान रहे कि हंसने का अभ्यास न छूट जाये । यदि आप हंसने से अपरिचित हैं तो हमारे डॉ० साहब की तरह जब भी बाजार बंगलौरी साड़ी खरीदने जायेंगे तो बैठते ही दुकानदार आपसे हाथ जोड़कर क्षमा माँग लेगा, "श्रीमान्जी, कफन इस दुकान पर नहीं मिलते।"

4730

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

4730